'ओश्म्'

महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य की विशेषताएँ

पंडित धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

दयानन्द संस्थान, नई दिल्ली-5

॥ ओ३म् ॥

महर्षि दयानन्द
के
वेद भाष्य
की
विशेषताएं
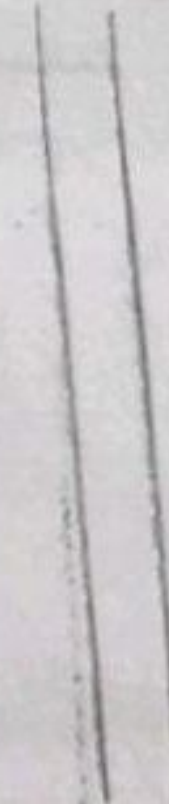
पं० धर्म देव विद्यामार्तण्ड

दयानन्द संस्थान
नई दिल्ली-११०००५

जन-ज्ञान-प्रकाशन का १५२वाँ पुष्प

प्रकाशक—

पंडिता राकेशरानी

मंत्री

दयानन्द संस्थान

१५६७, हरध्यान सिंह मार्ग

नई दिल्ली-११०००५

—लेखक—
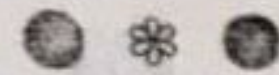
पं० धर्मदेव विद्यामार्तण्ड

आर्यसमाज शताब्दी प्रकाशन

सजिल्द मूल्य : ५)

दीपमाला संवत् २०३२

मुद्रक भाटिया प्रेस दिल्ली-३१

भूमिका

आस्तिकता का अर्थ परमात्मा के अस्तित्व में (उसके सच्चिदानन्द स्वरूप एवं सृष्टिकर्त्ता और सृष्टिनियन्त् होने में) श्रुति-रूप उससे उद्भूत ज्ञान एवं उसकी उस समस्त रहस्यमयी चेतनता जो उसकी रचना में अभिव्यक्त है, और प्रभु की न्याय और दयापूर्ण व्यवस्था में विनम्र आस्था का रखना है यही बात वेदान्त के सूत्रों, जन्माद्यस्य यत: शास्त्रयोनित्वात् और तत्तु समन्वयात्, से अभिव्यक्त होती है, और यही बात ऋषि दयानन्द द्वारा अभिप्रेत आर्यसमाज के प्रथम नियम और अन्य नियमों से स्पष्ट है।

भारतीयों ने वेदमंत्रों की अक्षुण्ण परम्परा को आज तक जीवित रखने के लिए बड़ी तपस्या की और उनकी उस तपस्या का ही फल है कि जहां संसार की अन्य भाषाओं का प्राचीनतम साहित्य लुप्त हो गया, वेद की संहितायें आज तक उपलब्ध हैं। किन्तु जहाँ संहिताओं को हमने सुरक्षित रक्खा, वेद का अभिप्राय, उनके मंत्रों की गरिमा की भावनायें, और ऋचाओं में निहित प्रेरणा देने वाली और स्फूर्ति सम्बन्धी क्षमतायें कालान्तर में लुप्त हो गयीं। वेदपाठी तो रहे, पर वेद के मंत्र जीवन को स्फूर्ति भी दे सकते हैं—यह भावना कई सहस्त्र वर्षों से लुप्त हो गई थी। एक वह दिव्य युग था जब श्रुति को समझने के लिए समस्त शास्त्रों की रचना की गयी, श्रुति से प्रेरणा पा कर तपस्वी मानव ने वेदांगों और उपांगों की रचना की और यज्ञस्थली के प्रांगण में ज्ञान-विज्ञान का विकास किया। महाभारत के बाद से देश का अध: पतन हुआ, और वेद प्रेरणा का स्रोत न होकर केवल वेदपाठियों की संकुचित परम्पराओं और रूढ़ियों की श्रृंखला में बंध गए। वेद में आस्था तो रही, किन्तु इस आस्था का उपयोग कुत्सित कृत्यों और अन्धविश्वासों के समर्थन में किया जाने लगा। इस वातावरण में स्कन्द स्वामी, उद्गीथ, वेंकटमाधव, मुद्गल, सायण, महीधर, उव्वट आदि विद्वानों ने अपने वेदभाष्यों की रचना की। इन्हीं भाष्यों को भारतीय आस्था का प्रतीक मानकर यूरोपीय विद्वानों ने अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेंच और रूसी भाषा में वैदिक साहित्य के अनुवाद किए।

यूरोप में विज्ञान और शिल्प का नये ढंग से विकास आरम्भ हुआ। बाइबिल को आधार मानने वाले ईसाइयों ने विज्ञान और धर्म के बीच में संघर्ष खड़ा कर दिया। पिछली दो-तीन शतियों का इतिहास इस संघर्ष की करुण कहानी है। विज्ञान की विजय हुई और बाइबिल पर आधारित धर्म के आचार्यों ने विज्ञान के साथ धीरे-धीरे समझौता करने की चेष्टा की। उन्नीसवीं शती के इतिहास में महर्षि दयानन्द ही अकेले ऐसे आचार्य हैं, जिन्होंने विज्ञान और शिल्प के प्रति अनुराग प्रदर्शित किया और विज्ञान के उत्तरोत्तर बढ़ते हुए चरणों का स्वागत किया। उनकी दृष्टि में धर्म, दर्शन और विज्ञान सब का उद्देश्य एक है ईश्वर के प्रति श्रद्धा, सत्य का समादर और लोक-कल्याण की भावना। प्राचीन ऋषियों का भी यही दृष्टिकोण था। महर्षि का वेद-भाष्य इन भावनाओं से ओत-प्रोत है। ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य की निम्न विशेषतायें हैं- (१) श्रुति के शब्द अर्थों की दृष्टि से

यौगिक और योगरूढ़ि हैं न कि रूढ़ि, शास्त्र में और कालान्तर में बनी सभी भाषाओं में शब्दों के रूढ़ि अर्थों को प्रश्रय मिलने लगता है। (२) श्रुति परमात्मा से उद्भूत होने के कारण स्वतःप्रमाण है, और श्रुति-वाक्यों में समस्त प्राकृत पदार्थों के समान विविध-अभिप्रायों को व्यक्त करने की स्वाभाविक प्रकृति या क्षमता है। (३) आस्तिकता का अभिप्राय एक नियन्ता में आस्था रखने से है, वही सृष्टि की समस्त चेतनाओं का स्त्रोत है अतः वेद में ऐसा देवता-वाद नहीं है, जिस में स्वतंत्र नियामक देवताओं की कल्पना हो। (४) आदि और शाश्वत ज्ञान होने के कारण वेद में शाश्वत इतिहास को छोड़ कर किसी भी अन्य प्रकार के इतिहास की कल्पना करना वेद के महत्त्व को ठीक से नहीं समझना है। (५) सृष्टि का रचयिता प्रभु है और श्रुति का स्त्रोत भी वही, अतः श्रुति के अभिप्राय में और सृष्टि संबंधी ऋत और सत्य में कोई विरोध और संघर्ष नहीं होना चाहिए। (६) सृष्टि प्रभु की सोद्देश्य रचना है, इस दृष्टि से यह सत्य है, कल्पना नहीं है, न मिथ्या है, न अभ्यास; मानव शरीर भी सत्य है, और मानव जीवन भी सत्य, और जीवन का प्रवाह भी सत्य है।

अतः लोक-परलोक, संभूति-असंभूति, अभ्युदय निःश्रेयस, परा और अपरा ज्ञान और कर्म इन सब का समन्वय ही शाश्वत सत्य है। वेद इन समन्वय का प्रतिपादक है। वेद की ऋचायें इस लोक के वैभव का तिरस्कार नहीं करती हैं, इसकी वे समर्थक उतनी ही हैं, जितनी कि अध्यात्म की, (७) परमात्मा आचार और निष्काम धर्म का परम आदर्श और आदि स्त्रोत है अतः कोई भी श्रुति वाक्य आचार धर्म और लोक कल्याण का विरोधी नहीं हो सकता। श्रुति के अर्थ न तो हिंसा-परक लगाये जा सकते हैं, और न आचार के विरोधी।

प्राचीन ऋषियों और आचार्यों का भी यही दृष्टिकोण था और प्रत्येक आस्तिक का भी यही दृष्टिकोण है। महर्षि का वेद भाष्य इसी दिशा में अनुपम प्रयास है। कर्मकाण्ड की श्रृंखला और अनुचित विनियोगों से महर्षि दयानन्द ने वेदों को उन्मुक्त और फिर से जीवन की ओर प्रेरणादायक घोषित किया, यह उनका परम उपकार है। प्रस्तुत ग्रन्थ में अधिकारी विद्वान् आचार्य-तुल्य तपोनिधि धर्म देव विद्यामार्तण्ड जी ने ऋषि के इस दृष्टिकोण को हमारे समक्ष रखने का स्तुत्य प्रयास किया है। हमें उन सब देशी-विदेशी मनीषियों के प्रति विनम्र आभार प्रदर्शित करना चाहिए जिन्होंने वेद के अनुशीलन के संबंध में किसी भी प्रकार की तपस्या क्यों न की हो। महर्षि दयानन्द के प्रति तो सब से अधिक श्रद्धा की भावनाएं हैं, जिन्होंने वेदार्थ के सबंध में हमें दिव्य ज्योति दी। ऋषि की तपस्या और आर्य समाज के प्रयास से पिछले सौ वर्षों में भारत में ही नहीं, भारत के बाहर भी वेदों के प्रति रुचि उत्तरोत्तर बढ़ी है, यह सन्तोष की बात है। प्रभु में आस्था बढ़े और प्रभु के श्रुति शब्द हमारे लिए जीवन प्रेरक बनें, यह मेरी कामना है।

नई दिल्ली
२० अक्टूबर १९७५

—स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र-
चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्र-
विणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा
व्रजत ब्रह्मलोकम्॥

अथर्व० १९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक~पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।

शुक्ल

वेदों का महत्त्व

शास्त्रीय दृष्टि से

वेदों के विषय में आर्यों का यह परम्परागत विश्वास रहा है कि वे मानव सृष्टि के प्रारम्भ में परमपिता मंगलमय भगवान् द्वारा मनुष्य मात्र के कल्याण के लिये दिये हुए पवित्र ज्ञान भण्डार हैं; जिनमें मानव मात्र की वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति तथा विश्वशान्ति के सूचक सब तत्त्व विद्यमान हैं।

२—वेदों की शिक्षाएं सार्वभौम और सार्वकालिक हैं। उन पर आचरण करने से ही सारे जगत् का कल्याण हो सकता है।

३—क्योंकि शारीरिक, मानसिक, आत्मिक सब प्रकार के विकास के लिये उपदेश वेदों में पाये जाते हैं और उनमें न केवल आध्यात्मिक विषय के उपदेश हैं प्रत्युत विविध विद्याओं और विज्ञानों का भी मूल उनमें पाया जाता है। अतः उनके अध्ययन और प्रचार की आज भी संसार को उतनी ही आवश्यकता है जितनी पहले थी।

४—ज्ञान, कर्म और भक्ति, श्रद्धा और तर्क, त्याग और भोग, व्यष्टिवाद और समष्टिवाद, धर्म और विज्ञान इत्यादि परस्पर विरुद्ध समझी जाने वाली बातों का युक्ति-युक्त समन्वय और सर्वोपयोगी मध्यमार्ग का यथार्थ प्रदर्शन, वेदों के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

आर्यों का यह परम्परागत विश्वास स्वयं वेद भगवान् के—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्, यजुस्तस्माद् जायत ॥

ऋ० १०।९०।९ ; यजु० ३१।८

पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति ।

(अथर्व० १०।८।३२)

इत्यादि वचनों से प्रारम्भ होता है, जिनमें वेदों को यज्ञ अर्थात् पूजनीय परमेश्वर ("यज्ञो वै विष्णुः" शत. १।१।२।१३; गोपथ उ. ४।६; ताण्ड्य ९।६।१०) से उत्पन्न और अतएव भगवान् का अजर-अमर काव्य बताया गया है।

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूपनित्यया ।
वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम् ॥ (ऋ. ८।७।६)

इत्यादि मन्त्रों में वेदवाणी को विरूप-विविध विद्याओं का प्रतिपादन करने वाली और नित्य कहा गया है।

२—मनुस्मृति तथा अन्य स्मृतियों में वेदों का महत्त्व :—

धर्मशास्त्रों में प्रथम स्थान मनुस्मृति का है। मनु महाराज ने वेदों के महत्त्व का प्रतिपादन करते हुए कहा है कि—

पितृदेवमनुष्याणां, वेदश्चक्षुः सनातनम् ।
अशक्यं चाप्रमेयं च, वेदशास्त्रमिति स्थितिः ॥ मनु. १२।९४

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाः, चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यच्च, सर्वं वेदात् प्रसिद्ध्यति ॥ १२।९५

बिभर्ति सर्वभूतानि, वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये, यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥ १२।९९

सैनापत्यं च राज्यं च, दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च, वेदशास्त्रविदर्हति ॥ १२।१००

सारांश यह है कि वेद सबके लिये सनातन मार्गदर्शक नेत्र के समान हैं। उसकी महिमा का पूर्णतया प्रतिपादन करना अथवा उसे सम्पूर्णतया समझ लेना बड़ा कठिन है। चारों वर्ण, तीन लोक, चार आश्रम, भूत, भविष्य और वर्तमान विषयक विज्ञान वेद से ही प्रसिद्ध होता है। सनातन (नित्य) वेदशास्त्र सब प्राणियों को धारण करता है। वही सब मनुष्यों के लिये भवसागर पार होने का साधन है। जो वेदशास्त्र जानने वाला है वही सेनापति, सच्चा राजा, न्यायाधीश और सारे लोक पर शासन करने के योग्य बन सकता है। इत्यादि। अन्य धर्म शास्त्र के नाम से प्रसिद्ध स्मृतियों की न मनुस्मृति जैसी प्राचीनता और न प्रामाणिकता है, तथापि उनमें भी वेदों का महत्त्व पूर्णतया स्वीकार किया गया है। उदाहरणार्थ याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा है—

यज्ञानां तपसां चैव, शुभानां चैव कर्मणाम् ।
वेद एव द्विजातीनां, निःश्रेयसकरः परः ॥ याज्ञ. १।४०

अर्थात् यज्ञ, तप, शुभकर्म सबका मूल और मोक्षदायक वेद ही है। एक अन्य स्थान पर याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है—

न वेदशास्त्रादन्यत्तु, किंचिच्छास्त्रं हि विद्यते।
निस्सृतं सर्वशास्त्रं तु, वेदशास्त्रात् सनातनात् ॥

अर्थात् वेदशास्त्र से बढ़कर कोई शास्त्र नहीं। सब अन्य शास्त्र सनातन वा नित्य वेदशास्त्र से ही निकले हैं।

अत्रिस्मृति में कहा है कि :—"नास्ति वेदात्परं शास्त्रं, नास्ति मातुः परो गुरुः" (श्लोक १४८) अर्थात् वेद से बड़ा कोई शास्त्र नहीं और माता के समान कोई गुरु नहीं।

संवर्त स्मृति में लिखा है—

ऋग्वेदमभ्यसेद् यस्तु, यजुः शाखामथापि वा।
सामानि सरहस्यानि, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ (श्लोक २२८)

अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद उसकी शाखा तथा रहस्यसहित सामवेद का अभ्यास करने से मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। दक्षस्मृति २.३० में कहा है कि—

वेदाभ्यासो हि विप्राणां परमं तप उच्यते।
ब्रह्मयज्ञः स विज्ञेयः, षडंगसहितस्तु यः ॥
वेदस्वीकरणं पूर्वं, विचारोऽभ्यसनं जपः।
प्रदानं चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पंचधा ॥ २।३१

अर्थात् वेदों का अभ्यास करना यह ब्राह्मणों के लिये परम तप है। व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, शिक्षा, कल्प इन छः अंगों के साथ वेदों का स्वाध्याय ब्रह्मयज्ञ कहलाता है। वह वेदों का अभ्यास पांच प्रकार का कहा गया है—

(क) वेदों को मान्य धर्मशास्त्र के रूप में स्वीकार करना।
(ख) वेदों के मन्त्रों का विचार वा मनन करना।
(ग) उनके शुद्ध उच्चारण और अर्थज्ञान का अभ्यास करना।
(घ) गायत्री आदि वेद मन्त्रों का जप करना।
(ङ) शिष्यों को वेद पढ़ाना।

इसी प्रकार के वचन अन्य स्मृतियों में भी पाये जाते हैं।

३—ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों के वेदविषयक वचन :—

शतपथ ब्राह्मण (१४।५।४।१०) और तदन्तर्गत बृहदारण्यकोपनिषद् (४।५।११) में कहा है कि—

एतस्य वा महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद्
यदृग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः ॥

अर्थात् चारों वेद उस महान् परमेश्वर के मानो श्वास रूप हैं। मुण्डकोपनिषद् २।१।४ में कहा है कि—

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ, दिशःश्रोत्रे वाग्।
विवृताश्च वेदाः तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षाः ॥
(मुण्डक २।१।७)

अर्थात् उस भगवान् का मस्तक मानो अग्नि है, सूर्य और चन्द्र उसके नेत्रों के समान हैं, दिशायें उसके कानों के तुल्य हैं। वेद मानो उसकी वाणी से निकले हैं।

४—दर्शन-शास्त्रों में वेदों का महत्त्व :—

न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा (वेदान्त) इन छहों दर्शनों में एक स्वर से वेदों के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उन्हें निर्भ्रान्त परम प्रमाण और अपौरुषेय तथा नित्य माना गया है।

मन्त्रायुर्वेदवच्च तत्प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात् । न्याय. २।१।६७
तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम् ॥ वैशे. १।१।३
निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् । सांख्य दर्शन ५।५१
स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥
योगदर्शन समाधिपाद ५।५१

चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ।
विरोधे त्वनपेक्ष्यं स्यादसति ह्यनुमानम् ।
आख्या प्रवचनात् । परन्तु श्रुति सामान्यमात्रम् ॥ मीमांसा सूत्र

शास्त्रयोनित्वात् । वेदान्त १।१।३
अतएव च नित्यत्वम् । १।३।२९

इत्यादि सूत्रों द्वारा सब आस्तिक दर्शनकारों ने एक स्वर से वेदों को ईश्वर का वचन होने से स्वतः प्रमाण, नित्य और अपौरुषेय बताते हुए वेदविहित को धर्म और उससे विरुद्ध को अधर्म कहा है।

महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में—

अनादिनिधना नित्या, वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा ।
आदौ वेदमयी दिव्या, यतः सर्वाः प्रवृत्तयः ॥

शान्तिपर्व अ. २३२।३४

इत्यादि श्लोकों द्वारा वेदवाणी को ब्रह्मप्रोक्त और अनादि कहा है। इस प्रकार जिन वेदों के महत्त्व को सभी शास्त्रकार एक स्वर से स्वीकार करते हैं, उनके शुद्ध रूप में प्रकाशन, उनके अर्थज्ञान में सहायता तथा उनकी शिक्षाओं के प्रचार का प्रत्येक सच्चे धर्मप्रेमी और प्रत्येक उत्तम संस्था को जिसकी वैदिक धर्म में आस्था है अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिये।

दो

वेदों का महत्त्व

विविध देशीय विद्वानों और महापुरुषों की दृष्टि में

प्रथम अध्याय में मैंने शास्त्रीय दृष्टि से वेदों के महत्त्व का संक्षिप्त निरूपण किया है। इस अध्याय में विविध देशीय विविध मतावलम्बी विद्वानों तथा महापुरुषों की दृष्टि से वेदों के महत्त्व का दिग्दर्शन कराया जायगा। इन महापुरुषों में मैं सबसे पहले महात्मा गौतम बुद्ध के वेदविषयक कुछ महत्त्वपूर्ण वचनों को उद्धृत करना चाहता हूं जिन्हें साधारणतया वेद निन्दक नास्तिक समझा जाता है किन्तु जो वस्तुतः एक आर्य सुधारक थे जिन्होंने अज्ञान और स्वार्थवश प्रचलित यज्ञों में पशु हिंसा, जन्म मूलक वर्ण-व्यवस्था वा जाति भेदादि कुप्रथाओं को दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने वेदों की निन्दा नहीं की किन्तु उन लोगों की निन्दा की जो वेदों का नाम लेकर यज्ञों में पशुहिंसा तथा अन्य प्रकार से दुराचार में प्रवृत्त थे। वेदों और सच्चे धर्मात्मा वेदज्ञों की उन्होंने अनेक वचनों में प्रशंसा की है, उदाहरणार्थ सुत्तनिपात २९२ में महात्मा गौतम बुद्ध ने कहा है कि—

विद्वां च वेदेहि समेच्चधम्मं ।
न उच्चावचं गच्छति भूरिपंञो ॥

इसका संस्कृत छायानुवाद इस प्रकार है।

विद्वांश्च वेदैः समेत्य धर्मं ।
नोच्चावचं गच्छति भूरिप्रज्ञः ॥

अर्थात् जो विद्वान वेदों के द्वारा धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है उसकी डावांडोल अवस्था नहीं रहती।

सुत्तनिपात श्लोक १०५९ में महात्मा बुद्ध की निम्न उक्ति पाई जाती है।

यं ब्राह्मणं वेदगुं अभिजञ्ञा ।
अकिंचनं कामभवे असन्तं ॥
अद्धा हि सो ओघमिमं अतारि ।
तिण्णो च पारं अखिलो अकंखो ॥

अर्थात् जिसने उस वेदज्ञ ब्राह्मण को जान लिया जिसके पास कुछ धन नहीं और जो सांसारिक कामनाओं में आसक्त नहीं, वह आकांक्षारहित सचमुच इस संसार सागर से तर जाता है। इसमें सच्चे वेदज्ञ ब्राह्मणों की कितनी प्रशंसा की गई है। क्या एक वेद विरोधी नास्तिक के इस प्रकार के वचन हो सकते हैं? सुत्तनिपात श्लोक ३२२ (नावसुत्त) में महात्मा बुद्ध ने कहा है—

एवं पियो वेदगु भावितत्तो, बहुस्सुतो होति अवेध धम्मो ।
सो खो परे निजापये पजानां, सोतोवधानूपनिसूपपन्नो ॥

अर्थात् जो वेद जानने वाला है, जिसने अपने को साध रखा है, जो बहुश्रुत है और धर्म का निश्चयपूर्वक जानने वाला है, वह निश्चय से स्वयं ज्ञानी बनकर अन्यों को भी जो सीखने के अधिकारी हैं, ज्ञान दे सकता है। यहां भी वेद जानने वाला धर्मात्मा संयमी पुरुष ही औरों को सच्चा ज्ञान दे सकता है यह महात्मा गौतम बुद्ध ने स्पष्ट बताया है। इससे उनकी वेदों और सच्चे धर्मात्मा वेदज्ञों पर श्रद्धा ही सूचित होती है।

सुत्तनिपात श्लोक ५०३ में महात्मा बुद्ध ने कहा है—

यो वेदगू ज्ञानरतो सतीमा, सम्बोधिपत्तो सरणं बहूनां।
कालेन तंहि हव्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुञ्ञपेखो यजेथ॥

इसका संस्कृत छायानुवाद इस प्रकार है—

यो वेदज्ञो ध्यानरतः स्मृतिमान् संबोधप्राप्तः शरणं बहूनाम्।
कालेन तं हि हव्यं प्रवेशयेत्, यो ब्राह्मणः पुण्यप्रेक्षो यजेत॥

अर्थात् जो वेद को जानने वाला, ध्यानपरायण, उत्तमस्मृति वाला, ज्ञानी, बहुतों को शरण देने वाला हो, जो पुण्य की कामना वाला यज्ञ करे, वह उसी को भोजनादि खिलावे। यहां भी सच्चे वेदज्ञ के प्रति (जो वेदों के अनुसार आचरण करने वाला हो) बड़े आदर का भाव प्रकट किया गया है यह स्पष्ट है। विस्तार भय से अभी इतना ही पर्याप्त है।

अरब देश के विद्वान कवि लावी द्वारा वेदों का गुणगान—

अखताब के पुत्र और तुर्फा के पौत्र लावी नामक अरबवासी कवि ने जो मुहम्मद साहेब के जन्म के लगभग २४०० वर्ष पूर्व विद्यमान था वेदों का गुणगान एक अरबी कविता में किया जिसका हिन्दी अनुवाद यहां उद्धृत किया जाता है। इससे यह भी स्पष्टतया ज्ञात होता है कि ईसवी सन् के लगभग १७०० वर्ष पूर्व भी सेमेटिक लोगों में वेदों के प्रति कितना उत्तम आदरपूर्ण भाव था। मूल कविता हारून रशीद के राज-दरबारी कवि अस्माई मलेकुस शरा द्वारा संगृहीत सीरुल उकूल नामक पुस्तक के (जो बेरट् पब्लिशिंग कम्पनी बेरट् पेलस्टाइन् द्वारा प्रकाशित तथा हाजी हम्शा शिराजी एण्ड कं० पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स, बन्दर रोड, बम्बई से उपलभ्य है) पृष्ठ ११८ पर पाई जाती है।

भाषानुवाद :—

(१) ऐ हिन्दुस्तान की धन्य भूमे! तू आदर करने योग्य है। क्योंकि तुझमें ही ईश्वर ने अपने सत्यज्ञान का प्रकाश किया है।

(२) ईश्वरीय ज्ञान रूप ये चार पुस्तकें (वेद) हमारे मानसिक नेत्रों को किस आकर्षक और शीतल उषा की ज्योति को देती हैं। परमेश्वर ने हिन्दुस्तान में अपने पैगम्बरों अर्थात् ऋषियों के हृदयों में इन चारों वेदों का प्रकाश किया।

(३) और वह पृथ्वी पर रहने वाली सब जातियों को उपदेश देता है कि मैंने वेदों में जिस ज्ञान को प्रकाशित किया है उसको तुम अपने जीवनों में क्रियान्वित करो। उसके अनुसार आचरण करो। निश्चय से परमेश्वर ने ही वेदों का ज्ञान दिया है।

(४) साम और यजुर् वे खजाने (कोष) हैं जिन्हें परमेश्वर ने दिया है। ऐ मेरे भाइयो! इनका तुम आदर करो क्योंकि वे हमें मुक्ति का शुभ समाचार देते हैं।

(५) इन चार में से शेष दो ऋक् और अतर (अथर्व) हमें उस लक्ष्य (विश्वभ्रातृत्व) की ओर अपना मुंह मोड़ने की चेतावनी देते हैं।

एक मुसलमान सज्जन ने कवि लावी की अरबी कविता का उर्दू में अनुवाद किया है, जिसके मुख्य अंश यहां उद्धृत किये जाते हैं।

(१) धन्य है तू, ऐ हिन्द की पाक जमीन,
जिसे खुदावन्द ने खुद अपना इल्म देने के लिए चुना।
जिस खुदाई नूरे - इल्म को करीम ने
चार ऋषियों के जरिये चार सर्चलाइटों की शक्ल में बख्शा
जहां उसकी रहमत ने राह दिखाई
कि वेद के हुक्म पर चलते हुए अपनी जिन्दगी को बसर करो॥

(२) साम और यजुर् ज्ञान के वो भण्डार हैं
जो मोक्ष - मार्ग का उपदेश देते हैं,
और अथर्व भ्रातृभाव का।
वेद का यह ज्ञान ही है जो इन्सान को
अन्धेरे से रोशनी में लाता है।

जैन आचार्य द्वारा वेद महिमा गान :—

आचार्य कुमुदेन्दु नामक जैन विद्वान् ने कर्णाटक भाषा में 'भूवलय' नामक एक आश्चर्यकारक ग्रन्थ लिखा है जिसमें उन्होंने लिखा है कि ऋग्वेद ही अनादिनिधना आदिम भगवद् वाणी है। इसमें से अनेक भाषाएं निकलती हैं। भगवान् का सन्देश सभी के लिए एक सा होता है।

सिक्ख गुरुओं की वाणी में वेदों का महत्त्व :—

यद्यपि आजकल कई सिक्ख भाई वेदशास्त्र का महत्त्व नहीं मानते और अपने को आर्यों (हिन्दुओं) से सर्वथा पृथक् समझते हैं किन्तु सिक्ख मत के प्रवर्त्तक गुरु नानक जी तथा अन्य गुरुओं की वाणी में वेदों का महत्त्व अनेक स्थानों पर स्पष्टतया वर्णित है। उदाहरणार्थ गुरुग्रन्थ साहेब के निम्नलिखित वचनों को देखिये :—

(१) **ओंकार वेद निरमाये।** (राग रामकली महला १ ओंकार शब्द १७)

अर्थात् ईश्वर ने वेद बनाए।

(२) **हरिआज्ञा होए वेद, पाप पुन्य विचारिआ॥** (महला ५ शब्द १)

अर्थात ईश्वर की आज्ञा से वेद हुए जिससे मनुष्य पाप पुण्य का विचार कर सके।

(३) **सामवेद, ऋग्, यजुर, अथर्वण,**
ब्रह्मे मुख माइया है त्रैगुण।
ताकि कीमत कीत कह न सकै,
कौ तिउ बोले जिउ बोलाइदा॥ (महला १ शब्द १७)

यहां भी चारों वेदों का नाम लेकर कहा है कि उनकी कीमत (महत्त्व) कोई नहीं बता सकता। वे अमूल्य और अनन्त हैं।

(४) **चार वेद चार खानी।** (महला ५ शब्द १७)

अर्थात् चार वेद चार खानों के समान (ज्ञान कोष) हैं।

(५) वेद बखान कहहि इक कहिये ।
ओह बेअन्त किन लहिये ॥ (महला १० अ० ३)

अर्थात् वेदों की महिमा का क्या वर्णन किया जाये ? वे बेअन्त हैं, उनका अन्त किस प्रकार पा सकते हैं ?

(६) दीवा बले अन्धेरा जाई,
वेद पाठ मति पापा खाई ।
उगवे सूरज न जापे चान्द,
जहां गियान (ज्ञान) प्रगास अज्ञान मिटन्त ॥ (सूही महल १)

अर्थात् वेद के ज्ञान से अज्ञान मिट जाता है और उनके पाठ से बुद्धि शुद्ध हो कर पापों का नाश हो जाता है।

(७) असंख ग्रन्थ पुखि वेद पाठ । (जपजी १७)

अर्थात् असंख्य ग्रन्थों के होते हुए भी वेद का पाठ सबसे मुख्य है।

(८) वेद बखियान करत साधुजन,
भागहीन समझत नांही ॥ (टोडी महला ५ शब्द १७)

अर्थात् साधु सज्जन वेद का व्याख्यान करते हैं किन्तु भाग्यहीन नीच मनुष्य कुछ समझता नहीं।

(९) कहन्त वेदा गुणन्त गुणिया,
सुणत बाला वह विधि प्रकारा।
दृढ़न्त सुविधा हरि हरि कृपाला ॥ (महला ५।१४)

अर्थात् वेदों के पढ़ने से उत्तम विद्या भगवान् की कृपा से बढ़ती है।

इस पर भी जो वेदशास्त्र की निन्दा करते और उन्हें असत्य समझते हैं उनके बारे में गुरु ग्रन्थ साहेब में उद्धृत भक्त कवि कबीर जी का यह वचन स्मरण रखने योग्य है कि—

वेद कतेब कहहु मत झूठे, झूठा जो न बिचारे ॥ (प्रभ.ती वाणी कबीर)

अर्थात् वेद शास्त्र को झूठा मत कहो। झूठा वह है जो विचार नहीं करता। विस्तार भय से अभी इतना ही पर्याप्त है।

अनेक निष्पक्ष पाश्चात्य विद्वानों द्वारा वेद गौरव गान :—
(ऋषि दयानन्द के वेद विषयक कार्य के पश्चात्)

यद्यपि अधिकतर पाश्चात्य लेखकों ने ईसाई मत की श्रेष्ठता दिखाने के लिए वेदों का निष्पक्ष भाव से अध्ययन नहीं किया तथापि अनेक ऐसे विद्वान् यूरोप और अमेरिका में हुए जिन्होंने वेदों का अध्ययन निष्पक्ष भाव से करके उनकी महिमा का मुक्त कण्ठ से गान किया है। यहां उनमें से कुछ का उल्लेख करना उचित प्रतीत होता है।

डा० रसेल वैलेस : सबसे पहले मैं डार्विन के साथ ही प्राकृतिक जगत् में विकासवाद के आविष्कारक डा० रसेल वैलेस के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ Social Environment and Moral Progress से कुछ उदाहरण देना चाहता हूं जो अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। वे लिखते हैं—

"In the earliest records which have come down to us from the past, we find ample indications that accepted standards of morality and the conduct resulting from these were in no degree inferior to those which prevail today, though in some respects they differed from ours. **The wonderful collection of hymns known as the Vedas is a vast system of religious teachings as pure and lofty as those of the finest portions of the Hebrew Scriptures.** Its authors were fully our equals in their conception of the universe and the Deity expressed in the finest poetic language." (P. 11).

"In it (Veda) we find many of the essential teachings of the most advanced religious thinkers." (P. 13).

"We must admit that the mind which conceived and expressed in appropriate language such ideas as are everywhere present in Vedic hymns, could not have been inferior to those of the best of our religious teachers and poets, to our Milton, Shakespeare and Tennyson."

अर्थात् पुराने समय के जो लेख हमें इस समय मिलते हैं उनमें भी हमें इस बात के पर्याप्त निर्देश प्राप्त होते हैं कि उस समय के सदाचारादि विषयक विचार और व्यवहार हमारे से किसी रूप में भी कम कोटि के नहीं थे यद्यपि कई अंशों में वे हम से भिन्न अवश्य थे।

वेदों के नाम से प्रसिद्ध आश्चर्यजनक संहिता के अन्दर बाइबिल के अच्छे से अच्छे भाग के तुल्य पवित्र और ऊंची धार्मिक शिक्षाओं की एक पद्धति पाई जाती है। इसके लेखक संसार और सुन्दरतम कविता में प्रकाशित ईश्वर विषयक विचार में पूर्णतया हमारे समान थे। इनमें हम अत्यधिक उन्नत वा प्रगतिशील धार्मिक विचारकों की मुख्य शिक्षाओं को पाते हैं—

हमें यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जिस मन ने उन ऊंचे विचारों को ग्रहण किया और तदनुरूप उत्तम भाषा में प्रकट किया जो वेदों में सर्वत्र पाये जाते हैं, हमारे उच्चतम धार्मिक शिक्षकों और मिल्टन, शैक्सपियर तथा टैनीसन जैसे कवियों से किसी अवस्था में भी कम न था।

इससे बढ़कर सामाजिक विकासवाद (Social Evolution Theory) का खण्डन क्या हो सकता है। यदि वेदों की, जिनको प्राय: सभी पाश्चात्य विद्वान् संसार के पुस्तकालय में प्राचीनतम ग्रन्थ—प्रो० मेक्समूलर के सुप्रसिद्ध शब्दों में The oldest books in the library of mankind मानते हैं, शिक्षायें इतनी ऊंची और पवित्र हैं जितनी बाइबिल के अच्छे से अच्छे भागों की अथवा यदि ऋषि वर्तमान सुसभ्य जगत् के उच्चतम विचारकों और कवियों से कम न थे तो फिर सामाजिक विकास के लिए अवकाश कहां रह जाता है ? स्वयं भौतिक जगत् में विकासवाद के प्रवर्तकों में से एक वैज्ञानिक शिरोमणि का सामाजिक विकासवाद का इस प्रकार का निराकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस सामाजिक विकासवाद के आधार पर जो ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता से इन्कार करते हैं उनको अपना विचार बदलने को विवश होना पड़ेगा। यह बात डा० अल्फ्रेड रसेल वैलेस के उपरिलिखित वाक्यों से स्पष्ट हो जाती है।

दो ईसाई पादरियों द्वारा वेदों की ईश्वरीयता स्वीकृति :—

रेवरेण्ड मौरिस फिलिप्स (Rev. Morris Phillips) नामक ईसाई पादरी ने

"The Teachings of the Vedas" नामक अपने ग्रन्थ में निम्न शब्दों में वेदों को प्रारम्भिक ईश्वरीय ज्ञान बताया है। वे लिखते हैं—

"We have pushed our enquiries as far back in time as the records would permit and we have found that the religious and speculative thought of the people was far purer, simpler and more rational at the farthest point we reached, than at the the nearest in the Vedic Age."

"The conclusion therefore is inevitable viz., that the development of religious thought in India has been uniformly **downward and not upward, deterioration and not evolution. Weare justified therefore in concluding that the higher and purer conceptions of the Vedic Aryans were the result of a primitive Divine Revelation."**

("The Teachings of the Vedas" by Rev. Morris Philips P. 231).

इस लम्बे उद्धरण का तात्पर्य यह है कि हम अपनी खोज को समय की दृष्टि से इतना पीछे की ओर ले गये जितने की लेखादि सामग्री हमें मिल सकती थी और हमने पाया कि लोगों की धार्मिक और दार्शनिक विचारधारा सबसे पुराने समय में जहां तक हम पहुँच सके अधिकतम पवित्र, युक्तियुक्त और सरल थी अपेक्षया वैदिक काल के भी हमारी दृष्टि से समीपतम और नवीनतम समय में।

इसलिये हमारे लिये यह परिणाम निकालना अनिवार्य है कि भारत में धार्मिक विचार का विकास नहीं किन्तु ह्रास ही हुआ है, उन्नति नहीं किन्तु अवनति हुई है। हम यह परिणाम निकालने में न्याययुक्त हैं कि वैदिक आर्यों के उच्चतर और पवित्रतर ईश्वरादि विषयक विचार एक प्रारम्भिक ईश्वरीय ज्ञान के परिणाम थे।

प्रो० हीरेन नामक ईसाई विद्वान का वेद विषयक लेख :—

प्रो० हीरेन (Heeren) नामक एक सुप्रसिद्ध अनुसन्धानकर्ता विद्वान् ऐतिहासिक ने वेदों के विषय में लिखा है कि—

"They (The Vedas) are without doubt the oldest works composed in Sanskrit. Even the most ancient Sanskrit works allude to the Vedas as already existing. The Vedas stand alone in their solitary splendour, standing as beacon of Divine Light for the onward march of humanity.

(Historical Researches by Prof. Heeren) Vol. 11 P. 127).

अर्थात् इसमें सन्देह नहीं कि वेद संस्कृत के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। उपलभ्यमान सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथों में भी उनकी विद्यमानता का स्पष्ट निर्देश पाया जाता है। वे मनुष्यमात्र की उन्नति के लिये अपनी अद्भुत शान में दिव्य प्रकाश स्तम्भ का काम देते हैं।

लेओं देल्बा नामक फ्रेंच विद्वान् का मत :—

१४ जुलाई १८८४ को पेरिस में आयोजित International Literary Association अथवा अन्तर्राष्ट्रीय साहित्यिक संघ के सम्मुख निबन्ध पढ़ते हुए लेओं देल्बा (Mons Leon Delbos) नामक फ्रांस देशीय सुप्रसिद्ध विद्वान् ने घोषणा की कि "Rigveda is the most sublime conception of the great high ways of humanity."

अर्थात् ऋग्वेद मनुष्य मात्र की उच्च प्रगति और आदर्श की उच्चतम कल्पना है।

तीन

वेदों के भारतीय भाष्यकार वा अनुवादक

कलियुग के प्रारम्भ होने पर (जिसका समय आज से लगभग ५०७५ वर्ष पूर्व है) अज्ञान तथा आलस्य, प्रमादादि की ओर भी बृद्धि होती गई। वैदिक परम्परा भी शिथिल और अन्त में लुप्तप्राय होती गई। उस समय वेदों के भाष्य की आवश्यकता को विद्वानों ने विशेष रूप से अनुभव किया और प्राचीन परम्परा के साथ साथ जो अब तक बहुत कुछ विकृत हो चुकी थी, अपने अपने समय के विश्वासों और रूढ़ियों को मिलाते हुए (जिनका आधार अधिकतर पुराण-तन्त्रादि के वचन थे) भाष्यों का निर्माण किया, जिनमें से निम्न विद्वानों के भाष्य सम्पूर्ण अथवा खण्डित रूप से कुछ कुछ अंशों पर उपलब्ध होते हैं। अनेक तो सर्वथा लुप्त हो चुके हैं।

(१) **स्कन्दस्वामी का ऋग्वेद भाष्य**—इन भाष्यकारों में कालक्रम से प्रथम स्थान दक्षिण भारत के वलभी निवासी स्कन्दस्वामी का है, जिसका काल प्रायः ६८७ माना जाता है। इसके भाष्य के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। इनमें एक त्रिवेन्द्रम् (केरल की राजधानी) से ३ भागों में सन् १९२९ और १९४२ में प्रकाशित हुआ है और दूसरा मद्रास विश्वविद्यालय से पूरे प्रथमाष्टक का डा० कुन्हन राजा द्वारा सम्पादित सन् १९३५ में प्रकाशित हुआ। इन दोनों संस्करणों में कई स्थानों पर पर्याप्त अधिक अन्तर है। जहां तक ज्ञात हुआ है इसका भाष्य प्रथमाष्टक पर सम्पूर्ण है और चतुर्थ, पंचम अष्टक पर भी विद्यमान है। यद्यपि वह पुस्तक रूप में अभी प्रकाशित नहीं हुआ। स्कन्दस्वामी का निरूपण भाष्य भी उपलब्ध है।

(२) वेंकटमाधव का ऋग्वेद भाष्य जो बहुत संक्षिप्त सा है सम्पूर्ण ऋग्वेद पर विद्यमान है। इसे ऋगर्थदीपिका के नाम से कहते हैं। डा० लक्ष्मणस्वरूप ने इसे अन्य भाष्यों के आवश्यक स्थल निर्देश सहित सप्तम मण्डल तक प्रकाशित कराया था। इस बीच में उनका देहावसान हो गया तथापि सर्वश्री मोतीलाल बनारसी दास द्वारा यह प्रकाशित हो रहा है। वेंकटमाधव का समय ११वां शताब्दी में माना जाता है।

(३) स्वामी आनन्दतीर्थ (द्वैतमत के प्रबल पोषक श्री मध्वाचार्य) का पद्यबद्ध संक्षिप्त ऋग्भाष्य प्रथम मण्डल के प्रथम ४० सूक्तों पर उपलब्ध होता है, जिसको अधिक विस्तृत व्याख्या उनके अनुयायी राघवेन्द्र यति ने मन्त्रार्थ मंजरी नामक ग्रन्थ में की है। स्वा० आनन्दतीर्थ का समय १२५५ से १३३५ वि० के मध्य में माना जाता है। अधिकतर इन दोनों भाष्यों में अध्यात्मपरक व्याख्या की गई है।

उद्गीथाचार्य ने भी ऋग्वेद पर भाष्य किया था ऐसा कई ग्रन्थों में उल्लेख है किन्तु इस समय उनका भाष्य ऋग्वेद के दशम मण्डल के पंचम सूक्त से ८३ सूक्त तक ही पाया जाता है। शेष रावण, हस्तामलक, मुग्दलाचार्य, देवस्वामी आदि के भाष्य उपलब्ध नहीं होते। रावण भाष्य में १३ मन्त्रों का भाष्य विस्तृत तुलनात्मक अनुशीलन के साथ

डा० सुधीर कुमार गुप्त एम. ए., पीएच. डी. ने जयपुर से 'रावणभाष्य' नाम से प्रकाशित कराया है। सम्पूर्ण वेदभाष्यकारों में सुप्रसिद्ध श्री सायणाचार्य हुए हैं जिनके ऋग्वेद, काण्वसंहिता, सामवेद और अथर्ववेद पर भाष्य उपलब्ध होते हैं। श्री सायणाचार्य विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक बुक्क महाराज के प्रधानमन्त्री थे। बुक्क राजा का समय १३६६ ई० माना जाता है। इन्होंने वेद मन्त्रों की अधिकतर यज्ञ वा कर्म-काण्ड पर ही व्याख्या की है। आध्यात्मिक तथा विविध विद्याप्रतिपादक अंश इनके भाष्यों में बहुत ही कम पाये जाते हैं। अपने समय के विचारों का भी प्रभाव इनके भाष्यों पर पर्याप्त प्रतीत होता है।

उदाहरणार्थ इनके समय में यज्ञों में पशुहिंसा, पुराणोक्त देवी देवता पूजा, जन्मानुसारिणी वर्णव्यवस्था आदि मन्तव्य प्रचलित थे, अतः इनके भाष्यों में भी ऐसे मन्तव्यों के अनुसार अर्थ पाये जाते हैं। अनेक निष्पक्षपात विचारकों का यह भी विचार है कि सायणाचार्य के भाष्य के नाम से अब जो भाष्य प्रचलित है वह अनेक विद्वानों की कृति है। एक साम्राज्य के प्रधानमन्त्री के पास इतने समय की आशा नहीं की जा सकती कि वह सब वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों पर विस्तृत भाष्य तथा अन्य अनेक ग्रन्थों की रचना कर सकेगा। इस विचार के समर्थन में उनका यह भी कथन है कि श्री सायणाचार्य ने ऋग्वेदभाष्य की भूमिका में वेदों की अपौरुषेयता और नित्यता का पूर्व मीमांसा दर्शन के "परन्तु श्रुति सामान्यमात्रम्" "आख्याप्रवचनात्" इत्यादि के आधार पर प्रबल समर्थन करते हुए लिखा है कि—

> **यद्यप्युक्तं प्रमगन्दाद्यनित्यसंयोगान्मन्त्रस्यानादित्वं न स्यादिति तत्रोत्तरं सूचयति उक्तश्चानित्यसंयोग इति। तत्र पूर्वपक्षे वेदानां पौरुषेयत्वं वक्तुं युक्तं काठकं कालापकमित्यादि पुरुषसम्बन्धानिधानं हेतूकृत्य "अनित्यदर्शनाच्च" इति हेत्वन्तरं सूत्रितं तस्यायमर्थः बबरः प्रावाहणिरकामयत इत्यनित्यानां बबराद्यर्थानां दर्शनात्, ततः पूर्वमसत्त्वात् पौरुषेयो वेद इति। तस्योत्तरमेवं सूत्रितम् "परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्" इति मथ तस्याय योंयत् काठकादिसमाख्यानं तत् प्रवचननिमित्तं, यत् तु परं बबराद्यनित्यदर्शनं तच्छब्दसामान्यमात्रं न तु तत्रानित्यो बबराख्यः कश्चित् पुरुषो विवक्षितः किन्तु बबर इति शब्दानुकृतिः, तथा सति बबर इति शब्दं कुर्वन् वायुरभिधीयते स च प्रावाहणिः प्रकर्षेण वहनशीलः एवमन्यत्राप्यूहनीयम्।**

इस सन्दर्भ में भावार्थ यह है कि पूर्वपक्ष के अनुसार वेद पुरुषकृत और अतएव अनित्य हैं। काठकम्, कालापकम्, इत्यादि जो नाम वेदशाखाओं के प्रचलित हैं उनसे भी यह सूचित होता है कि कठ, कलाप, पिप्पलाद आदि तथा अन्य ऋषियों ने उन्हें बनाया। इसी प्रकार "बबरः प्रावाहणिरकामयत" इत्यादि जो वाक्य वेद माने जाने वाले (ब्राह्मण) ग्रन्थों में पाये जाते हैं, उनसे भी स्पष्ट है कि प्रावाहण के पुत्र बबर ने

ऐसी कामना की। इसका अर्थ यह हुआ कि बबर के होने के पश्चात् वह तुम्हारा वेद भाग बना। इसके पूर्व पक्ष का उत्तर "परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम्" इस सूत्र द्वारा दिया गया है कि वेद में व्यक्तिविशेष वाचक शब्द नहीं हैं, किन्तु गुणादि सूचक सामान्य शब्द हैं अतः "बबरः प्रावाहणिरकामयत" इत्यादि का तात्पर्य प्रवाहण के पुत्र बबर नामक किसी व्यक्तिविशेष से नहीं, किन्तु चलने वाले वायु से है जैसे कि इसके यौगिक अर्थ से स्पष्ट है।

इस प्रकार वेदों को अपौरुषेय और नित्य मानने वाले सायणाचार्य के भाष्य में स्थान-स्थान पर राजाओं और ऋषि मुनियों के अनित्य आख्यानों का पाया जाना विद्वानों को आश्चर्य में डालता है। इस लिये श्री सायणाचार्य जैसे महाविद्वान् पर इतने भयंकर परस्परविरोध का आरोप लगाने की अपेक्षा वे यह मानना अधिक अच्छा समझते हैं कि उन्होंने कुछ सामान्य निर्देश दे दिये होंगे, फिर उनके अधीनस्थ पण्डितों ने वेद भाष्य के भिन्न-भिन्न अंगों का निर्माण किया जो सायणभाष्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ, किन्तु जिसको सावधानता से आद्योपान्त देखने का एक नवीन साम्राज्य के प्रधान मन्त्री होने के कारण स्वाभाविक व्यग्रतावश उनको समय नहीं मिल सका। श्री सायणाचार्य के अत्यन्त भक्त चाहें तो इस पक्ष को स्वीकार कर सकते हैं। जो बात मैंने यहां श्री सायणाचार्य के भाष्य में स्पष्ट दिखाई देने वाले परस्पर विरोध के सम्बन्ध में लिखी है वही स्कन्दस्वामी के भाष्य के विषय में भी कही जा सकती है। स्कन्दस्वामी ने निरुक्त २।१२ की टीका में लिखा है कि —

> **एवं आख्यानस्वरूपाणां मन्त्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कार्या एष शास्त्रे सिद्धान्तः। औपचारिकोऽयं मन्त्रेष्वाख्यानसमयः परमार्थेन तु नित्यपक्ष इति सिद्धम्॥**
>
> (निरुक्त २।१२, स्कन्दटीका पृ० ७८)

अर्थात् आख्यानरूप में जो मन्त्र हैं उनकी यजमान तथा नित्य पदार्थों के विषय में योजना कर लेनी चाहिये। मन्त्रों में आख्यान का समय (क्रम) यह औपचारिक गौण वा आलंकारिक है। वास्तव में तो नित्यपक्ष ही ठीक है। यही शास्त्रसिद्धान्त है।

इतना होते हुए भी स्कन्दस्वामी के ऋग्वेदभाष्य में सैंकड़ों अनित्य इतिहास सूचक स्थल विद्यमान हैं। इस परस्पर विरोध के विषय में क्या कहा जाय ? विद्वान् निष्पक्षपात होकर स्वयं विचार करें।

वर्तमान युग के भाष्यकारों में से ऋषि दयानन्द और सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविंद जी के शिष्य कपाली शास्त्री जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इन दोनों का ऋग्वेद भाष्य खेद है कि देहावसान के कारण अपूर्ण ही रह गया। ऋषि दयानन्द का ऋग्वेद सप्तम मण्डल के ६१वें सूक्त के द्वितीय मन्त्र तक पाया जाता है और कपाली शास्त्री जी का ऋग्वेद के प्रथम अष्टक अर्थात् प्रथम मण्डल के १२१वें सूक्तक। काल क्रम से अन्य भाष्यकारों की अपेक्षा नवीन होते हुए भी ऋषि दयानन्द प्राचीन आर्य परम्परा के सबसे अधिक अनुयायी हैं।

इस लेख के प्रारम्भ में मैंने जिस परम्परागत वेद विषयक विश्वास का निर्देश किया है उसको आद्योपान्त अपने भाष्य में अनुसरण करने का श्रेय यदि किसी आचार्य को है तो ऋषि दयानन्द को। वेदों को अपौरुषेय तथा नित्य मानने के सर्वशास्त्र सम्मत

सिद्धान्त को मानते हुए उन्होंने अन्त तक इस नित्यता के सिद्धान्त को निभाया है और वैदिक शब्दों को यौगिक मानकर अनित्य इतिहास की कल्पना को सर्वथा अशुद्ध प्रमाणित किया है। अपने अर्थों की पुष्टि के लिए प्रत्येक आवश्यक स्थान पर उन्होंने ब्राह्मणग्रन्थ, निघण्टु, यास्काचार्य कृत निरुक्त आदि प्रामाणिक ग्रन्थों से विशेष सहायता ली है। उन्होंने वेदों को विविध विद्याओं का प्रतिपादक और मनुष्य मात्र के लिये उपयोगी बता कर स्त्री-शूद्रादि कुलोत्पन्न प्रत्येक मनुष्य को भी—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्याम्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय।

इस यजु० २६।२ के आदेशानुसार वेदाध्ययन का अधिकारी बताया है।

"सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति" (कठ)

इस कठोपनिषद् के वचनानुसार उन्होंने आध्यात्मिक अर्थों की वेदों में प्रधानता मानी है किन्तु उसके साथ अध्यापक, उपदेशक, राजा, प्रजा, विवाहित स्त्री-पुरुष, ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यासी, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र इन सबके कर्तव्यों का, साथ ही विविध विद्याओं का उन्हें प्रतिपादक बताया है। इनके भाष्य की विशेषताओं को अन्य भाष्यों के साथ तुलना करने पर भली भांति समझा जा सकता है।

सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द ने The secret of the Vedas इस शीर्षक की एक लेखमाला अंग्रेजी मासिक पत्रिका "आर्य" में कई वर्षों तक चलाई थी जो अब On the Vedas इस नाम से अरविन्दाश्रम पाण्डीचेरी से प्रकाशित हो चुकी है और हिन्दी में "वेद रहस्य" इस नाम से उसके ३ भाग निकल चुके हैं। इस पुस्तक में मुख्यतया आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अनेक वैदिक सूक्तों की व्याख्या की गई है और वैदिक देवताओं के स्वरूप पर उदाहरण सहित विवेचन किया गया है। श्री अरविन्द जी के ही निर्देशन में महाविद्वान् श्री कपाली शास्त्री जी ने ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १२१वें सूक्त तक के मन्त्रों पर हृदयंगम भाष्य किया है जिसका नाम उन्होंने "सिद्धांजन भाष्य" रखा है।

स्वामी आत्मानन्द का भाष्य जो मुख्यतया आध्यात्मिक है १।१६४ पर पाया जाता है। यजुर्वेद पर उव्वट, महीधर और ऋषि दयानन्द के संस्कृत भाष्य पाये जाते हैं। यजुर्वेद पर पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र का महीधरभाष्यानुसारी हिन्दी भाष्य है। सामवेद पर संस्कृत में श्री सायणाचार्य के अतिरिक्त उन से पूर्ववर्ती भरत स्वामी और माधव भाष्य हैं। ऋषि दयानन्द के अनुयायी सुप्रसिद्ध आर्य विद्वान् स्वामी तुलसीरामजी का संस्कृत हिन्दी भाष्य भी विद्यमान है। वर्तमान विद्वानों में से पण्डितराज परिव्राजकाचार्य स्वा० भगवदाचार्य जी ने संस्कृत में यजुर्वेद और सामवेद का भाष्य किया है। वर्तमान काल में गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के सुयोग्य स्नातक पं० जयदेव जी शर्मा विद्यामार्तण्ड, मीमांसा तीर्थ ने चारों वेदों का हिन्दी अनुवाद किया जिसे आर्य साहित्य मण्डल अजमेर ने प्रकाशित किया है। सामवेद पर आचार्य वीरेन्द्र शास्त्री, पं० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार तथा आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री और महामहोपाध्याय स्व० श्री पं० श्रीपाद दामोदर सातवलेकर जी साहित्यवाचस्पति द्वारा सम्पादित हिन्दी भाष्य भी विद्यमान हैं। अथर्ववेद पर संस्कृत में श्री सायणाचार्य का भाष्य और हिन्दी में पं० जयदेव जी शर्मा के अतिरिक्त श्री पं० सातवलेकर जी का सुबोध भाष्य ४ खण्डों में विद्यमान है। बंगला, मराठी इत्यादि प्रादेशिक भाषाओं में भी कुछ वेदों के अनुवाद विद्यमान हैं।

चार

वेदों के पाश्चात्य अनुवादक और भाष्यकार

गत लगभग २०० वर्षों में अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने अपने विचारानुसार वेदों का अध्ययन करके अनेक ग्रन्थ जर्मन, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं में लिखे। इनमें से प्रो० मैक्समूलर, रोजन, लुडविग, ग्रासमन, प्रो० राँथ, ओल्डनबर्ग, डा० वीबर, कोलब्रुक, सर विलियम जोन्स, बर्नफ, बेनफे (Benfey) विल्सन, ब्लूमफ़ील्ड, क्लैरन, मौरिस फिलिप्स, ह्विटनी, कीथ, मैक्डोनल, जैकोबी, ग्रिफिथ, बोहतलिंग, रेवरेन्ड स्टीवेन्सन, प्रो० रेनू, हिल ब्रान्ट्, ग्रिसवोल्ड वी० आर० ओटो, गेलडनर, केगी इत्यादि बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें से प्रायः सभी ने वेदों के देवता, वैदिक शिक्षाएं, वैदिक धर्म, वरुण देवता, वैदिक व्याकरण, वैदिक छन्द इत्यादि वेद सम्बन्धी विषयों पर अपनी अपनी भाषा में अपने विचार प्रकट किये और ग्रन्थों की रचना की। इनमें से जर्मनी के प्रो० राँथ जैसे कुछ लोगों को छोड़कर (जिन्होंने बोहतलिंग (Bohitlingk) के साथ मिलकर Sanskrit Worter Buth (संस्कृत महाकोष) की ७ खण्डों में रचना की) और जिनका नारा Lesvon Sayana (Down with Sayana) अर्थात् सायण का अपमान करो वा उसका अनुसरण मत करो; यह रहा; शेष सायण, महीधर आदि पौराणिक भाष्यकारों के अधिकतर अनुयायी थे। प्रो० विल्सन ने तो सायणाचार्य के ऋग्वेद भाष्य का अंग्रेजी में अनुवाद किया ही, अन्यो ने भी प्रायः उसका तथा मध्यकालीन पौराणिक वा वाममार्गी महीधर आदि का अनुसरण किया। ग्रिफिथ ने अपने शुक्ल यजुर्वेद के अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका में लिखा—

"All that I have attempted to do is to give a faithful translation to the best of my ability, of the texts and sacrificial formulas of the Vedas, with just sufficient commentary, chiefly from Mahidhar, to make them intelligible.

अर्थात् मैंने जो कुछ प्रयत्न किया है वह इतना ही है कि अपनी योग्यता के अनुसार उन मन्त्रों और याज्ञिक सूत्रों का ठीक ठीक अनुवाद मुख्यतया महीधर के भाष्य के आधार पर दिया है ताकि पाठक उन्हें समझ सकें।

जहां प्रोफेसर विल्सन ने सायणाचार्य के ऋग्वेद भाष्य का अंग्रेजी में अनुवाद अपनी टिप्पणियों सहित किया वहां ग्रिफिथ ने चारों वेदों का अंग्रेजी कविता में अनुवाद किया।

सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् प्रो० मैक्समूलर ने ऋग्वेद के सायणभाष्य के संस्करण को प्रकाशित करने के अतिरिक्त Vedic Hymns Vol. I. में जो Sacred Books of the East Series में प्रकाशित किया, मरुतः, प्रजापतिः रुद्रः, वायुः, इत्यादि विषयक अनेक ऋग्वेद के सूक्तों का अंग्रेजी में अनुवाद अपनी विवेचनात्मक विस्तृत टिप्पणियों सहित किया जिनमें अनेक अटकलपच्चू अर्थ और कल्पनायें करने के अतिरिक्त (जैसे कि उसने स्वयं अनेक स्थलों पर स्वीकार किया) वेद के प्रचलित मूल

पाठों को भी परिवर्तित करने का दुःस्साहस किया।

Vedic Hymns के द्वितीय खण्ड का संकलन ओल्डनवर्ग ने अपनी टिप्पणियों सहित आग्नेय सूक्तों का अनुवाद करते हुए किया। इसने भी अनेक अनर्गल कल्पनायें अपनी ओर से जोड़ीं और वेदों के प्रचलित पाठ में भी अनेक संशोधन (Amendments) प्रस्तुत करने का दुःस्साहस किया। इसके कुछ नमूने हम "वेद विषयक पाश्चात्य विद्वानो के मन्तव्य" शीर्षक अध्याय में प्रस्तुत करेंगे।

राबर्टो डि नोबिली नामक ईसाई फ्रेंच मिश्नरी ने १७५० ई० के लगभग एक नया नकली यजुर्वेद Ezour Vedium बनाया, जिसमें पुराणों और ईसाई मत की गप्पें भरी हुई थीं। १७७८ में इस पर बड़े बड़े लेख निकले। अन्त में प्रो० मैक्समूलर ने इसका भाण्डा फोड़ दिया और इसे सर्वथा कृत्रिम और जाली बताया। ऋग्वेद का जर्मन भाषा में लुड्विग (Ludwig), ग्रासमान (Grasman), गेलडनेर (Geldner) आदि जर्मन विद्वानों ने अनुवाद किया। ग्रासमान ने ऋग्वेद का शब्द कोष भी जर्मन अर्थ-सहित बनाया। जिसका नाम Worterbuckzum Rigveda है। अफरेक्ट् (Aufrecht) नामक जर्मन विद्वान् ने Die Hymen des Rigveda इस नाम से दो खण्डों में ऋग्वेद का जर्मन अनुवाद किया जिसका नया संस्करण १९६८ ईसवी में सुप्रसिद्ध प्राच्य पुस्तक प्रकाशक और विक्रेता Otto Harasowitz ने वीजबेडन (Wiesbaden) में प्रकाशित किया है। K. F. (Geldner) गेल्डनर का अनुवाद Harvard Oriental Series में ३ खण्डों में प्रकाशित हुआ।

सामवेद का जर्मन अनुवाद बेनफे (Benfey) नामक जर्मन विद्वान् ने किया और उसके आधार पर अंग्रेजी अनुवाद रेवरेन्ड स्टीवन्सन और ग्रिफिथ ने किया। बर्गेन (Bergaigne) नामक फ्रेंच विद्वान् ने Quarante Hymnes du Rigveda इस नाम से ऋग्वेद के अनेक सूक्तों का फ्रेंच भाषा में अनुवाद प्रकाशित करवाया। अथर्व वेद का अंग्रेजी अनुवाद विलियम ह्विटनी (William Whitney) नामक अमरीकन विद्वान् ने किया जो उसकी मृत्यु के पश्चात् २ भागों में प्रकाशित हुआ।

ब्लूमफील्ड नामक विद्वान् ने भी अथर्व वेद का अंग्रेजी अनुवाद किया। ग्रिफ़िथ ने अन्य वेदों की तरह अथर्ववेद का भी अंग्रेजी अनुवाद दो भागों में प्रकाशित करवाया।

इसके अतिरिक्त एम० ए० लांगलोआ (Longlois) नामक फ्रेंच विद्वान् ने ४ भागों में सम्पूर्ण ऋग्वेद की फ्रेंच भाषा में १८४८ से १८५१ तक व्याख्या की।

ए० मैक्डोनल नामक अंग्रेज विद्वान् ने Vedic Grammer (वैदिक व्याकरण), Vedic Religion (वैदिक धर्म) Vedic Index Jointly with Keith, Vedic Mythology, Vedic Reader. इत्यादि वेदविषयक कुछ पुस्तकों के अतिरिक्त Hymns from the Rigveda नाम से अनेक वैदिक सूक्तों का अंग्रेजी में अनुवाद किया जो अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों में पाठ्य पुस्तक के रूप में पढ़ाया जाता रहा। एल् रेनू (L Renon) नामक प्राच्य विद्या विशारद फ्रेंच विद्वान् ने Hymnes et prieres de Veda (Hymns and prayers of the Veda) नाम से वेदों के अनेक सूक्तों का फ्रेंच में अनुवाद किया।

चार्लोट् मैनिंग (Charlotte Manning) नामक अंग्रेज विद्वान् ने Hymns of the Rigveda इस नाम से ऋग्वेद के अनेक सूक्तों का अंग्रेजी में अनुवाद किया और वैदिक देवताओं के विषय में कुछ विवेचन किया। अन्य भी अनेक पाश्चात्य

विद्वानों ने वेदों के विषय में परिश्रम किया जिनके परिश्रम को देखकर कई बार आश्चर्य होता है और उनके परिश्रम को अभिनन्दनीय और अनुकरणीय कहा जा सकता है।

किन्तु इन पाश्चात्य विद्वानों के विषय में निःसंकोच कहा जा सकता है कि बहु संख्या का वेदों के अनुवाद करने अथवा वेद विषयक ग्रन्थ लिखने में भाव निष्पक्ष और शुद्ध न था प्रत्युत प्राचीन आर्य धर्म की हीनता दिखाकर ईसाइयत की श्रेष्ठता का अथवा विकासवाद की सच्चाई का प्रतिपादन करना था। मोनियर विलियम्स, मैक्डोनल और कीथ का नाम इन पाश्चात्य विद्वानों में प्रमुख सज्जनों के रूप में लिया जा सकता है। उन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में संस्कृत के प्रोफेसर के रूप में जिस बोडन ट्रस्ट की ओर से अनेक वर्षों तक कार्य किया उसके उद्देश्य के विषय में मोनियर विलियम्स ने अपनी सुप्रसिद्ध Sanskrit English Dictionary की भूमिका में जो शब्द लिखे वे विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं। उन्होंने लिखा—

That the special object of his (Boden's) munificent bequest was to promote the translation of the scriptures into Sanskrit, so as to enable his countrymen to proceed in the "conversion of the natives of India to the Christian religion."

अर्थात् बौडन महोदय के उदार दान का मुख्य उद्देश्य ईसाइयों के धर्म ग्रन्थों का संस्कृत में अनुवाद करना था ताकि उसके देशवासी भारतीयों को ईसाईमत की दीक्षा देने के कार्य में अग्रसर हो सकें।

मोनियर विलियम्स ने अपनी "Modern India and the Indians" नामक पुस्तक में लिखा।

"When the walls of the mighty fortress of Brahmanism were encircled, undermined and finally stormed by the soldiers of the Cross, the victory of Christianity must be signal and complete."

(Modern India and the Indians, 3rd Ed., P. 267 by Monior Williams)

सारांश यह कि जब ब्राह्मण धर्म के प्रबल दुर्ग पर आक्रमण करके उसको घेर लिया जाए, खोखला कर लिया जाय और अन्त में ईसा के सैनिकों द्वारा सर्वथा नष्ट कर लिया जाये तब ईसायत की जीत महत्त्वपूर्ण और पूर्ण होगी। इन शब्दों पर कुछ भी टिप्पणी करना व्यर्थ है। प्राच्य विज्ञान विशारदों में अग्रणी माने जाने वाले प्रो० मैक्समूलर का उद्देश्य भी वेदों का अनुवाद करने आदि में शुद्ध न था और उसका लक्ष्य भारतीयों को ईसाई बनाने में प्रवृत्त वा प्रोत्साहित करना था यह निम्नलिखित पत्र-व्यवहार से स्पष्ट ज्ञात होता है। प्रो० मैक्समूलर ने उन दिनों के भारत मन्त्री ड्यूक आफ आर्गायल (Duke of Orgoil) को १६ दिसम्बर १८६८ के एक पत्र में लिखा—

"The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in whose fault will it be ?

अर्थात् भारत के प्राचीन धर्म का नाश तो अब निश्चित है। और यदि ईसाई मत आकर उसका स्थान न ग्रहण करे तो यह किसका दोष होगा ? सन् १८६८ में अपनी पत्नी के नाम एक पत्र लिखते हुए प्रो० मैक्समूलर ने लिखा—

I hope I shall finish that work and I feel convinced though I shall not live to see it, yet this edition of mine the (of Rigveda)

and the translation of the Vedas will hereafter tell to a great extent on the fate of India and on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the root is, I feel sure "the only way of up rooting all that has been sprung from it during the last three thousand years."

अर्थात् मुझे आशा है कि मैं उस काम को (वेदों का सम्पादनादि) पूरा कर दूंगा और मुझे निश्चय है कि यद्यपि मैं उसे देखने के लिए जीवित न रहूँगा तो भी मेरा ऋग्वेद का यह संस्करण और वेदों का अनुवाद भारत के भाग्य और लाखों भारतीयों के आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालेगा। यह (वेद) उनके धर्म का मूल है और मूल को दिखा देना, उससे पिछले तीन हजार वर्षों में जो कुछ निकला है, उसको मूल सहित उखाड़ देने का सबसे उत्तम प्रकार है।

श्री पुसे का मैक्समूलर को पत्र

प्रो० मैक्समूलर के एक घनिष्ठ मित्र ई० बी० पुसे ने उन्हें जो पत्र लिखा वह भी इस प्रसंग में उल्लेखनीय है। उसने लिखा—

"Your work will form a new era in the efforts for the conversion of India and Oxford will have reason to be thankful that by giving you a home. it will have facilitated a work of such primary and lasting importance in the conversion of India and which by enabling us to compare that early "false religion" with the true, illustrates the more than blessedness of what we enjoy."

अर्थात् आपका कार्य भारतीयों को ईसाई बनाने के यत्न में नव युग लाने वाला होगा और औक्सफोर्ड को अपने को धन्य समझने का अवसर होगा कि उसने आपको आश्रय देकर भारत को ईसाई बनाने का प्रथम और अत्यावश्यक कार्य सुगम बना दिया। साथ ही आपका यह कार्य हमें समर्थ बनाएगा कि हम पुराने झूठे धर्म की सच्चे (ईसाई) धर्म के साथ तुलना का आनन्द उठाएं।...भारतीयों को ईसाई बनाने की धुन प्रो० मैक्समूलर के सिर पर कैसी सवार थी, यह श्री एन० के० मजूमदार नामक ब्रह्मसमाजी सज्जन को सन् १८६६ में लिखे एक पत्र से भली भांति ज्ञात होता है जिसमें प्रो० मैक्समूलर ने लिखा था।

Tell me some of your chief difficulties that prevent you and your countrymen from openly following Christ and when I write to you, I shall do my best to explain how I and many who agree with me have met them and solved them. ...From my point of view, India, at least the best part of it, is already converted to Christianity. You want no persuasion to become a follower of Christ. Step boldly forward, it will not break under you and you will find many friends there to welcome you on the other shore and among them none more delighted than your old friend and fellow labourer, **F. Maxmuller.**"

(Life and Letters of F. Maxmuller, Published by Georgina Maxmuller, London 1902).

अर्थात् आपको और आपके देशवासियों को खुले तौर पर ईसा मसीह की शरण में आने में जो कठिनाइयां हैं उन्हें मुझे बताइये और मैं अपना उत्तर उनके विषय में लिख दूंगा। मेरे दृष्टिकोण से तो भारत, कम से कम इसका सर्वोत्तम भाग, ईसाई मत

में परिवर्तित हो चुका है। आपको ईसाई बनने की प्रेरणा की भी आवश्यकता नहीं। बस अब साहसपूर्वक निर्भयता के साथ आगे बढ़िये। यह आपके नीचे टूट न जाएगा और आप देखेंगे कि आपका स्वागत करने के लिये अन्यों के साथ आपका पुराना साथी और मित्र मैक्समूलर भी उपस्थित और सबसे अधिक प्रसन्न होगा।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि प्रो० मैक्समूलर का वेदों के अनुवादादि का कार्य वैदिक धर्म को नीचा दिखाकर ईसाई मत की श्रेष्ठता दिखाने के लिए था न कि शुद्ध भावना और सत्य ग्रहण से प्रेरित। The Rigveda and Vedic Religion के लेखक मि० क्लेटन (Clayton) ने प्रो० मैक्समूलर के विषय में अपनी पुस्तक के पृ० १५६ में लिखा है कि—

"Prof. Maxmuller did not hesitate to say, it must not be forgotten, that though the Historical interest of the Veda can hardly be exaggerated, large numbers of the Vedic hymns are childish in the exterme, tedious and common place. Many of them convey no clear meaning, or are full of vain repetitions. It is not the rule but the exception to find in this great collection of literature any cry of the soul, any glimpse of a spiritual instinct, any grasp of a high revelation."

(The Rigveda and Vedic Religion by Clayton, P. 156)

इसका भावार्थ यह है—इस बात को न भूलना चाहिए कि यद्यपि प्रो० मैक्समूलर के अनुसार वेदों का ऐतिहासिक महत्त्व बहुत अधिक है तथापि वैदिक सूक्तों की अत्यधिक संख्या बचपन वा मूर्खता की पराकाष्ठा से पूर्ण, नीरस और तुच्छ विचारों से भरी है। यह नियम नहीं, केवल अपवाद के रूप में है कि इन सूक्तों में कहीं आत्मा की पुकार, आध्यात्मिक प्रभा की कोई झांकी अथवा उच्च ईश्वरीय ज्ञान की कोई झलक दिखाई देती है।...मद्रास क्रिश्चियन सोसाइटी द्वारा प्रकाशित "Vedic Hinduism" नामक पुस्तक में पृ० ८७ पर प्रो० मैक्समूलर के निम्न शब्दों को उद्धृत किया गया है।

"I remind you again that the Veda contains a great deal of what is childish and foolish. though very little of what is bad and objectionable. Many hymns are utterly unmeaning and insipid.

(Prof. Maxmuller quoted in Vedic Hinduism P. 87 Published by Madras Christian Society)

अर्थात् मैं तुम्हें फिर याद दिलाता हूं कि वेद के अन्दर बहुत कुछ बचपन वा मूर्खतापूर्ण अंश है यद्यपि जिसे बुरा वा आक्षेप योग्य कहा जाए वह कम है। बहुत सारे सूक्तों का कोई अर्थ नहीं और वे सर्वथा निरर्थक और नीरस हैं।

ऐसे उद्देश्य और विचारों से प्रेरित होकर जो कार्य किया गया उसे निष्पक्ष कहना सर्वथा असम्भव है। इसी पक्षपातपूर्ण मनोवृत्ति के कारण प्रायः पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों का ऐसा अनर्थ किया जिसे देखकर अत्यन्त आश्चर्य और खेद होता है। ये लोग वेदों के यथार्थ उच्च तत्त्वों को समझने में प्रायः असमर्थ रहे और उन्होंने ऐसा ही भरसक यत्न किया जिससे वैदिक धर्म की शिक्षाओं का जंगलीपन और ईसाई मत की श्रेष्ठता तथा विकासवाद की यथार्थता प्रकट हो। उनमें से बहुतों ने वेदों को बच्चों की बिलबिलाहट (Prattling of children), गडरियों के गीत (Songs of the shepherds) या कूड़ा कर्कट (Rubbish) तक बताने में संकोच नहीं किया। प्रायः वेदों

को ईसा से एक दो हजार वर्ष पूर्व की रचना सिद्ध करने का कपोलकल्पित और अटकल पच्चू तरीके पर यत्न किया गया। वेद प्रकृति पूजा और हजारों देवी-देवताओं की पूजा का विधान करते हैं। वैदिक यज्ञों में बकरों, भेड़ों, घोड़ों, बैलों तथा गौओं यहां तक कि मनुष्यों की भी बलि दी जाती थी। सोम के नाम से वैदिक आर्य शराब का सेवन करके मस्त रहते थे। जैसे कि रेवरेन्ड स्टीवन्सन और ग्रिफिथ ने सामवेद के अंग्रेजी अनुवाद में ज्ञानमय भक्ति रस प्रतिपादक सोम का अधिकतर Wine या Liquor अर्थ करके दिखाने का यत्न किया है। वे पचास पचास और सौ सौ तक स्त्रियों से विवाह कर लेते थे, उनका सदाचार का कोई ऊंचा मानदण्ड (Standard) न था, वरुण को छोड़कर इन्द्रादि सभी देव खुशामदपसन्द और हीन चरित्र के थे और ऋषि उनकी खुशामद करने के लिए वेद मन्त्रों का निर्माण करते थे; इत्यादि बातों का इनमें से अनेकों ने अपने ग्रन्थों में प्रतिपादन अत्यन्त अशुद्ध और कल्पित आधारों पर वेद मन्त्रों के अर्थों का अनर्थ करके किया। ऐसे पाश्चात्य विद्वानों की वेदार्थ शैली की आलोचना करते हुए जगविख्यात योगी श्री अरविन्द जी ने ठीक ही लिखा था कि—

"If ever there was toil of interpretation in which the loosest vein has been given an ingenuous speculation, in which doubtful indications have been snatched at as certain proffs, in which the boldest conclusions have been insisted upon with the scantiest justification, the most enormous difficulties ignored and preconceived prejudices maintained in face of the clear and often admitted suggestions of the text, it is surely this labour so eminently respectable otherwise for its industry, good will and power of research, performed through a long century by European Vedic Scholarship."

(Dayanand and Veda by Shri Yogi Aurbindo).

अर्थात् यदि कोई वेद की व्याख्या का परिश्रम है जिसमें बिल्कुल तुच्छ आधार को एक चतुरतापूर्ण विचार का रूप दे दिया गया है, जिसमें संदिग्ध संकेतों को निश्चित प्रमाणों का रूप दे दिया गया है। जिसमें अत्यन्त तुच्छ और नगण्य प्रमाणों के आधार पर अत्यधिक साहसपूर्ण परिणाम निकालने पर बल दिया गया है, जिसमें बहुत स्पष्ट और विकट कठिनाइयों की भी उपेक्षा की गई है, और वेद मन्त्रों के स्पष्ट निर्देश होते हुए भी उनके विरुद्ध केवल पक्षपात पूर्ण पूर्वाग्रहों को प्रधानता दी गई है तो यह पाश्चात्य विद्वानों का वेद विषयक परिश्रम है जो अपने परिश्रमादि के लिये अवश्य प्रशंसनीय है।

जिन पाश्चात्य विद्वानों ने निष्पक्षभाव से वेदों का अध्ययन किया उन्होंने वेदों के महत्त्व को स्वीकार किया जैसे कि इस निबन्ध में स्थानस्थान पर दिखाया गया है और आगे भी दिखाया जायेगा। इस विषय की शेष बातोंका प्रासंगिक विवेचन उदाहरणसहित अन्यत्र किया जायेगा।

पाँच

मध्यकालीन आचार्यों की वेद विषयक मान्यताएँ

मध्यकाल में श्री शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, वल्लभाचार्य, निम्बार्काचार्य, स्कन्दस्वामी, भरत स्वामी, सायणाचार्य, उव्वट, महीधरादि जो आचार्य तथा वेद भाष्यकार हुए हैं उन सबने भी इस निबन्ध के प्रथम अध्याय में प्रदर्शित प्रमाणों के अनुसार उन्हें परम प्रमाण माना है। श्री शंकराचार्य का ब्रह्मसूत्र अ.३ के शास्त्रयोनित्वात् इस सूत्र के भाष्य को प्रथम अध्याय में उद्धृत किया जा चुका है जिसमें उन्होंने ऋग्वेदादि शास्त्र को सर्व विद्याभण्डार और सर्वज्ञानमय बताते हुए स्पष्ट लिखा है कि—

"नहीदृशस्यर्ग्वेदादिलक्षणस्य सर्वज्ञगुणान्वितस्य सर्वज्ञादन्यतः संभवोऽस्ति।" (ब्रह्मसूत्र १.३ शांकरभाष्य)।

अर्थात् ऐसे सर्वज्ञ गुणयुक्त इन वेदों का संभव (उत्पत्ति) सर्वज्ञ ब्रह्म को छोड़कर और किसी से नहीं हो सकती।)

श्री मध्वाचार्य जी (स्वा० आनन्दतीर्थ) ने जो द्वैतमत के प्रतिपादक सुप्रसिद्ध आचार्य हुए हैं, ऋग्वेद के प्रथम ४० सूक्तों का भाष्य किया और उसके प्रारम्भ में लिखा—

"मुनिस्तु सर्वविद्यानां, भगवान् पुरुषोत्तमः।
विशेषतश्च वेदानां, यो ब्रह्माणमिति श्रुतिः॥
ऋग्वेदादिकमस्यैव, श्वसितं प्राह चापरा॥"—आनन्दतीर्थः।

अर्थात् सब विद्याओं का विशेषतः वेदों का ज्ञानदाता भगवान् विष्णु है जैसे कि—

"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं, यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं, मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥

इस श्वेताश्वतर श्रुति (६.१८) में बताया गया है। दूसरी श्रुति (बृहदारण्यकोपनिषत्) में "एतस्य वा महतो भूतस्य निःश्वसितमेतद् यदृग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेदः॥ बृहदा० ४.५.११) इत्यादि द्वारा ऋग्वेदादि को भगवान् का श्वास रूप कहा गया है। श्री मध्वाचार्य (स्वा० आनन्दतीर्थ) ने अपने द्वैतादि सिद्धान्तों के समर्थन में ब्रह्मसूत्र अणु भाष्यादि में प्रायः सर्वत्र वेद मन्त्रों के ही प्रमाणोंको उद्धृत किया है। कहीं कहीं पुराणों के वचनों को भी उन्होंने अपने ग्रंथों में उद्धृत किया है किन्तु उनके विषय में उन्होंने स्पष्ट लिख दिया है कि—

"पुराणस्योपजीव्यश्च, वेद एव न चापरः।
तद् विरोधे कथं मानं, तत् तत्रच भविष्यति॥"

अर्थात् पुराणों का उपजीव्य (आधारभूत प्रमाण) वेद ही है और नहीं। इसलिए वेद के विरुद्ध होने पर उन (पुराणों) को कैसे प्रामाणिक माना जा सकता है? इसी प्रकार

अन्य मध्यकालीन आचार्यों के वचनों को उद्धृत किया जा सकता है किन्तु विस्तार भय से उनको यहां उद्धृत करना आवश्यक नहीं प्रतीत होता। चतुर्वेद भाष्यकार श्री सायणाचार्य ने वेदभाष्य के प्रारम्भ में यह श्लोक लिखा—

"यस्य निःश्वसितं वेदाः, यो वेदेभ्योऽखिलं जगत् ॥
निर्ममे तमहं वन्दे, विद्यातीर्थं महेश्वरम् ॥

अर्थात् मैं उस महेश्वर को नमस्कार करता हूं जिसके वेद निःश्वास रूप हैं और जिसने वेदों द्वारा सारे जगत् का निर्माण किया।

इस प्रकार इन मध्यकालीन आचार्यों और वेदभाष्यकारों ने जहां वेद विषयक प्राचीन आर्य परम्परा का (जिसका निर्देश प्रथम अध्याय के प्रारंभ में किया जा चुका है) कुछ अंश तक अनुसरण किया वहां उनसे कुछ ऐसी भयंकर भूलें हो गई जिनके कारण हो अनेक पाश्चात्य विद्वानों और उनके भारतीय अनुयायियों ने वेदों के विषय में अनेक भ्रान्त धारणाएं बना लीं जिनके निराकरण के लिए वेद प्रेमी विद्वानों को अतिविशेषेण प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इनमें से कुछ का निर्देश नीचे किया जाता है—

(१) वेदों से तात्पर्य ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद इन चार मन्त्र संहिताओं का है जिनका मंगलमय सर्वज्ञ भगवान् ने मानव सृष्टि के प्रारम्भ में उपदेश किया, किन्तु इन मध्यकालीन आचार्यों और भाष्यकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थों और उपनिषदों का भी वेद में समावेश कर लिया जो स्पष्टतया ऋषिकृत हैं और जिनमें नचिकेता, याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी, गार्गी, जनक, अश्वपति, हरिश्चन्द्र इत्यादि के इतिहास तथा उनसे सम्बद्ध कथाएं पाई जाती है। दुर्भाग्यवश तान्त्रिकों ने ब्राह्मण ग्रन्थों में, जो वस्तुतः वेदों के व्यवस्था ग्रन्थ हैं न कि स्वय वेद जैसे कि आगे महर्षि दयानन्द सम्मत वेदविषयक मन्तव्यों के समर्थन में दिखाया जाएगा और जिनकी व्युत्पत्ति ही महर्षि दयानन्द सरस्वती और बगाल के सुप्रसिद्ध विद्वान् पं० सत्यव्रत सामश्रमी इत्यादि के वचनानुसार ब्रह्मभिः चतुर्वेद विद्भिर्ब्राह्मणैर्महर्षिभिः प्रोक्तानि यानि वेद व्याख्यानानि तानि ब्राह्मणानि।"

(महर्षि दयानन्द सरस्वती ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के वेद संज्ञा प्रकरण में)

अथवा "वेदवित्तमेन ब्राह्मणेन प्रोक्तं यागविध्यनुस्यूतं मन्त्रभाष्यमेव ब्राह्मणम्" "वेद भाष्य रूपाणि ब्राह्मणिना इति ब्राह्मण ग्रन्थानामादि वेद भाष्य रूपत्वमेवास्याभिः सिद्धान्तितं निरुक्तालोचनं। (ऐतरेयालोचनं श्री सत्यव्रतसामश्रमिकृतम् पृ० २-३) इस प्रकार यज्ञों में पशुहिंसादिपरक अनेक प्रक्षेप कर दिये जबकि स्वयं मन्त्र संहिताओं में उनका कहीं विधान नहीं अतः ब्राह्मण ग्रन्थों को भी वेद मान लेने से उनसे अनेक विचारशील लोगों को घृणा होने लगी। ईशोपनिषत् को छोड़कर जो यजुर्वेद काण्वशाखा से ली गई है और थोड़े से पाठ भेद के साथ यजुर्वेद के ४०वें अध्याय से संकलित और इसलिए भी वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध है अन्य उपनिषदें ब्राह्मण ग्रन्थों का भाग और ऋषिनिर्मित हैं। श्री शंकराचार्य जी आदि आचार्यों ने श्रुतिरूप से प्रधानतया उनका ही ग्रहण करके उनके प्रमाण स्थान स्थान पर उद्धृत किये जबकि मूलवेदों की ज्ञान विषय में इतनी उपेक्षा की गई कि बहुत ही कम वचन उनसे उद्धृत किये गये क्योंकि भूल से उन्हें केवल कर्मकाण्डपरक मान लिया गया। इस भूल का भयंकर परिणाम यह हुआ कि मूल वेदों का स्थान विचारक दार्शनिक वर्ग में उपनिषदों ने ले लिया और मूल वेदों की उपेक्षा होती रही जो अब तक भी विद्यमान है। ऐसे ही शाखाओं को भी वेद ही मान लिया गया, यद्यपि उनमें अनेक स्थानों पर थोड़े पाठ भेद द्वारा वेद मंत्रों की व्याख्या ही

की गई है। इस पर भी हम इस निबन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती की वेद विषयक मान्यताओं के प्रकरण में प्रकाश डालेंगे।

(२) यद्यपि श्री सायणाचार्यादि भाष्यकार भी वेदों को नित्य और अपौरुषेय मानते हैं जैसे कि—

"तस्मादपौरुषेयत्वान्नित्यत्वाच्च कृत्स्नस्यापि वेदराशेः।" (अथर्ववेद भाष्योपोद्घाते सायणाचार्यः) इत्यादि वचनों से स्पष्ट ज्ञात होता है तथापि वे वेदों में ऋषियों और-राजादि) का अनित्य इतिहास मानते तथा उनके आधार पर वेद मन्त्रों की व्याख्या करते हैं। इतना ही नहीं, वे अनेक ऐसी असंगत आख्यायिकाएं लिखते हैं जिन्हें पढ़कर किसी भी विचारशील व्यक्ति को लज्जित होना पड़ता है। ऋषियों को मन्त्रद्रष्टा और मन्त्रों के रहस्य को समझकर प्रचार करने वालों के रूप में लेने के स्थान पर इन्होंने उन्हें मन्त्रों का कर्त्ता ही समझने की भूल की। यद्यपि स्कन्द स्वामी और दुर्गाचार्य ने निरुक्त भाष्य में वेदों के नित्यत्व का प्रतिपादन करते हुए अनित्य इतिहास का प्रतिषेध किया तथापि यह बड़े आश्चर्य और दुःख की बात है कि उन्होंने भी अपने भाष्य में अनेक मन्त्रों की अनित्य इतिहास परक असंगत और कई स्थानों पर अश्लील व्याख्या की।

(३) वेदों के—

"एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातारिश्वानमाहुः।"
(ऋग्वेद १.१६४.४६)

य एक इत् तमुष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः। पतिर्जज्ञ वृषक्रतुः॥ (ऋ० ६.४५.१६)

इत्यादि सैंकड़ों मन्त्रों के होते हुए भी जिनमें स्पष्टतया एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया गया है, सैकड़ों देवी देवताओं की पूजा का विधान इन मध्यकालीन वेद भाष्यकारों ने अपने ग्रन्थों में किया जो वस्तुतः वैदिक शिक्षा के सर्वथा विरुद्ध था।

(४) वेदों के—

"अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि स इद् देवेषु गच्छति।"

(ऋ० १.१.४) देवो देवानामसि मित्रोअद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे। (ऋ० १.९४.१३) भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रारातिः सुभग भद्रोअध्वरः। भद्रा उत प्रशस्तयः॥ (ऋ० ८.१९.१९)

इत्यादि सैकड़ों मन्त्रों के होते हुए भी जिनमें यज्ञ को अध्वर के नाम से पुकारा गया है और जिसका अर्थ निरुक्तकार श्री यास्काचार्य ने 'अध्वर इति यज्ञनाम ध्वरति हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः (निरुक्त १.७) इस व्युत्पत्ति के आधार पर हिंसारहित शुभ कर्म किया है। इन मध्यकालीन प्रायः सभी आचार्यों और वेदभाष्यकारों ने यज्ञों में बकरों, घोड़ों, गौवों, बैलों तथा अन्य प्राणियों यहां तक कि मनुष्यों तक की हिंसा को शास्त्र विहित और स्वर्ग रूप पुण्य प्राप्तिजनक बताया जिससे महात्मा गौतम बुद्ध महावीर आदि को इन पशु हिंसात्मक यज्ञों के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन करना पड़ा। चार्वाक जैसे नास्तिक मतों की उत्पत्ति में भी वेद विषयक इन अशुद्ध विचारों ने सहायता प्रदान की इसमें सन्देह नहीं।

(५) **यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः॥** (यजु० २६.२)
पंचजना मम होत्रं जुषध्वम्॥ (ऋ० १०.५३.४) समानो मन्त्र…
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः। (ऋ० १०.१९०.३)

इत्यादि सैंकड़ों मन्त्रों के होते हुए भी जिनमें वेदों के पढ़ने और यज्ञादि करने का अधिकार सब मनुष्यमात्र को दिया गया है, इन मध्यकालीन अनेक आचार्यों और सायणाचार्यादि भाष्यकारों ने शूद्र कुलोत्पन्न समस्त पुरुषों और सब स्त्रियों को उस अधिकार और कर्तव्य से वंचित रखा जिससे वे अज्ञान के गर्त में गिरते ही चले गये तथा पाखण्ड की वृद्धि हुई।

मध्यकालीन प्रसिद्ध आचार्यों के स्त्री शूद्राधिकार निषेध परक कुछ बचन श्री शंकराचार्य ने अपने ब्रह्मसूत्र भाष्य में शूद्र कुलोत्पन्न सब नर नारियों के वेदाधिकारका निषेध करते हुए लिखा इतश्च न शूद्राधिकारः। यदस्य स्मृतेः श्रवणाध्ययनार्थ प्रतिषेधो भवति। वेदश्रवणप्रतिषेधो वेदाध्ययन प्रतिषेधस्तदर्थज्ञानानुष्ठान प्रतिषेध शूद्रस्य:श्रूयते श्रवण-प्रतिषेधस्तावत् 'अथस्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्र परिपूरणमिति। पद्यु ह वा एतत् श्मशानं यच्छूद्रः तस्मात् शूद्रसमीपे नाध्येतव्यमिति च। अतएवाध्ययनप्रतिषेधः। यस्ययहि समीपेऽपि नाध्येतव्यं भवति स कथमश्रुतमधी यीत, भवति च वेदोच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद इति। अतएव चार्थादर्थज्ञानानुष्ठानो प्रतिषेधो भवति न शूद्राय मतिं दद्यात् इति। वेदपूर्वकस्तु नास्त्यधिकारः शूद्राणामिति स्थितम् ॥

(ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्यम् मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशित संस्करणम् पृ० १३८)

अर्थात् इसलिये भी शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं। क्योंकि स्मृति के द्वारा इनके लिये वेद के सुनने का पढ़ने का निषेध करते हुए स्मृति में कहा है कि यदि शूद्र वेद के शब्द सुन ले तो उसके कान को सीसे और लाख से भर देना चाहिये। शूद्र चलता फिरता श्मशान है इसलिए उसके समीप अध्ययन भी न करना चाहिये। वह बिना सुने कैसे अध्ययन कर सकता है? वेद के उच्चारण करने पर जिह्वाच्छेद (जीभ काट डालने और शरीरच्छेद (शरीर के टुकड़े २ कर डालने) का विधान है। इसलिये वेद के अर्थज्ञान और उसके अनुसार आचरण का निषेध है। शूद्रों का वेदपूर्वक अध्ययन तो है ही नहीं। श्री शंकराचार्य स्त्रियों का भी वेदाध्ययनाधिकार नहीं मानते थे। यह उनके अथय इच्छेद् दुहिता में पण्डिता जायेत (बृहदा० ६.४.१६) के भाष्य से स्पष्ट ज्ञात होता है जहां वे लिखते हैं कि 'दुहितुः पाण्डित्यं गृतन्त्रविषयमेव वेदेऽनधिकारात्।' अर्थात् इस उपनिषत् में कन्याओं के पांडित्य का जो प्रतिपादन है वह गृह कार्य विषयक ही समझना चाहिये क्योंकि वेद में उनका अधिकार नहीं।

श्री रामानुजाचार्य और शूद्र

श्री रामानुजाचार्य यद्यपि एक उदारहृदय आचार्य माने जाते हैं तथापि उनके भी इस विषय में विचार श्री शंकराचार्य से ही मिलते जुलते हैं। वेदान्त १.३.३८ के भाष्य में श्री रामानुजाचार्य ने लिखा है "शूद्रस्य वेद श्रवणतदध्ययन तदर्थानुष्ठानानि प्रतिषिध्यन्ते पद्यु ह वा एतत् श्मशानं यच्छूद्रः तस्मात् शूद्र समीपे नाध्येतव्यम् (वसिष्ठस्मृति १८.१) अनुपशृण्वतोऽध्ययनतदर्थ ज्ञान तदर्थानुष्ठानानि न संभवन्ति। अतस्तान्यपि प्रतिषिद्धान्येव। स्मर्यते च श्रवणादि निषेधः। अथ हास्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्रपरिपूरणम् उदाहरणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद इति। न चास्योपदिशेद् धर्मं, न चास्य-व्रतमादिशेत् (मनु० ४.८०) इति च। अतः शूद्रस्यानधिकार इति सिद्धम् ॥

(ब्रह्मसूत्र श्री भाष्य श्री रामानुजाचार्यः पृ० ३२८)

ऊपरिलिखित सन्दर्भ श्री शंकराचार्य के लेख के ही समान है और उन्हीं कल्पित

स्मृतियों के वचनों को (जो वेदविरुद्ध होने के कारण हमारे विचार में सर्वथा अमान्य हैं) उद्धृत किया गया है जिसमें ऐसे क्रूर अमानुष आदेश हैं कि यदि कोई शूद्र वेद के शब्द को सुन ले तो उसके कान को सीसे और लाख से भर देना चाहिये। यदि उच्चारण करे तो उसकी जीभ काट डालनी चाहिये और याद कर ले तो उसके शरीर के टुकड़े २ कर डालने चाहिये। इसलिये शूद्र का वेदाध्ययन और ब्रह्म विद्या में सर्वथा अनधिकार है, यह श्री रामानुजाचार्य ने परिणाम निकाला है।

श्री मध्वाचार्य और शूद्र

द्वैतमत के प्रतिपादक श्री मध्वाचार्य (स्वा० आनन्द तीर्थ) जिन्होंने ऋग्वेद के ४० सूक्तों का संक्षिप्त भाष्य भी किया शूद्रों का वेदाधिकार नहीं मानते थे। उन्होंने भी स्मृति के नाम से कल्पित कुछ वचनों को उद्धृत करते हुए लिखा—

"श्रवणे त्रपुजतुभ्यां श्रोत्र परिपूरणम्, अध्ययने जिह्वाच्छेदः। अर्थावधारणे हृदय विदारणम् इति प्रतिषेधात्। नाग्निर्न यज्ञः शूद्रस्य, तथैवाध्ययनं कुतः। केवलैव तु शुश्रषा, त्रिवर्णानां विधीयते। "इति स्मृतेश्च॥ (ब्रह्मसूत्राणुभाष्ये श्री मध्वाचार्य कृते पृ० ८७) यहां स्मृति वचनों का पाठ श्री शंकराचार्य तथा श्री रामानुजाचार्य द्वारा उद्धृत पाठ से कुछ भिन्न है। (जिससे यह भी ज्ञात होता है कि मध्यकालीन अनुदार लोगों ने ऋषि मुनियों के नाम से कई मनमाने बचन घड़ लिये। किन्तु अर्थ वही है कि यदि शूद्र वेद के शब्द को सुन ले तो उसके कान को सीसे और लाख से भर देना चाहिये। वेद का अध्ययन करने पर जीभ काट डालनी चाहिये और अर्थ का ज्ञान व निश्चय करने पर उसके हृदय के टुकड़े कर देने चाहिए। शूद्र को अग्निहोत्र, यज्ञ, अध्ययन आदि का अधिकार नहीं। उसका कार्य केवल तीन वर्णों की सेवा है ऐसा स्मृति में कहा है।

यह प्रसन्नता की बात है कि श्री मध्वाचार्य ने उत्तम स्त्रियों का वेदाध्यन अधिकार भी माना है। उन्होंने एक स्थान पर ब्रह्मसूत्र भाष्य में लिखा है—

वेदा अप्युतमस्त्रीभिः कृष्णाद्याभिरिहाखिला?। अध्येयाः अर्थात उत्तम स्त्रियों को कृष्णा—द्रौपदी आदि की तरह सब वेदों का भी अध्ययन करना चाहिए।

श्री वल्लभाचार्य और शूद्राधिकार निषेध

शुद्धाद्वैत सम्प्रदाय के प्रचारक श्री वल्लभाचार्य ने भी अपने ब्रह्म सूत्र भाष्यादि में शूद्रों के वेदाधिकार का प्रबल निषेध किया है। उन्होंने लिखा है—

दूरेह्यधिकार चिन्ता, वेदस्य श्रवणाध्ययनमर्थज्ञानं त्रयमपि तस्य (शूद्रस्य) प्रतिषिद्धम्। तत्सन्निधावन्यस्य च। अथास्य वेदामुपश्रृण्वतस्त्रपुजतुभ्यां श्रोत्र परिपूरणमिति। पद्यु ह वा एतत् शमनं यच्छूद्रस्तस्माच्छूद्र समीपे नाध्येतव्यमिति। उच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेदः। इति।

स्मृति युक्त्यादि वेदार्थे न शूद्राधिकार इत्याह। स्मृतेश्च "वेदाक्षर विचारेण, शूद्रः पतति तत्क्षणात्।" (पराशर स्मृतौ १. ७३) तस्मान्नास्ति वैदिके क्वचिदपि शूद्राधिकार इति स्थितम्॥

अर्थात् शूद्र के लिए वेद सुनने, पढ़ने और उसके अर्थ ज्ञान तीनों का निषेध है। अतः उसके वेदाधिकार की चिन्ता तो बहुत दूर का विषय है। शूद्र यदि वेदों के मंत्र को सुन ले तो उसके कानों को सीसे और लाख से भर देना चाहिए। उच्चारण करे

तो उसकी जीभ काट देनी चाहिए, यदि मन्त्र याद कर ले तो उसके शरीर के टुकड़े टुकड़े कर देने चाहिए। वेद के एक अक्षर के विचार से भी शूद्र उसी क्षण में पतित हो जाता है ऐसा पराशर स्मति में कहा है। इसलिए वैदिक ज्ञान में तो कहीं भी शूद्रों का अधिकार नहीं सिद्ध होता है।

चतुर्वेद भाष्यकार सायणाचार्य, शूद्र तथा स्त्रियां

१४वीं शताब्दी के सुप्रसिद्ध वेद भाष्यकार सायणाचार्य ने अपने ऋग्वेद संहिता भाष्य की भूमिका में लिखा है कि ''''''धर्म ब्रह्म ज्ञानार्थी वेदेऽधिकारी। स च त्रैवर्णिकः पुरुषः। स्त्रीशूद्रयोस्तु सत्यामपि ज्ञानापेक्षायाम् उपनयनाभावेन अध्ययन राहित्याद् वेदेऽधिकारः प्रतिषिद्ध:॥

(सायणाचार्य कृता ऋग्वेदभाष्योपक्रमणिका)

अर्थात् धर्म और ब्रह्मज्ञान का जो अर्थी वा चाहने वाला है वह वेद का अधिकारी है। वह ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य पुरुष हैं। स्त्री और शूद्र को ज्ञान की इच्छा होते हुए भी उपनयन के न होने के कारण अध्ययन रहित होने से वेद में अधिकार का निषेध है।

इसी प्रकार का मत निम्बार्काचार्य, भगवत्पादाचार्य तथा अन्य आचार्यों और मध्यकालीन वेद भाष्यकारों ने प्रकट किया जिसे हम स्पष्टतया अनुदार और वेद विरुद्ध समझते हैं।

महर्षि दयानन्द ने स्वयं वेदों के

"यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय

चार्याय च स्वाय चारणाय॥ (यजु० ३६. २) ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् (अथर्व ६.११.१८) इत्यादि मन्त्रों के आधार पर स्त्री शूद्र सबके लिए वेदाधिकार का जो प्रतिपादन किया और उनकी इस सच्ची वेदमूलक क्रान्ति का देश विदेश के विद्वानों पर जो अद्भुत प्रभाव हुआ उसका निर्देश हम इस निबन्ध में यथास्थान करेंगे। अभी इस अध्याय को विस्तार भय से यहीं समाप्त किया जाता है।

पाश्चात्य अनुवादकों की वेदविषयक अनेक भ्रान्तिपूर्ण मान्यतायें

वेदों के मध्यकालीन भारतीय भाष्यकारों की वेदविषयक मान्यताओं और कुछ भयंकर भूलों का दिग्दर्शन कराने के पश्चात् इस अध्याय में पाश्चात्य अनुवादकों व भाष्यकारों तथा प्रसंगवश अन्य वेदविषयक लेखकों के मन्तव्यों का कुछ दिग्दर्शन कराना चाहता हूँ—

(१) जहां मध्यकालीन आचार्यों तथा भाष्यकारों ने प्राचीन आर्ष परम्परा का अनुसरण करते हुए जो सर्वशास्त्र सम्मत थी जैसे कि निबन्ध के प्रथम अध्याय में दिखाया जा चुका है वेदों को पवित्र, अपौरुषेय व ईश्वरीय ज्ञान माना, वहां पाश्चात्य विद्वानों और प्रो० मैक्समूलर, विल्सन, ग्रिफिथ, ह्विटनी, स्टीवन्सन, ब्लूमफील्ड आदि वेदानुवादकों ने उन्हें प्रायः मानव पुस्तकालय में सबसे प्राचीन ग्रन्थ (The Vedas are the oldest books in the library of mankind—Prof. Maxmuller) मानते हुए भी उन्हें पवित्र दिव्य ज्ञान और विविध विद्याओं का भण्डार नहीं अपितु ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण संग्रह माना जिनसे प्राचीन असभ्यप्राय जंगली लोगों के विचारों और रीति-रिवाजों का ज्ञान हो सकता है।

प्रो० मैक्समूलर ने जो अपने समय में प्राच्यविद्या विशारदों (Oreintalists) के शिरोमणि माने जाते थे वेदों के साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान और उनके ऐतिहासिक दृष्टि से अनुशीलन की आवश्यकता पर बल देते हुए जो कुछ लिखा उसमें से निम्न-लिखित दो उद्धरण पाश्चात्य विद्वानों की वेदविषयक मान्यता को दिखाने के लिए पर्याप्त होंगे—

अपने प्राचीन संस्कृत साहित्य के इतिहास (History of Ancient Sanskrit Literature) में प्रो० मैक्समूलर ने लिखा—

"In the history of the world, the Veda fills up a gap which no literary work in any other language could do. It carries us back to the time of which we have no record anywhere and gives us the very words of the growth of man, of whom we would otherwise form a vague estimate by means of conjectures and inferences. As long as man continues to take interest in the history of his race and so long as we collect in libraries and museums the relics of former ages, the first place in that long row of books which contains the records of Aryan Branch of mankind, will belong for ever to the Vedas.

(Prof. Maxmuller in History of Ancient Sanskrit Literature)

तात्पर्य यह है कि विश्व के इतिहास में वेद एक ऐसी खाई व कमी को पूरा करता है जिसकी पूर्ति अन्य किसी भी भाषा के साहित्यिक कार्य से नहीं हो सकती।

यह हमें उन समयों तक पहुंचाता है जिनका हमें कहीं ऐतिहासिक विवरण नहीं मिल सकता और यह मानव विकास के प्रतिपादक ठीक उन शब्दों को हमें देता है जिनका केवल अनुमान द्वारा हम एक अस्पष्ट सा विचार बना सकते। जब तक मानव अपनी जाति के इतिहास में रुचि लेना जारी रखता है और हम पुस्तकालयों और संग्रहालयों में प्राचीन युग के स्मृति चिह्नों को संग्रहीत करते हैं, उन पुस्तकों की लम्बी पंक्ति में जो मानव जाति की आर्य शाखा के अभिलेख रखते हैं प्रथम स्थान सदा के लिए वेदों को दिया जाएगा।

"India—what can it teach us ?" (भारत हमें क्या सिखाता है) नामक पुस्तक में प्रो० मैक्समूलर ने वेदों का महत्त्व इन शब्दों में बताया—

"The Vedic Literatnre opens to us a chamber in the education of the human race, to which we can find no parallel anywhere else. Whoever cares for the historical growth of our language and thought, whoever cares for the first intelligible development of religion and mythology, whoever cares for the first foundation of Science, Astronomy, Metronomy, Grammar and Etymology, whoever cares for the first intimations for the first philosophical thoughts, for the first attempt at regulating family life, village life and state life as founded on religious ceremonials, tradition and contact, must in future pay full attention to the study of the Vedic Literature."

तात्पर्य यह है कि जो भी व्यक्ति भाषा और विचारों के ऐतिहासिक विकास की परवाह करता है, जो भी धर्म और गाथा शास्त्र के प्रथम बुद्धिगम्य विकास की परवाह करता है, विज्ञान, ज्योतिष, नक्षत्र विद्या, व्याकरण, निरुक्ति शास्त्र के प्रथम आधारों की परवाह करता है, जो भी प्रथम दार्शनिक विचार, पारिवारिक जीवन, ग्राम जीवन और राष्ट्रीय जीवन को नियमित बनाने के प्रथम प्रयत्नों के सम्बन्ध में जो धार्मिक विधि विधान, परम्परा और सम्पर्क पर आधारित थे, जानने की इच्छा रखता है, उसे भविष्य में वैदिक साहित्य के अध्ययन की ओर अवश्य पूर्ण ध्यान देना चाहिए।

यह तो अच्छी बात है कि प्रो० मैक्समूलर न अपने इन शब्दों द्वारा समस्त अनुसंधान प्रेमियों और विद्वानों के लिए वैदिक साहित्य के अनुशीलन को अत्यावश्यक बल्कि अनिवार्य बताया पर यह इसलिए नहीं कि उनके उपदेश सार्वभौम व सर्व-हितकारी हैं, प्रत्युत इसलिए कि उनके द्वारा प्रारम्भिक असभ्य व जंगली लोगों के विचार ज्ञात हो सकें। विकासवाद को मानने के कारण उनकी दृष्टि में इसका अर्थ स्पष्ट था कि अत्यन्त अविकसित और निकृष्ट कोटि के विचार मानव पुस्तकालय के इन प्राचीनतम ग्रन्थों में पाये जाने चाहिये।

इस बात को स्वयं प्रो० मैक्समूलर और उसके अनुयायी पाश्चात्य विद्वानों ने स्पष्ट तौर पर लिखा।

इसी India—what can it teach us ? नामक पुस्तक में जिसका उद्धरण हमने ऊपर दिया है प्रो० मैक्समूलर ने एक अन्य स्थान पर (पृष्ठ ५७) लिखा—

That the Veda is full of childish, silly even to our minds monstrous conceptions, who would deny ? But even these monstrosities are interesting and instructive."

अर्थात् वेद बच्चों जैसे मूर्खतापूर्ण और हमारी दृष्टि में राक्षसवत् विकराल, नितान्त असंगत विचारों से भरपूर हैं। इससे कौन इनकार कर सकता है किन्तु ये राक्षसवत् विकरालतायें भी मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं।

मद्रास क्रिश्चियन सोसाइटी ने अपने Vedic Hinduism नामक प्रकाशन में प्रो० मैक्समूलर के निम्न शब्दों को प्रमाणित मानकर उद्धृत किया।

"I remind you again that the Veda contains a great deal of what is childish and foolish." (Vedic Hinduism published by Madras Christian Society. P. 87)

अर्थात मैं तुम्हें फिर याद दिलाता हूं कि वेद बहुत सी बच्चों जैसी और मूर्खतापूर्ण बातों से भरा हुआ है।

(२) पाश्चात्य वेदों के अनुवादकों और अन्य विद्वानों ने प्रायः विकासवाद के अनुसार यह कल्पना की कि प्राचीन आर्य प्रकृति पूजक तथा अनेकेश्वरवादी व बहुदेवतावादी थे। "The Rigveda and Vedic Religion" के लेखक क्लेटन (Clayton) ने ऐसे विद्वानों के पक्ष को इन शब्दों में रखा है—

"The singers of the Aryans felt their own littleness before these forces of nature and in the faith of little children, they instinctively thought that action, movement, creation, change and destruction in nature were the results of superhuman forces. And because they saw that all action in human life was caused by men and women, by persons, they attributed the action that they saw in nature to divine persons. There are thus many gods, in the Vedas to account for such varied natural phenomena as the glorious brightness of the sun, the blaze of the sacrificial fire, the sweep of the rainstrem across the skies, the recurrence of the dawn, the steady currents of the winds."

(The Rigveda and Vedic Religion by Clayton)

अर्थात् आर्य गायक प्राकृतिक शक्तियों के आगे अपनी तुच्छता को अनुभव करते थे और छोटे बच्चों के समान अपनी श्रद्धा में वे स्वाभाविकतया समझते थे कि क्रिया, गति, उत्पत्ति, परिवर्तन और विनाश अतिमानवीय शक्तियों का परिणाम था और क्योंकि वे देखते थे कि संसार में सब कार्य मानव नर नारियों द्वारा होता है, उन्होंने प्रकृति में होने वाले सारे कार्य के लिए देवों की कल्पना की। इसलिए वेदों में ऐसी विविध प्राकृतिक घटनाओं के लिए जैसे कि सूर्य की शानदार चमक, यज्ञाग्नि की कान्ति, आकाश में आंधी व तूफान, उषा का बार बार प्रकट होना, वायु की संतुलित तरंगें इत्यादि के लिए वेदों में अनेक देवों को माना गया है इत्यादि। ऐसे ही विचार प्रायः सभी वेदानुवादक पाश्चात्य विद्वानों ने प्रकट किये। यद्यपि वस्तुतः वे सर्वथा अशुद्ध हैं जैसा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के हजारों स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, सत्यार्थ प्रकाश, वेद भाष्यादि में सिद्ध किया।

(३) वेदों के तत्त्वों को समझने का बहुत से पाश्चात्य विद्वानों ने कभी गम्भीरतापूर्वक प्रयत्न ही नहीं किया क्योंकि उनके मन में विकासवाद में विश्वास के कारण यह भावना घर किए हुए थी कि इन पुराने जंगलियों वा गडरियों के गीतों में कोई उच्च कोटि के दार्शनिक वा संगत विचार हो ही नहीं सकते। इस पूर्वाग्रह के कारण उन्होंने वेदों के विषय में जो असंगत बातें लिखी प्रो० हेरस (H. Heras) का

निम्न लेख इसका स्पष्ट उदाहरण है। वे लिखते हैं—

"While studying Indian Philosophy and asceticiam, the first book that is always cited as the basis of all Indian Philosophy and ascetic talk is the Rigveda. And yet there is no/book in India so antiphilosophic and so devoid of any ascetic ideals as the Rigveda is. Philosophy is a science of precision and in the Rigveda everything is vague and full of doubts. First of all there is no certainty at all regarding the nature of God. The Rigveda poets do not know who is the supreme God. The God whom they actually address is always the supreme deity for them.

When they sing a hymn to Indra, Indra is the Supreme God, when they recite a prayer to Surya, Surya is above all the Gods. When an offering is being made to Varuna, Varuna is the highest and the most powerful in heaven."

(Prof H. Heras in "An Historical Introduction to the Mystic Teachings of the Hari Dasas of Karnatak," P. IX)

अर्थात् भारतीय तत्त्वज्ञान और तप के विषय में जब हम अनुशीलन करते हैं तो पहली पुस्तक जिसको तत्त्वज्ञान (फिलासफी) और तप के आधार के रूप में कहा जाता है ऋग्वेद है तथापि भारत में कोई पुस्तक नहीं जो इतनी अदार्शनिक वा दार्शनिकता विरुद्ध हो और तप विषयक आदर्शों से इतनी शून्य हो जितना ऋग्वेद। फिलासफी निश्चयात्मक विज्ञान है और ऋग्वेद में सभी कुछ अस्पष्ट और सन्दिग्ध है। देव के स्वरूप के विषय में कोई निश्चय नहीं। ऋग्वेद के ऋषि यह नहीं जानते कि सबसे बड़ा देवता कौन है? जिस देव की वे स्तुति करने लगते हैं वही उनके लिए सबसे बड़ा देव बन जाता है। जब वे इन्द्र की स्तुति गाते हैं, इन्द्र उनके लिए तब सबसे बड़ा देव होता है। जब वे सूर्य से प्रार्थना करते हैं, तो सूर्य उनके लिए सबसे बड़ा देव होता है। जब वरुण की स्तुति की जाती है वा उसे आहुति दी जाती है तो वरुण ही उनके लिए द्युलोक में सबसे उत्कृष्ट और शक्तिशाली देव बन जाता है।

इन ऊटपटाँग कल्पनाओं को देखते हुए महर्षि यास्काचार्य का निरुक्त में दिया हुआ यह वचन याद आता है कि "नैष स्थाणोरपराधो यदेनमन्धो न पश्यति।" यदि अन्धा स्तम्भादि को नहीं देख सकता तो यह स्तम्भ वा खूंटे का दोष नहीं। एक तो ईसाइयत के पक्षपात और विकासवाद में अन्ध विश्वास के कारण पूर्वाग्रह युक्त बुद्धि और उसके साथ मांस मद्यादि के सेवन तथा सांसारिक वासनाओं में आसक्ति के कारण अपवित्र विचार, तब वेद जैसे पवित्र धर्मग्रन्थ के गूढ़ तत्त्वों का ज्ञान यदि अधिकतर पाश्चात्य अनुशीलकों को नहीं हो सका तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं।

(४) पर आश्चर्य तो तब होता है जब प्रो० मैक्समूलर जैसे पाश्चात्य विद्वान् यह जानते हुए भी कि बहुत से मन्त्र हैं जिनका अर्थ हमारी समझ में जरा भी नहीं आता, बहुत से ऐसे शब्द हैं जिनके अर्थ का हम अनुमान मात्र कर सकते हैं, कई बार प्रत्येक शब्द का अर्थ समझने पर भी हम सुसंगत विचार शृंखला को जोड़ने में असमर्थ रहते हैं। वेद का अनुवाद अगली शताब्दी का काम है ऐसा रोथ् आदि ने कहा था। वस्तुतः हम यूरोपियन वेदों का पूर्ण संतोषजनक अनुवाद कभी कर सकेंगे इसमें मुझे बहुत सदेह है। मेरा अपना तथा अन्य सब पाश्चात्य विद्वानों का किया हुआ वेदानुवाद केवल अटकलपच्चू और परीक्षणात्मक है जिसमें बहुत परिवर्तन और संशोधन की गुंजाइश

है। कोई भी व्यक्ति जो वेदों के विषय में कुछ भी जानता है वेदों के अनुवाद करने का यत्न न करेगा। प्रो० मैक्समूलर के निम्न मूल शब्द इस विषय में द्रष्टव्य हैं—

यह कहने का दुःस्साहस करते हैं कि—

"Unlikely, as it may sound, it is true nevertheleas that we the scholars of the 9th century are able to point out mistakes in the text of the Rigveda which eacaped the attention of the most learned among the native scholars of the 6th century B. C."

(Vedic Hymns Vol. 1, by Max Muller).

अर्थात् यद्यपि यह असम्भव सा लग सकता है तो भी यह सत्य है कि हम १९वीं शताब्दी के विद्वान् ऋग्वेद के पाठ में उन अशुद्धियों का निर्देश कर सकते हैं जिनकी ओर ई० पू० षष्ठ शताब्दी के बड़े से बड़े विद्वानों का भी ध्यान नहीं जा सका।

अपने इस अहंकार में प्रो० मैक्समूलर, ओल्डनबर्ग और अन्य अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों के वर्तमान पाठों को अशुद्ध बताते हुए उनमें संशोधन का दुःस्साहस किया है क्योंकि वर्तमान पाठ के अनुसार अर्थ करने में वे असमर्थ थे। यह तो सचमुच ऐसी बात हुई कि किसी दर्जी ने एक कमीज वा पतलून बनाई जो पहनने वाले के शरीर पर ठीक न उतरी। बजाय इसके कि वह उसे काट छांट कर ठीक कर दे वह उसके अंगों को काट छांट कर अपने सिये हुए वस्त्र के अनुकूल बना दे। बलिहारी है इस वैदिक विद्वत्ता की।

(५) बहुत से पाश्चात्य विद्वानों की मान्यता है जैसे कि Heras ने ऊपर उद्धृत लेख में लिखा है कि—

"The Atman is never mentioned in the Rigveda." P. XIV

वस्तुतः यह बात सर्वथा अशुद्ध है। यह लिखने की आवश्यकता नहीं।

जीवोऽमृतस्य चरधि स्वताभिरमर्त्योमर्त्येना सयोनिः ॥
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम्।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥

There are, as all Vedic Scholars know, whole verses which as yet yield no sense whatsoever. There are words the meaning of which we can only guess." (Vedic Hymns Vol I.)

"Though we may understand almost every word, yet we find it so difficult to lay hold of a connected chain of thoughts that will not throw a wrong snade on the original features of the original and ancient words of the Vedas. At present, a translation of the Rigveda is a task for the next century. If by translation, we mean a complete, satisfactory and final translation of the Rigveda, I should go further than Mr. Roth. Not only snall we have to wait till the next century for such an uphill task but I doubt whether we shall ever obtain it."

I feel convinced that on many points, my translation is liable to correction and will sooner or later be replaced by a more satisfactory one."

(Max Muller in Vedic Hymns Vol. 1).

इत्यादि मन्त्रों में जीवात्मा की नित्यता और अमरता का स्पष्ट प्रतिपादन है।

(६) ऐसे ही पुनर्जन्म के सिद्धान्त के विषय में हेरस तथा अन्य अनेक पाश्चात्य वेदानुवादकों और विद्वानों ने लिखा है कि—

"The transmigration of souls is not recorded in Vedic literature. The first reference to it is found very late in Baudhayana." (Introduction by H. Heras P. XXX)

यही बात मूर (Muir) तथा अन्य अनेक लेखकों ने भी Original Texts आदि में लिखी है जिसका तात्पर्य है कि वैदिक साहित्य में पुनर्जन्म का प्रतिपादन है। इसका प्रथम निर्देश बौधायन सूत्र में पाया जाता है।

वस्तुतः यह विचार सर्वथा अशुद्ध है जैसे कि हमने अपनी "वेदों का यथार्थ स्वरूप" में अनेक वेद मन्त्र उद्धृत करके बताया है। ऊपर आत्मा की अमरता के विषय में जो मन्त्र उद्धृत किए गये हैं उनमें भी 'आच परा च पथिभि श्चरन्तम्, स सध्रीचीः स विषूचीर्वसानः" इत्यादि का स्पष्ट अर्थ है कि आत्मा अपने कर्मों के अनुसार अनुकूल प्रतिकूल अनेक योनियों में विचरण करता है। ऋग्वेद १०. ५६ के

असुनीते पुनरस्मासु चक्षुः,
पुनः प्राणमिह नो धेहि भोगम्।
ज्योक् पश्येम सूर्यमुच्चरन्तमनुमते मृडया नः स्वस्ति ॥

इत्यादि मन्त्रों में स्पष्टतया पुनर्जन्म के सिद्धान्त का निर्देश है। "गर्भे सन् जाय से पुनः" (यजु० १२. ३६) इत्यादि में भी पुनर्जन्म का अति स्पष्ट निर्देश है।

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥
उतैषा पितोत वा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठ उत वा कनिष्ठः।
एकोह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जात स उ गर्भे अन्तः॥ अथर्व १०.८.२७-२८

अथर्व वेद के ये मन्त्र भी जिनमें कभी पुरुष, कभी स्त्री, कभी कुमार, कभी कुमारी, कभी पिता, कभी पुत्र, कभी ज्येष्ठ, कभी कनिष्ठ रूप में उत्पत्ति का क्रमानुसार विधान है स्पष्टतया पुनर्जन्म सिद्धान्त के प्रतिपादक हैं।

(५) एकेश्वरवाद इत्यादि विषयों में पाश्चात्य अनुवादकों तथा लेखकों ने अत्यधिक पूर्वाग्रह और पक्षपात का परिचय दिया है यह देखकर बड़ा आश्चर्य और दुःख होता है। प्रो० मैक्समूलर के Vedic Hymns Vol 1 में सबसे पहले हिरण्यगर्भ सूक्त (ऋ० १०. १२१) का अनुवाद किया है जिसके विषय में उसने History of Ancient Sanskrit Literature में स्पष्ट कहा है कि इसमें एकेश्वरवाद का स्पष्ट प्रतिपादन है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। तथापि पाश्चात्य विद्वानों की इसके विषय में जो मनोवृत्ति है उसके विषय में प्रो० मैक्समूलर ने Vedic Hymns Vol 1 में लिखा है······

This is one of the hymns which has always been suspected as modern by European interpreters.

अर्थात् यह उन सूक्तों में से एक है जिस पर यूरोपियन भाष्यकारों वा व्याख्याताओं ने आधुनिक होने का संदेह किया है। इस सूक्त के अन्तिम मन्त्र का स्वयं प्रो० मैक्समूलर ने अनुवाद इस प्रकार किया है।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥
ऋ० १०. १२१. १०

अर्थात् हे प्रजापते! तुझे छोड़कर और कोई नहीं जो इन सब पदार्थों में व्यापक हो। इसके विषय में प्रो० मैक्समूलर ने न केवल अन्यों का अपितु अपना भी मत देते हुए लिखा है······

The last verse, to my mind is the most suspicious of all.

अर्थात् यह अन्तिम मन्त्र मेरे विचार में सबसे अधिक सन्देहास्पद है।

इस सन्देह का कारण सिवाय पूर्वाग्रह या पक्षपात के वस्तुतः और कुछ भी नहीं है।

इस सूक्त में प्रयुक्त "कस्मै देवाय हविषा विधेम" के क का अर्थ यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने······

को वै नाम प्रजापतिः॥ ऐतरेय ३. २१
को हि प्रजापतिः ॥ शत० ६. २. २. ४
प्रजापतिर्वैकः॥ ऐत० २. ३८. ६. १
ताण्ड्य ब्राह्मण ७. ८. ३ जैमिनीयोप० ३. २. १० गोपथ उ० १.२२

स्पष्टतया सुख स्वरूप प्रजापति किया है तथापि प्रो० मैक्समूलर ब्राह्मण ग्रन्थों की प्रामाणिकता से इन्कार करते हुए इसका शीर्षक ही Hymn to an Unknown God अर्थात् अज्ञात ईश्वर विषयक सूक्त रखते हैं; यद्यपि स्पष्टतया सूक्त में ईश्वर के गुणों का प्रतिपादन है और उसमें कोई सन्देह नहीं रखा गया। हीरस इस बात को मानते हुए भी कि ऋग्वेद १०. ७२. १२४.१२५ इत्यादि में एकेश्वरवाद का प्रतिपादन है, कहते हैं कि यह स्पष्टतया द्राविड़ लोगों का प्रभाव है जिनका सिद्धान्त एकेश्वरवादी था।

"It is true that in the Mandal 10 of the Rigveda we read that the multiplicity of Gods is an illusion and that there is only one God who is the creator and father of everything. (Rig. 10. 72. 125) who is called Prajapati (Rig. X. 121). Yet this is an evident effect of a totally foreign influence in the doctrines of the Rigveda, an influence which undoubtedly hails from the Drvaidian people of the country, whose theological doctrine was monotheistic."

(Introduction by A. Heras).

पाश्चात्य विद्वानों के इस प्रकार के पूर्वाग्रह और पक्षपात के सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं किन्तु विस्तार भय से इतने ही पर्याप्त हैं।

(६) ऋग्वेद, सामवेद तथा अन्य वेदों में जहां कहीं सोम शब्द आता है वहाँ ग्रिफिथ, डा० स्टीवन्सन तथा अन्य पाश्चात्य अनुवादक उसका अनुवाद Liquor, Wine इत्यादि शराब वाचक शब्दों द्वारा करते हैं जो सर्वथा अशुद्ध है। इसको मैंने अपने सामवेद के सटिप्पणीक अंग्रेजी अनुवाद की भूमिका तथा सैकड़ों स्थानों पर मन्त्रों की व्याख्या करते हुए सिद्ध किया है।

त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः।
त्वमाततन्थोर्वन्तरिक्षं त्वं ज्योतिषात्वं वि तमो ववर्थ ॥

इत्यादि मन्त्रों में सोम को औषधि, जल, गौ, किरणों, अन्तरिक्षादि का उत्पादक और ज्योति से अन्धकार का विनाशक कहा गया है। वहां स्पष्टतया साम शब्द परमेश्वरपरक है। इसमें क्या सन्देह हो सकता है किन्तु पाश्चात्य अनुवादक सोम पद का अनुवाद Wine or Liquor कर देते हैं।

सोम का एक अन्य अर्थ ज्ञानमय भक्ति रस है जिसे ज्येष्ठ अमर्त्य, वरेण्यो मदः (साम १४३३) शुचिः पावको अद्भुतः (साम ६६६) जनिता मतीनाम् (साम ५२७) देवावीः वा दिव्य गुणों को बढ़ाने वाला अघशंसहा (साम० ४७०, ८१५, ६६७) पापनाशक, वृत्रहन्तमः (साम ६६६) पाप तथा अज्ञान के विनाशकों में श्रेष्ठ इत्यादि विशेषणों से सूचित किया गया है तो भी पाश्चात्य भाष्यकार प्रायः Wine, Liquor ऐसे शब्दों का अनुवाद में प्रयोग करके पाठकों को भ्रम में डालते हैं। कहीं-कहीं सोमादि ओषधियों के पुष्टिकारक रस के लिए भी उसका प्रयोग ऋग्वेद में पाया जाता है किन्तु शराब (Wine, Liquor) के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं इसलिए मद्यसेवी पाश्चात्यों और तदनुगामी कई भारतीय विद्वानों की ऐसी कल्पना नितान्त असंगत है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने वेदभाष्य में प्रकरणानुसार (१) सकल जगतः प्रसविता परमेश्वरः (२) योगैश्वर्य वृन्दः, (३) धर्म प्रेरकः, सत्याचारे प्रेरकः, (४) वीर्यवत्तमः, (५) ऐश्वर्य कारकः शास्त्र बोधः इत्यादि अर्थ दिये हैं जो माननीय हैं।

(७) पाश्चात्य अनुवादकों की एक भयंकर भूल अथर्व वेद के सम्बन्ध में है जिसे वे जादू टोनों का वेद समझते हैं। यद्यपि बार-बार वेदों में औषधिः, वीरुत्, वीरुधां वीर्यवत्तमा जैसे शब्दों का प्रयोग उन मणियों आदि के सम्बन्ध में आया है जिन्हें ये लोग जादू वा charms समझते हैं। इन पर यह अथर्व वेद के जादू टोने के वेद होने का भूत इतना सवार है कि वे······

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥ (अथर्व ३. ३०.४)

इस मन्त्र में प्रयुक्त ब्रह्म शब्द का अर्थ भी जो स्पष्टतया ज्ञान वाचक है वे Charm वा जादू कर देते हैं जिससे उसका सारा महत्त्व ही नष्ट हो जाता है। ब्लूमफील्ड, व्हिटनी ने इसका ऐसा ही अर्थ किया है जो उनके अज्ञान अथवा पूर्वाग्रह वा पक्षपात को सूचित करता है। जहां विद्वांसों वै देवाः। सत्य संहता वै देवाः (शत० ३. ७, ६. १०। ऐत० १. ६) इत्यादि प्रमाणानुसार मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है कि हम तुम्हारे घर में सब मनुष्यों के कल्याणार्थ वह ज्ञान देते हैं जिसको प्राप्त करके सत्यनिष्ठ ज्ञानी लोग न परस्पर विरोध करते हैं और न द्वेष, जिससे उनका प्रेम और मेल सदा बना रहता है। पर ब्लूमफील्ड अथर्व वेद को जादू का वेद समझने के भ्रम में इसका अर्थ करते हैं।

That Charm which causes the Gods not to disagree, and not to hate one another, that do we prepare in your house, as a mean of agreement for your folk."

(Bloomfield's translation)

व्हिटनी कृत अनुवाद भी कितना अशुद्ध और भ्रान्ति जनक है!

"That incantation in virtue of which the Gods do not go apart, not hate one another mutually, we perform in your house. Concord for your men.

(Whitney's translation)

अथर्व वेद ६-६४ के ऐक्य और संघटन सूक्त का जिसका देवता साम्मनस्यम् है अनुवाद करते हुए **समानीव आकूतिः, समाना हृदयानि वः ॥**
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥

"Same be your intention, same your hearts, same be your mind so that it may be perfectly in common to you."

(Bloomfield's Translation P. 136)

ऐसा कुछ ठीक अनुवाद करते हुए भी इसका शीर्षक Charm to allay Discord वा अथवा विरोध को दूर करने का जादू देकर इसके महत्त्व को नष्ट कर देते हैं। ऐसे ही व्हिटनी So your design the same. your hearts the same, your mind the same, that it may be will for you together." अच्छा अनुवाद देकर भी इसे केवल Incantation वा जादू मानते हैं।

इस भ्रान्ति का निवारण हमने विस्तार से अपनी "वेदों का यथार्थ स्वरूप" के दशम अध्याय में किया है। अतः अभी इतना ही पर्याप्त है। इस अध्याय के अन्त में हम नोबल पुरस्कार विजेता जगद्विख्यात दार्शनिक मनीषी मोरिस मैटर्लिक की पुस्तक "Great Secret" की भूमिका में से निम्न उदाहरण देना आवश्यक समझते हैं जिसमें उन्होंने पाश्चात्य वेदानुवादों की अविश्वसनीयता का स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादन करते हुए लिखा है······

It may be added that the translations of the Sanskrit texts and especially of the more ancient, are still more very un reliable. According to Roth, the true pioneer of Vedic exegesis, the translator who will render the Veda intelligible and readable mutatis muntandis has yet to appear and we can hardly anticipate his advent before the coming of century.

("The Great Sccret" by M. Materlink; Prologue).

अर्थात् यहां इस चीज को जोड़ा जा सकता है कि पाश्चात्य विद्वानों के संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद विशेषतः अति प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों (वेदादि) के अनुवाद बड़े अविश्वसनीय हैं। वैदिक व्याख्या के सच्चे अग्रगामी वा मार्गदर्शक रौथ के अनुसार उस अनुवादक ने अभी प्रकट होना है जो वेद को सुबोध और सुपाठ्य बना दे (वर्तमान अनुवादों में आवश्यक परिवर्तन करते हुए) और हम अगली शताब्दी से पूर्व उसके आने की आशा बड़ी कठिनता से कर सकते हैं। इस परिच्छेद के पश्चात् सुप्रसिद्ध फ्रेञ्च प्राच्यविद्या विशारद बर्गेन (Bergaigne) के Religion Vedique (वैदिक धर्म) नामक ग्रन्थ में उषा आदि विषयक शब्दों के विषय में ग्रासमान, लुडविग, राथ और बर्गेन के विभिन्न मतों का उल्लेख करते हुए बर्गेन के इन शब्दों को उद्धृत किया गया है कि······

"It exposes the poverty of the present interpretation of the Rigveda." (The Great Secret" P. M. 15).

अर्थात् इससे ऋग्वेद की वर्तमान व्याख्याओं की दरिद्रता प्रकट होती है।

जिस Philology वा भाषा विज्ञान को लेकर अनेक पाश्चात्य विद्वान् बहुत

उछल कूद मचाते हैं उसकी सूक्ष्म विवेचना और आलोचना करते हुए श्री अरविन्द जी ने (The Origins of Aryan Speech" नामक वि॰त्ता और मौलिकता पूर्ण निबन्ध में ठीक ही लिखा था कि……

Still scientific philology is non-existent, much less has there been any real approch to the discovery of the Science of language."

"A Science which is nine-tenth conjecture has no right to impose itself on the mind of the race," etc.

अर्थात् अभी तक वैज्ञानिक भाषाशास्त्र का कोई अस्तित्व नहीं। भाषा विज्ञान के आविष्कार का यथार्थ मार्ग अभी पकड़ा नहीं गया। एक ऐसे विज्ञान को जो ९।१० केवल अनुमान ही अनुमान है, सारी जाति के मन पर ठोंसने का किसी को अधिकार नहीं, इत्यादि। पाश्चात्य भाषा विज्ञान की निस्सारता को जो जानना चाहते हैं उन्हें सुप्रसिद्ध अनुसन्धान विद्वान् स्व० पं० भगवद्दत्त जी की "भाषा का इतिहास" इतिहास प्रकाशन मण्डल, पंजाबी बाग, दिल्ली द्वारा प्रकाशित अत्युत्तम पुस्तक को अवश्य पढ़ना चाहिए।

७

महर्षि दयानन्द तथा अन्य वेदभाष्यकार

मैंने महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य का प्रतिदिन स्वाध्याय करने का नियम बना रखा है। तुलनात्मक दृष्टि से जब मैं वेदमन्त्रों का अर्थ सहित अनुशीलन करता हूं तो मेरे मन में महर्षि दयानन्द के प्रति श्रद्धा दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है। मैं जानता हूं कि आर्य विद्वानों में से भी कई ऐसे हैं, जिनकी महर्षि दयानन्द के धार्मिक और सामाजिक सुधार के कार्यों में श्रद्धा है, पर उनके वेदभाष्य के विषय में वे पर्याप्त श्रद्धा नहीं रखते। ऐसे विद्वानों से भी मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि वे यदि वेद मन्त्रों का तुलनात्मक दृष्टि से अनुशीलन करेंगे, तो उन्हें महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की विशेषताओं के समझने में बड़ी सहायता मिलेगी और उनका महत्त्व उनके हृदय पर अंकित होगा, जो साधारणतया कुछ कठिनाइयों के कारण कई बार उतनी अच्छी तरह अंकित नहीं होता। छापे की भयंकर अशुद्धियों और अच्छी छपाई न होने के कारण भी कई बार ऐसा होता है, जिसके सैंकड़ों उदाहरण दैनिक स्वाध्याय करते हुए मेरे सम्मुख आते हैं। इस निबन्ध में मैं मन्त्रों के तुलनात्मक अनुशीलन के परिणाम को विचारशील निष्पक्ष पाठकों के सम्मुख रखना चाहता हूं। आशा है इससे उनको लाभ ही होगा। मैं प्रतिदिन स्वाध्याय करते हुए ऐसे अनेक अंशों को अंकित करता रहता हूं, जिनमें से कई विवादास्पद तथा अप्रिय स्थल भी हैं, पर उनका उल्लेख करने से पूर्व मैं कुछ ऐसे मन्त्रों का उल्लेख करूंगा जिनके सामान्य अर्थ के विषय में अधिक मतभेद न होते हुए भी महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य की विशेषता और गम्भीरता प्रकट हुए बिना नहीं रह सकती। प्रारम्भ में मैं सामान्यतया पृथिवी आदि देवता वाले कुछ मन्त्रों का तुलनात्मक दृष्टि से उल्लेख करना चाहता हूं। उसके पश्चात् उन मन्त्रों का उल्लेख किया जायेगा, जहां प्रायः अन्य सभी भाष्यकारों ने मन्त्रों के अर्थ का भयंकर अनर्थ किया है और महर्षि दयानन्द अपनी सूक्ष्म ऋषि दृष्टि से मन्त्र का रहस्य समझने में समर्थ हुए हैं। सामान्य सरल मन्त्रों के अर्थ निरूपण में भी अन्य वेदभाष्यकारों की तुलना में 'सर्वाणि नामान्याख्यातजानि' 'नाम च धातुजमाह निरुक्ते' इत्यादि यौगिकवाद के सिद्धान्त को अपनाकर महर्षि ने जो अर्थों की व्यापकता और गम्भीरता का दिग्दर्शन कराया है, विचारशील विद्वान् पाठक उसका आनन्द निम्न उदाहरण द्वारा ले सकते हैं।

ऋग्वेद १।३।७ में निम्न मन्त्र आया है…

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आगत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम्॥

इस पर सायणाचार्य, स्कन्द स्वामी और वेंकटमाधव का भाष्य विद्यमान है, जिसके मुख्य अंश निम्न हैं। इन सब भाष्यकारों ने इस मन्त्र में वेदों का वर्णन मानकर अर्थ किया है। स्कन्द स्वामी इस मन्त्र में आये शब्दों का अर्थ इस रूप में करते हैं।…

"हे (ओमासः) अवतेरयं पालनार्थस्य तर्पणार्थस्य वा कर्त्तरि माङ् प्रत्ययः। अवितारः—रक्षितारोः तर्पयितारो वा। (चर्षणयः) मनुष्याः, तेषां तैस्तैरुपकारैर्धारयितारः सर्वे देवाः आगच्छत ये (दाश्वांसः) दत्तवन्तो यजमानाय धनानि ते अप्रतिहत-गमनशक्तय इत्यर्थः। अथवा यजमानस्य स्वभूतं सुतं सोमं प्रति ॥"

(स्कन्दस्वामिभाष्ये पृ० २२)

यहां स्कन्दस्वामी 'ओमासः' को अव धातु से बना मानकर उसका अर्थ 'रक्षक' और 'तृप्त करने वाले' करते हैं। वेंकटमाधव भी ओमासः का अर्थ अवितारः अथवा रक्षक यह करते हैं। वे इसकी व्याख्या में "अवितारः मनुष्यधृतः सर्वे देवा इहागच्छत दानशीला दाशुषः सुतम्।" ऐसा लिखते हैं।

सायणाचार्य इसका भाष्य यों करते हैं···

हे (विश्वेदेवासः) एतन्नामका देवविशेषाः (दाशुषः) हविर्दत्तवतो यजमानस्य (सुतम्) अभिषुतं सोमं आगच्छत। ते च देवाः (ओमासः) रक्षकाः (चर्षणीधृतः) मनुष्यधारकाः (दाश्वांसः) फलस्य दातारः।

(ऋग्वेद सायणभाष्य तिलकसंस्थान सं० पृ० ५३)

यहां भी 'विश्वेदेवाः' नामक देव विशेषों को संबोधन करते हुए कहा गया है कि तुम सोम का पान करने के लिये आवो। ये देव क्या हैं। इस विषय को इन भाष्यकारों में से किसी ने स्पष्ट करने का कष्ट नहीं उठाया। साधारणतया उन्होंने आकाशवासी निर्निमेषदृष्टि वाले देवों और उनकी इन्द्राणी, वरुणानी आदि पत्नियों की कल्पना की है, यद्यपि किसी-किसी स्थान पर उन्हें भी विवश होकर उत्तम मनुष्य रूप देवों की कल्पना करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ सायणाचार्य ने यजुर्वेद १५।५० "केत पत्नीभि रनुगच्छेम देवाः" के भाष्य में 'देवाः' का अर्थ 'ऋत्विजः' किया है।

(देखो काण्वसंहिताभाष्ये पृ० १०४)

यजु० १७।५६ 'देव्याय धर्त्रे···देवा देवेभ्यो अध्वर्यन्तो अस्थुः' के भाष्य में 'देवाः' का अर्थ 'ऋत्विग् यजमानाः' अर्थात् ऋत्विक् और यजमान किया है।

सामवेद आग्नेय पर्व के 'आसन् नः पात्रं जनयन्त देवाः' के भाष्य में सायणाचार्य ने उसका अर्थ 'स्तोतार ऋत्विजः' अर्थात् स्तुति करने वाले ऋत्विक् किया है। 'तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे।' इस साम मं० १०९ के भाष्य में श्री सायणाचार्य ने देवाः का अर्थ दीव्यन्ति स्तुवन्तीति देवा ऋत्विजः इस व्युत्पत्ति के अनुसार स्तुति करने वाले ऋत्विक् किया है। अथर्ववेद के 'मुग्धा देवा उत शुना यजन्तः इसके भाष्य में सायणाचार्य ने 'देवाः' का अर्थ 'यजमानाः' किया है। स्कन्द स्वामी ने ऋग्वेद १।४०।६ के 'नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत्' इस मंत्र के भाष्य में, जिसके द्वितीय चरण में मंत्रं देवा अनेहसम् आया है और उन्हीं देवों के लिए 'नरः' का प्रयोग हुआ है। नर का अर्थ मनुष्याकारा देवाः किया है। ऐसा उव्वट, महीधरादि ने भी यजुर्वेद के उपर्युक्त तथा अन्य अनेक मंत्रों के भाष्य में कहीं-कहीं किया है। स्वा० आनन्दतीर्थ (श्री मध्वाचार्य) ने ऋ० १।११।३ 'केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे' इस मंत्र की संक्षिप्त व्याख्या करते हुए लिखा है···

मर्या मरणवन्तोऽपि देवा एवं हरेर्वशात्।
तदेव सुखमन्वेव पुनर्गूढत्वमापिरे ॥

यहां देवों को भी 'मरणवन्तः' अथवा मरने वाले बताया है। इसकी विस्तृत व्याख्या करते हुए स्वा० आनन्द तीर्थ के अनुयायी राघवेन्द्रयति ने मंत्रार्थ मंजरी में लिखा है कि "(मर्याः) देवा अपि अकेतवे केतुम् अपेशसे पेशः कुर्वन्तः स्वसामर्थ्यैः सह यज्ञे सम् अजायन्त।" पृ० ३० ऋग्वेद मण्डल १ वर्ग २१ मं० ५ के 'त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः' इस मंत्र की संक्षिप्त व्याख्या करते हुए स्वामी आनंदतीर्थ जी ने अपने ऋग्भाष्य में जो यह लिखा कि···

"त्वां हि देवा भयापेताः, प्रेर्यमाणास्त्वयैव च।"

इसकी व्याख्या में राघवेन्द्रयति ने 'मंत्रार्थ मंजरी' में स्पष्ट लिखा है कि "(देवाः) सत्त्वप्रकृतयः पुरुषाः ॥" पृ० ४६ अर्थात् सात्त्विक प्रकृति वाले पुरुषों के लिए यहाँ देव शब्द का प्रयोग किया गया है।

इतना होते हुए भी साधारणतया इन मध्यकालीन वेद भाष्यकारों ने देवों के विषय में पौराणिक कल्पना को ही अपना कर तदनुसार वेद-मंत्रों के अर्थ किये, जिससे बड़ा अनर्थ हो गया, जिसका मैं प्रसंगानुसार उल्लेख करूँगा। अभी मैं ऊपर उद्धृत देव-स्वरूप प्रतिपादक 'ओमासश्चर्षणीधृतः' इस मंत्र के महर्षि दयानन्दकृत भाष्य को तुलनात्मक दृष्टि से उद्धृत करना चाहता हूँ, जिससे विचारशील विद्वान् पाठक उनकी विशाल दृष्टि और गंभीरता का अनुभव कर सकें। महर्षि दयानन्द कृत भाष्य 'ओमासः' का निम्न प्रकार है···

'(ओमासः) रक्षका[1] ज्ञानिनो[2], विद्याकामाः[3], उपदेशप्रीतयो[4] विज्ञानतृप्तयो[5] यथातथ्यावगमाः[6], शुभगुणप्रवेशाः[7], सर्वविद्याश्राविणः[8], परमेश्वरप्राप्तौ व्यवहारे च पुरुषार्थिनः[9], शुभ गुणविद्यायाचिनः[10]. क्रियावन्तः[11], सर्वोपकारमिच्छुकाः[12], विज्ञाने प्रशस्ताः[13], आप्ताः[14], सर्वशुभगुणालिंगिनः[15], दुष्टगुणहिंसकाः[16], शुभगुणदातारः[17], सौभाग्यवन्तः[18], ज्ञानवृद्धाः[19]।

(चर्षणीधृतः) सत्योपदेशेन मनुष्येभ्यः सुखसत्य धर्तारः (विश्वेदेवासः) देवा दीव्यन्ति विश्वे सर्वे च ते देवा विद्वांसश्च ते (आगताः) समन्तात् गमयत। अत्र गम् धातोर्ज्ञानार्थः प्रयोगः (दाश्वांसः) सर्वस्याभय दातारः (दाशुषः) दातुः (सुतम्) यत् सोमादिकं ग्रहीतुं विज्ञानं प्रकाशयितुं चाभीष्टं वस्तु ॥

भावार्थ—ईश्वरो विदुषः प्रत्याज्ञां ददाति यूयमेकत्र विद्यालये चेतस्ततो वा भ्रमणं कुर्वन्तः सन्तो ज्ञानिनो जानन् विदुषः सम्पादयत। यतः सर्वे मनुष्या विद्याधर्म-सुशिक्षासत्क्रियावन्तो भूत्वा सदैव सुखिनः स्युरिति।

पाठक देखेंगे कि यहाँ महर्षि दयानन्द ने 'ओमासः' इस पद के १९ अर्थ किये हैं जबकि अन्य भाष्यकारों ने उसका अर्थ केवल रक्षक अथवा स्कन्द स्वामी ने रक्षक और तृप्तिकारक ये ही एक दो अर्थ दिये हैं। महर्षि दयानन्द ने अव धातु से 'ओमासः' इस शब्द की सिद्धि मानकर अव धातु के 'रक्षणगतिकान्तिप्रीतितृप्त्यवगमप्रवेशश्रवणस्वाम्यर्थयाचनक्रियेच्छादीप्त्यवाप्त्यालिंगनहिंसादानभागवृद्धिषु' इस धातु पाठ के वचनानुसार उसके १९ अर्थों का निर्देश किया है। इस प्रकार 'ओमासः' इस एक शब्द के द्वारा विद्वानों को रक्षक, ज्ञानी, विद्या की कामना करने वाले, उपदेश में प्रीति रखने वाले, विज्ञान से जनता को तृप्त करने वाले, यथार्थ ज्ञान वाले, शुभ गुणों में प्रवेश करने वाले, सारी विद्याओं का श्रवण करने वाले, परमेश्वर की प्राप्ति और शुभ व्यवहार में पुरुषार्थी, शुभ गुणों और विद्या की याचना करने वाले, उत्तम क्रिया करने वाले, सबके

उपकार की इच्छा वाले, विज्ञान में प्रशस्त, आप्त, समस्त शुभ गुणों का आलिंगन करने वाले, दुर्गुणों की हिंसा वा नाश करने वाले, उत्तम गुणों तथा विद्याओं के दाता, सौभाग्य-शाली और ज्ञान में वृद्ध होना चाहिये, इस बात का अद्भुत प्रतिपादन किया गया है। विद्वान् लोग मंत्र का तुलनात्मक अनुशीलन करते हुए महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य की इस अर्थ व्यापकता और गम्भीरता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। जहाँ अन्य भाष्यकारों ने मंत्र को पुराणकल्पित देवतापरक लगाया है, जिनके विषय में 'न देव-चरितं चरेत्' इस पौराणिक कथन के अनुसार यह माना जाता है कि मनुष्यों को उनके चरित का अनुसरण न करना चाहिये, वहाँ महर्षि दयानन्द ने 'विद्वांसो हि देवाः' (शत-पथ ३. ७. ३. १५), 'सत्यसंहता वै देवाः' (एतरेय १. ६.), 'सत्यमया उ देवाः' (कौषीतकी ब्रा० २. ८) इत्यादि ब्राह्मण ग्रंथों के वचनानुसार देव का अर्थ सत्यनिष्ठ विद्वान् करते हुए उनके आदर्श और कर्तव्य का बड़ी उत्तमता से प्रतिपादन किया है और मंत्र के भावार्थ में लिखा है कि विद्वानों को चाहिए कि वे अविद्वानों को विद्वान् बनाएं, जिससे सब मनुष्य विद्या, धर्म, सुशिक्षा और उत्तम क्रिया से युक्त होकर सदा सुखी हों।

पृथिवी, आपः और उषा देवताक मंत्रों द्वारा स्त्री-धर्म का प्रतिपादन किया गया है।

स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी। यच्छा नः शर्म सप्रथाः ।। यह यजु० ३५।२१ तथा यजु. ३६।१३ में आया है। इसका उव्वट ने 'स्योना सुखरूपा हे पृथिवि ! नः अस्माकं भव' ।। महीधर ने 'हे पृथिवि त्वमस्माकं सुखरूपा भव' इत्यादि रूप में केवल पृथिवि परक अर्थ किया है। ऐसे ही अन्य भाष्यकारों ने किया है किन्तु महर्षि दयानन्द ने पृथिवि की उपमा से पतिव्रता स्त्रीपरक इस मंत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है···

"पतिव्रता कीदृशी स्यादित्याह स्योना पृथिवीति। हे पृथिवीव वर्तमाने यथा कण्टकगर्तादिरहिता पृथिवी नो भवति तथा त्वं भव। तथा सुखकरी त्वं नः (शर्म) गृहं सुखं वा यच्छ ।।

भावार्थ—यथा सर्वेषां भूतानां सुखैश्वर्यप्रदा पृथिवी वर्तते तथैव विदुषी पति-व्रता स्त्री पत्यादीनामानन्दप्रदा भवति ।।

अर्थात् जैसे पृथिवी सब प्राणियों के लिए सुख ऐश्वर्य प्रदान करने वाली होती है वैसे ही विदुषी पतिव्रता स्त्री पति आदि सबको आनन्द देने वाली होती है।

इसमें पृथिवीपरक अर्थ का परित्याग नहीं किया गया किंतु उसके साथ पृथिवी का 'प्रथयति सुखानीति' यह यौगिक अर्थ लेकर उपमालंकार द्वारा पतिव्रता स्त्री परक अर्थ करके अर्थ की गम्भीरता और व्यापकता को प्रकट किया गया है, जो महर्षि दयानन्द के भाष्य की अद्भुत विशेषता है। ऐसे ही आपो हिष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन। महे रणाय चक्षसे यजु० ३६।१४ इत्यादि मंत्रों की अन्य भाष्यकारों ने···

'हे आपः यूयं (मयोभुवः) सुखेन भावयित्र्यः स्थसर्वप्राणिनाम् यथा वयं सर्वस्य भोगस्य भोक्तारो भवेम तथा कुरुत। महत् यद्दर्शनं परब्रह्मलक्षणम्, तदस्माकं कुरुत। अथवा अस्मान् अन्नाय स्थापयत महते च दर्शनीयाय।' ।।उव्वट।।

'हे आपः यूयं स्नानपानादिहेतुत्वेन सुखोत्पादकाः स्थ, अस्मान् रसाय भव-दीय रसानुभवार्थं स्थापयत। महद् रमणीयं दर्शनं ब्रह्मसाक्षात्कारलक्षणम्, तदस्माकं कुरुत ।। अस्मान् ब्रह्मसाक्षात्कारयोग्यान् कुरुतेत्यर्थः। ऐहिकपारलौकिकसुखं ददतेत्यृचो भावः ।।" महीधरः ।।

इत्यादि रूप में केवल जलपरक व्याख्या करते हुए उससे ही न केवल अन्नादि, किन्तु ब्रह्मसाक्षात्कार के योग्य बनाने की प्रार्थना की है, वहाँ महर्षि दयानन्द ने जल के अर्थ का सर्वथा परित्याग न करते हुए जल के समान शांति युक्ता विदुषी स्त्रियों पर इसे लगाते हुए लिखा है···

हे (आपः) जलानीव शान्तिशीला विदुष्यः सत्स्त्रियः ।।

भावार्थ—अत्र वाचकलुप्तोपमालंकारः—यथा सत्यः पतिव्रताः स्त्रियः सर्वतः सर्वान् सुखयन्ति तथैव जलादयः पदार्थाः सुखकराः सन्तीति वेद्यम् ।।

अर्थात् जैसे सती पतिव्रता स्त्रियां सबको चारों ओर से सुखी करती हैं वैसे ही जलादि पदार्थ भी सुखकारक होते हैं। इस अर्थ में जो अर्थ की गम्भीरता है, वह दर्शनीय है। साथ ही भौतिक जल के सुखदायक होने और बलवर्धक होने का उल्लेख है (चक्षसे) प्रसिद्धाय (ऊर्जे) पराक्रमाय बलाय च दधतु। उनसे ब्रह्मसाक्षात्कार की असंगत प्रार्थना यहाँ नहीं की गई। आपः के स्त्रीपरक अर्थ के लिये योषा वा आपः ।। शत० १।१।१।१८ इत्यादि अनेक प्रमाण हैं। आप्यते सुखम् आभ्यः—यह निरुक्ति तो स्पष्ट ही है।

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्रवन्तु नः इत्यादि मंत्रों की व्याख्या में आपः से जल के अतिरिक्त सर्वव्यापक परमात्मा का ग्रहण करते हुए उससे शांति की वर्षा के लिये प्रार्थना की गई है।

८

महर्षि की वेदभाष्यशैली की विशेषताएं

अब उषादेवताक कुछ मंत्रों का अनुशीलन पाठकों के समक्ष रखना चाहता हूं। ऋ०।१।११३।१२ का उषा देवता वाला निम्न मन्त्र इस विषय में विशेष रूप से उल्लेखनीय है……

यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती।
सुमंगलीर्बिभ्रती देववीतिमिहाद्योषः श्रेष्ठतमा व्युच्छ॥

इस मंत्र में यावयद् द्वेषा, ऋतपाः, ऋतेजाः, सूनृता, ईरयन्ती इत्यादि जो विशेषण हैं, उनसे यह स्पष्ट है कि यह उषा जिसका इस तथा अन्य मन्त्रों में निर्देश है, द्वेष को दूर करने वाली, वेद तथा सत्य की रक्षा करने वाली, सत्य मधुर शब्दों को प्रेरित करने वाली विदुषी देवी है, न कि उषा नाम से साधारणतया प्रसिद्ध प्रभात वेला। तथापि श्री सायणाचार्यादि भाष्यकारों ने इसका निम्न प्रकार अर्थ किया है, जिसमें इन विशेषणों का महत्त्व सर्वथा नष्ट हो जाता है। सायणाचार्य कृत अर्थ :—

(यावयद् द्वेषा) यावयन्ति अस्मत्तः पृथक् कृतानि द्वेषांसि द्वेष्टीणि राक्षसादीनि यया सा तथोक्ता न ह्युषसि जातायां राक्षसादयोऽवतिष्ठन्ते, यतस्ते निशाचराः (ऋतपाः) ऋतस्य सत्यस्य यज्ञस्य वा पालयित्री, (ऋतेजाः) यज्ञार्थं प्रादुर्भूता, सत्यामुषसि अहनि यागा अनुष्ठीयन्ते अतो यज्ञार्थं जातेत्युच्यते। (सुम्नावरी) सुम्नमिति सुखनाम तद्वती, (सूनृताः) वाङ्नामैतत् पशुपक्षिमृगादीनां वचांसि (ईरयन्ती) प्रेरयन्ती उत्पादयन्ती, (सुमंगलीः) सौमंगल्योपेता पत्या कदापि न वियुक्तेत्यर्थः। (देववीतिम्) देवैःकाम्यमानं यज्ञं (बिभ्रती) धारयन्ती, हे उषः! (श्रेष्ठतमा) उक्तेन प्रकारेणातिप्रशस्ता त्वम् (इह) अस्मिन् देवयजनप्रदेशे (अद्य) अस्मिन् यागसमये (व्युच्छ) विवासय।

विस्तारभय से विद्वान् पाठकों के लिये इसके भाषानुवाद की मैं आवश्यकता नहीं समझता। केवल इतना ही निर्देश करना पर्याप्त है कि उषा के वास्तविक अर्थ को न समझकर श्री सायणाचार्य ने उसके विशेषणों के अर्थों की कैसे तोड़ मरोड़ की है। सब संस्कृतज्ञ इस बात को जानते होंगे कि यु धातु के मिश्रण और अमिश्रण वा पृथक् करण ये दो अर्थ होते हैं। अतः "यावयद् द्वेषा" का सीधा अर्थ द्वेषों को दूर करने वाली है, जो चेतन देवी ही हो सकती है। प्रभातवेला के लिए यह विशेषण असम्भव है, अतः श्री सायणाचार्य ने उसका "द्वेष्टा अर्थात् राक्षसों को हमसे दूर करने वाली, क्योंकि उषा के निकलने पर राक्षस लोग नहीं ठहर सकते, ऐसा विचित्र और खेंचातानी वाला अर्थ कर दिया है। उषा का जो विशेषण "सूनृता ईयरयन्ती' आया है, जिसका अर्थ सत्य मधुर वचन उच्चारण करने वाली वाणी यह सुप्रसिद्ध और सर्वविदित है। उसका अर्थ पशु-पक्षी, मृग आदि की वाणी को उत्पन्न करने वाली ऐसा श्री सायणाचार्य ने कर दिया है। "ऋतपाः" का अर्थ सत्य और वेद की रक्षा करने वाली

यह सुप्रसिद्ध है, उसको उषा काल पर लगाने का असंगत प्रयत्न किया गया है। "सुमंगलीः" का अर्थ सौमंगल से युक्त, पति से कभी न वियुक्त होने वाली, यह किया किया है, किन्तु प्रभात वेला पर उसे चरितार्थ करने का प्रयत्न कितना उपहासास्पद है इसे निष्पक्ष विचारशील पाठक स्वयं देख सकते हैं। यद्यपि यहां श्री सायणाचार्य ने "सूनृताः" का अर्थ केवल वाणी मानकर "पशुपक्षी मृगादीनां वचांसि" अर्थात् पशु-पक्षी-मृग आदि के शब्द ऐसी व्याख्या कर दी है। किन्तु ऋ० ३।६१।२ की व्याख्या में स्वयं उन्होंने (सूनृताः) का अर्थ "प्रिय सत्य रूपा वाचः (ईरयन्ती) उच्चारयन्ती यह करते हुए इसी मंत्र का प्रतीक दिया है। यथा "तथा च मंत्रवर्णः "सुम्नावरी सूनृता ईरयन्ती" (ऋ० १।१३।१२) ऐसी अवस्था में इस "सत्य और मधुर वचनों का उच्चारण करने वाली" विशेषण को प्रभातवेला पर लगाना कितना असंगत है?

किन्तु इस असंगत अर्थ को करने में सायणाचार्य अकेले नहीं हैं। उनसे पूर्ववर्ती स्कन्दस्वामी और वेंकटमाधव आदि ने भी लगभग वैसा ही अर्थ किया है।

इस मन्त्र का भाष्य करते हुए स्कन्द स्वामी ने मुख्य मुख्य शब्दों का अर्थ इस प्रकार किया है……

(ऋतपाः) यज्ञस्य यज्ञो ह्युषस्युदितायां क्रियते न रात्रौ अतस्तस्य पालयित्रीत्युच्यते। (ऋतेजाः) ऋतशब्दो आदित्यवचनः पंचम्याश्च स्थाने सप्तमी। आदित्याज्जनित्री। (सूनृता ईरयन्ती) उदयोत्तरकालं हि प्राणिनां वाचः प्रवर्तन्ते, अतः सैव पेताः प्रेरयन्तीति व्यपदिश्यते॥

यहां स्कन्द स्वामी ने भी उषा के "सूनृता ईरयन्ती" की यही व्याख्या करके संतोष कर लिया है कि प्राणियों की वाणी को प्रवृत्त करने वाली उसे इसलिए कहा जाता है, क्योंकि उषा के उदित होने के पश्चात् ही प्राणियों की वाणियां प्रवृत्त होती हैं। "ऋतेजाः" इस शब्द में ऋत का अर्थ सूर्य करके, जिसके लिए उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया और सप्तमी को पंचमीवाचक मानकर सूर्य से उत्पन्न होने वाली यह अर्थ कर दिया है, जबकि उसका सीधा अर्थ सत्य में उत्पन्न वा उसके कारण प्रसिद्ध होता है। वेंकटमाधव ने इस मंत्र का अर्थ यों किया है……

(यावयद् द्वेषा) पृथक्क्रियमाणशत्रुका सत्यस्य पालयित्री सत्ये जाता सुखवती वाचः प्रेरयन्ती शोभनमंगला यज्ञं धारयन्ती श्रेष्ठतमा इह अद्य उषः व्युच्छ॥

यहां "यावयद् द्वेषा" का अर्थ पृथक् क्रियमाण शत्रु का अर्थात् शत्रुओं को जिससे पृथक् कर दिया गया है, ऐसा किया है, जिसका प्रभात वेला से सम्बन्ध सर्वथा अस्पष्ट है। सूनृता का अर्थ 'वाचः' करके उन वाणियों को प्रेरित करती हुई सत्य का पालन करने वाली उषा, ऐसा किया गया है। क्या प्रभात वेला पर ये विशेषण चरितार्थ हो सकते हैं? अब महर्षि दयानन्द कृत अर्थ को देखिये……

"हे (उषः) उषर्वद्वर्तमाने विदुषि! (यावयद् द्वेषा) यावयन्ति दूरीकुर्वन्ति अप्रियकर्माणि यया सा (ऋतपाः) सत्यपालिका (ऋतेजाः) सत्ये प्रादुर्भूता (सुम्नावरी) प्रशस्तानि सुखानि विद्यन्ते यस्यां सा (सुमंगलीः) शोभनानि मंगलानि यासु ताः (सूनृताः) वेदादिसत्यशास्त्रसिद्धान्तवाचः (ईरयन्ती) सद्यः प्रेरयन्ती (श्रेष्ठतमाः) अतिशयेन प्रशंसिता (देववीतिम्) विदुषां विशिष्टां नीतिम् (बिभ्रती) त्वम् इह अद्य (व्युच्छ) दुःखं विवासय॥

सरल होने के कारण इस सारे का भाषानुवाद अनावश्यक है। इतना ही लिखना पर्याप्त है कि महर्षि दयानन्द ने यहां उषा से केवल प्रभात वेला का अर्थ न लेकर उषा

की तरह व्यवहार करने वाली विदुषी स्त्री यह अर्थ लिया है और उस पर यावयद द्वेषा, ऋतपा, ऋतेजा, सूनृता ईरयन्ती इत्यादि विशेषणों को घटाया है, जिनकी सीधी संगति बिना किसी क्लिष्ट कल्पना या खींचातानी के लग जाती है। विदुषी स्त्री की सहायता से सब अप्रिय कर्मों को दूर किया जाता है। वह सत्य की रक्षा करने वाली, सत्य में प्रादुर्भूत, सुखदायिका, उत्तम मंगलयुक्त, वेदादि सत्यशास्त्रों के सिद्धान्त की प्रतिपादिका, प्रिय वाणियों को प्रेरित करने वाली होती है। इसके भावार्थ में महर्षि ने लिखा है······

अत्र वाचकलुप्तोपमालंकार :—यथा उषास्तमो निवार्य प्रकाशं प्रादुर्भाव्य धार्मिकान् सुखयित्वा चौरादीन् पीडयित्वा सर्वान् प्राणिन आह्लादयति तथैव विद्या-प्रकाशवत्यः शमादिगुणान्विता विदुष्यः सत्स्त्रयः स्वपतिभ्योऽपत्यानि कृत्वा सुशिक्षया-ऽविद्यान्धकारं निवार्य विद्यार्कं प्रापय्य कुलं सुभूषयेयुः।

अर्थात् —जैसे उषा अन्धकार को हटाकर प्रकाश को प्रादुर्भूत करके धार्मिकों को सुखी और चौरादि को पीड़ित करके सब प्राणियों को आह्लादित करती है, वैसे ही विद्या धर्म के प्रकाशवाली शान्ति आदि गुणों से युक्त विदुषी स्त्रियां अपने पतियों को संतान देकर उत्तम शिक्षा से अविद्यान्धकार को हटाकर, विद्यारूपी सूर्य को प्राप्त कराकर अपने कुल को सुभूषित करें।

अब विचारशील निष्पक्ष पाठक महोदय देखें कि इस विदुषी स्त्रीपरक अर्थ में मन्त्रोक्त विशेषणों की अच्छी संगति बिना किसी खींचातानी के लग जाती है या केवल प्रभात वेला के पक्ष में। यहां यह बात भी उल्लेखनीय है कि प्राकृतिक उषा की इस अर्थ में सर्वथा उपेक्षा नहीं की गई, किन्तु उसकी उपमा से स्त्रीपरक उत्तम कर्त्तव्य का प्रतिपादन किया गया है।

वर्तमान युग के भाष्यकारों में से महर्षि दयानन्द की वेद भाष्यशैली के प्रबल समर्थक दिवंगत सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द जी के शिष्य श्री कपाली शास्त्री जी ने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का संस्कृत में जो भाष्य किया है, उसमें उषा के केवल प्राकृतिक प्रभात वेला होने का निराकरण करते हुए उसका "चित्प्रभातोदयज्योतिः" अर्थात् चित्त में ज्ञान के प्रकाश की प्रभात वेला अथवा श्री अरविन्द के अपने शब्दों में (Divine Dawn of Illuminastion) ऐसा आध्यात्मिक अर्थ किया है। "यावयद् द्वेषा ऋतपा ऋतेजाः" इस मन्त्र का भाष्य श्री कपाली शास्त्री जी ने इन शब्दों में किया है······

(यावयद् द्वेषा) यावयन्ति पृथक् कृतानि द्वेषांसि द्वेष्टीणि रक्षः प्रभृतीनि यया सा (ऋतपाः) ऋतस्य ज्योतिषः पालयित्री (ऋतेजाः) ऋते प्राप्तव्ये निमित्तभूते जायते प्रादुर्भूता (सुम्नावरी) सुम्नं सुखं तद्वती (सूनृता ईरयन्ती) शमनसत्या वाचः प्रेरयन्ती "चोदयित्री सूनृतानाम्"।······

(सुमंगलीः) सौमंगल्योपेता अत्यन्तं सौभाग्यं विवक्षितम् (देववीतिम्) देवानां वीतिम्—आगतिं प्रादुर्भूतिमित्यर्थः तां (बिभ्रती) वहन्ती, हे उषः (श्रेष्ठतमा) अति-प्रशस्या त्वम् (इह) अत्र मयि (अद्य) इदानीं (व्युच्छ) व्युष्टा भव॥

उषा :- चित्प्रभातोदयज्योतिः। आध्यात्मिक दृष्टि से उषा की यह व्याख्या सायणाचार्यादि की प्राकृतिक प्रभात वेला परक व्याख्या से अधिक अच्छी है इसमें संदेह नहीं, तथापि अनेक स्थानों पर इससे भी काम नहीं चल सकता। यहां विशेषणादि बल से उषा की तरह ज्ञान का प्रकाश करने वाली विदुषी स्त्री के ग्रहण से ही मन्त्रार्थ की संगति ठीक लगती है। विस्तार भय से मैं उषाविषयक इस प्रकरण को अभी यहीं समाप्त करता हूं। इस प्रकार मन्त्रार्थ के तुलनात्मक अनुशीलन से महर्षि दयानन्द की वेदभाष्य शैली का महत्त्व निष्पक्ष पाठकों के हृदय पटल पर अवश्य अंकित होगा, यह मेरा दृढ़ विश्वास है।

६

उत्तम राजनीतिपरक मन्त्रों की मध्यकालीन भाष्यकारों द्वारा अश्लील व्याख्या

अब मैं प्रसंगवश उन दो वेदमंत्रों का तुलनात्मक दृष्टि से अनुशीलन विद्वान् पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करना चाहता हूं, जिनकी मध्यकालीन प्रायः सभी भाष्यकारों ने अत्यन्त अश्लील व्याख्या करके वेदों को सुशिक्षित लोगों की दृष्टि में कलंकित कर दिया है, किन्तु वस्तुतः जिनमें राजनीति और स्त्रियों के अधिकार के अत्युत्तम तत्त्वों का प्रतिपादन है, जिन्हें महर्षि दयानन्द ने जगत् के सम्मुख रखकर महान् उपकार किया। कुछ वर्ष पूर्व अक्तूबर सन् १९३२ में जब मैंने 'आर्यविद्वत्सम्मेलन' दिल्ली में ऋषि दयानन्द की वेदभाष्य शैली पर निबन्ध पढ़ा था, जो 'आर्यसिद्धांतविमर्श' में अन्य निबन्धों के साथ प्रकाशित हुआ, तो मैंने श्री सायणाचार्य के इन मंत्रों के भाष्य की महर्षि भाष्य के साथ तुलना की थी। उसी को मेरे स्वाध्यायशील शिष्य श्री शिवपूजन-सिंह जी ने 'ऋषि दयानन्द के भाष्य का तुलनात्मक अनुशीलन' नामक अपनी पुस्तक में उद्धृत किया। किंतु पीछे से मैंने देखा कि केवल सायणाचार्य ही नहीं, स्कन्दस्वामी, वेंकटमाधव, दुर्गाचार्य, विल्सन, ग्रिफिथ, श्री रामगोविन्द त्रिवेदी आदि मध्यकालीन और अर्वाचीन भाष्यकार तथा अनुवादक सब ऐसे अश्लील अर्थ करने में एक ओर हैं और महर्षि दयानन्द दूसरी ओर। दोनों प्रकार के अर्थों का दिग्दर्शन कराने के पश्चात् मैं यह निर्णय निष्पक्ष विचारशील विद्वानों पर छोड़ दूंगा कि वे किस अर्थ को उपादेय समझते हैं। सायणाचार्यकृत अर्थ का निर्देश करने से पूर्व उनसे पूर्ववर्ती स्कन्दस्वामी और वेंकटमाधव के भाष्यों का उल्लेख कर देना उचित होगा, यद्यपि यह प्रसंग अप्रिय हो गया है। प्रथम मंत्र जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं वह निम्न है—

आगधिता परिगधिता या कशीकेव जंगहे।
ददाति मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता॥

ऋ० १।१२६।६

इसका स्कन्द स्वामी ने निम्न रीति से भाष्य किया है।

'स भावयव्यः स्वनयः स्वया भार्यया रोमशया संभुक्ष्व माम् इत्युक्तस्ताम् अनया ऋचा प्रत्याह···

(आगधिता) आगृहीता आमिश्रिता अवयवैर्गाढ़ं परिष्वक्ता सतीत्यर्थः। (परिगधिता) सर्वतोऽन्तर्बहिश्च मिश्रिता आलिंगनचुम्बनपुरस्सरं प्रक्षिप्तप्रजनना सानुरागाय संभोगाय परिगृहीता च सतीत्यर्थः। दिवेकशान् इति हि श्रूयते स हि नकुल प्रकारः। पूतिकेशी कशीकेव सा यथा पूतिकेशी संभोगकाले गृहणीयात् तद्वत् (यादुरी) यादुरित्युदकनामरोमत्वर्थे रेतोलक्षणेनोदकेन तद्वती, प्रभूतं रेतः क्षरन्ती आविर्भूत-स्नेहरसेत्यर्थः। (याशूनाम्) याशुशब्दः संभोगे संभोगानां शतानि च ददाति सा भोज्या सा भोगार्हा सम्भोगयोग्या त्वम् अत्यन्तबालत्वान्न तावदेवंरूपेत्यर्थः।

(स्कन्दवामिकृते निरुक्तभाष्ये डा० लक्ष्मणस्वरूप सम्पादिते पृ० ३४६)

अत्यन्त अश्लील होने के कारण इसका अनुवाद देना भी मुझे ठीक प्रतीत नहीं होता। संस्कृतज्ञ तो उपर्युक्त भाष्य का अर्थ समझ ही जायेंगे। अन्यों के लिये उसका संक्षिप्त भाव सायणाचार्य और वेंकट माधवादि का भाष्य उद्धृत करने के पश्चात् लिख दिया जायेगा।

सायणाचार्य भाष्य :—

संभोगाय प्रार्थितो भावयव्यः स्वभार्यां रोमशाम् अप्रौढेति बुद्ध्या परिहसन्नाह (भोज्या) भोगयोग्येषा (आगधिता) आसमंतात् गृहीता स्वीकृता तथा (परिगधिता) परितो गृहीता। आदरातिशयार्थं पुनर्वचनम्। गध्यं गृहणातेरिति यास्कः। यद्वा (आगधिता) आसमंतान्मिश्रयन्ती आन्तरं प्रजननेन बाह्यं भुजादिभिरित्यर्थः। गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मेति यास्कः। पूर्वस्मिन् पक्षे पुरुषस्य प्राधान्यम्, उत्तरस्मिंस्तु योषित इति भेदः। कीदृशी सा (या) (जंगहे) अत्यर्थं गृहणाति कदाचिदपि न विमुंचति, अत्यागे दृष्टांतः (कशीकेव) कशीका नाम सूतवत्सा नकुली सा यथा पत्या सह चिरकालं क्रीडति न कदाचिदपि विमुंचति तथैषापि। किं च मचेज्येषा (यादुरी) यादुरित्युदकनाम। रेतोलक्षणमुदकं प्रभूतं राति ददातीति यादुरी, बहुरेतोयुक्तेत्यर्थः। तादृशी सती (याशूनाम्) संभोगानाम् यश इति प्रजनननाम तत्सम्बधीनि कर्माणि याशूनि भोगाः तेषां (शता) शतानि असंख्यातानि (मह्यम्) ददाति।

(सायणकृत ऋग्वेद भाष्ये तिलक संस्थान प्रका० पृ० ८००)

इसका अनुवाद श्री रामगोविन्द त्रिपाठी वेदान्तशास्त्री ने निम्न शब्दों में किया है···

'यह संभोगयोग्या रमणी (लोमशा) अच्छी प्रकार आलिंगित होकर सूतवत्सा नकुली की तरह चिरकाल तक रमण करती है। बहुरेतोयुक्ता होकर रमणी मुझे (स्वनय राजा को) बहुवार भोग प्रदान करती है।

इस अनुवाद में सायण की इस भूमिका का अनुवाद नहीं दिया गया कि संभोग के लिये प्रार्थित भावयव्य राजा अपनी पत्नी रोमशा को अप्रौढ़ा (अप्राप्त रजोधर्मा) समझकर परिहासपूर्वक कहता है।

एक ओर तो सायणाचार्य ऋग्वेद भाष्य भूमिका में वेदों को अपौरुषेय मानकर मीमांसा के 'श्रुतिसामान्यम्' इत्यादि सूत्रों के अनुसार उनमें अनित्य इतिहास का खण्डन करते हैं और दूसरी ओर वे मंत्रों का उपर्युक्त प्रकार का अश्लील अर्थ करते हुए नहीं सकुचाते, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं? क्या ऐसा वदतोव्याघात दोषयुक्त अर्थ विद्वानों के लिए मान्य हो सकता है? क्या इस प्रकार के अपनी पत्नी के प्रति असंगत उपहासपूर्वक कथित वचनों से वेद का गौरव प्रतिष्ठित होता है? यह सर्वसम्मत बात है कि वेद 'तमस्मेरा युवतयो युवानम्' उप मामुच्चायुवतिर्बभूयाः' (ऋ० १०।१८३।२) इत्यादि द्वारा युवा और युवती के स्वयंवर विवाह का विधान करते हैं, फिर यह कहना कि पति को यह ज्ञात भी नहीं कि उसकी स्त्री ऋतुमती हो चुकी या नहीं और उसके साथ उपरिनिर्दिष्ट रूप से भद्दी मखौल करना कितना अनुचित है?

यही बात श्री स्कन्दस्वामी कृत अर्थ के विषय में लागू होती है। एक ओर तो स्कन्द स्वामी अपनी निरुक्त २।१२ की टीका में लिखते हैं—

"एवमाख्यानस्वरूपाणां मंत्राणां यजमाने नित्येषु च पदार्थेषु योजना कार्या। एष शास्त्रे सिद्धांतः···

ओपचारिकोऽयं मंत्रेष्वाख्यान समयः परमार्थेन तु नित्य पक्ष इति सिद्धम्।।

(निरुक्त टीका पृ० ७८)

अर्थात्—आख्यायिका के रूप में जो मंत्र हैं, उनकी यजमान और नित्यपदार्थों में योजना करनी चाहिये, यह शास्त्रों का सिद्धांत है। यह मंत्रों में आख्यान-कथादि का प्रतिपादन औपचारिक वा गौण है। वास्तव में तो नित्य पक्ष ही ठीक है, यह सर्वथा सिद्ध बात है।

दूसरी ओर वही वेदमंत्रों के इस प्रकार अनित्य इतिहासपरक अश्लीलतासूचक अर्थ बताते हैं, यह बात परस्पर विरुद्ध होने के कारण भी अमान्य हो जाती है।

मंत्र का दुर्गाचार्यकृत भाष्य—

मैथुनसम्बन्धाच्छब्दसाम्याच्च गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मा इत्युपपद्यते। (परिगधिता) परिमिश्रीकृता बाहुभ्यां मया परिष्वक्तेत्यर्थः। (कशीकेव) सा हि नकुलजातिः—सा यथा मदकाले प्रतिकशमतितरां परिष्वजति सहि तस्याः परिष्वजनस्वभावः। एवं या माम् परिगृहणाति बाहुभ्यां परिगृह्य च ददाति (यादुरी) आदरवती अथवा यादसा रेतः सेकेन तद्वती। यादः इत्युदकनामसु (नि० १।१२) पठितम्। (याशूनां शता) मैथुनाख्यानां शतानि बहुश इत्यर्थ (भोज्यैषा यैवंप्रकारा सा मम भोज्या पत्नीत्यभिप्रायः।

इसका भाषानुवाद देने की आवश्यकता नहीं। यह भाष्य सायणभाष्य के ही समान है, जिसका संक्षिप्त अनुवाद ऊपर दिया जा चुका है।

स्कन्दस्वामी, सायणाचार्य और दुर्गाचार्य तीनों ने लिखा है कि यादः का अर्थ निघण्टु १।१२ के अनुसार जल होता है। उसको वीर्य के अर्थ में ले लेना भी खींचातानी है।

वेंकटमाधव का भाष्य—

इस मंत्र की व्याख्या वेंकट ने निम्न श्लोकों में की है···

प्रादात्सुतां रोमशां नाम नाम्ना, बृहस्पतिर्भावयव्याय राज्ञे।
ततस्तमर्थं हरिवान् विदित्वा, प्रियं सखायं स्वनयं दिदृक्षुः।।
अभ्याजगामाथ शचीसहायः, प्रीत्यार्चयत् तं विधिनैव राजा।
अभ्याजगामांगिरसी च तत्र, दृष्ट्वा तयोः सा चरणौ ववन्दे।।
इन्द्रः सखित्वादथ तामुवाच, रोमाणि ते सन्ति न सन्ति राज्ञि।
सा बालभावादथ तं जगाद, उपोप मे शक्र परामृशेति।।

(आगधिता) आभिमुख्येन शरीरेण मिश्रिता या अंगैश्च मिश्रिता (कशीकेव) अत्यन्तं पुमांसं हस्ताभ्यां परिगृहणाति नकुलस्त्री कशीका। (यादुरी) स्त्री यादिरभिक्रमणकर्मा। साभिक्रमणवती स्त्री (मह्यम्) (याशूनाम्) यशसा हर्तृणां पुत्राणाम्, भोगसाधनानि शतानि ददातीति। यदा भावयव्यरोमशयोर्दम्पत्योरेव संवादस्तदानीं प्राप्तयौवना या पुमांसमालिंगते सा पुत्रजननयोग्या।।

(वेंकटमाधवकृता ऋगर्थदीपिका डा० लक्ष्मणस्वरूप सम्पादिता भाग २, पृ० ४५-४७)

यहां ऊपर जो श्लोक उद्धृत किये गए हैं, उनमें वेंकट माधव ने एक और ही विचित्र और अश्लील कथा इस मंत्रों के संबंध में दी है कि बृहस्पति ने अपनी पुत्री रोमशा भावयव्य राजा को विवाह में दी। जब इन्द्र को यह ज्ञात हुआ तो अपनी पत्नी के साथ मित्र भावयव्य को मिलने के लिए आया। राजा ने प्रेमपूर्वक उसका आदर सत्कार किया। अंगिरसी रोमशा ने भी इन्द्र और उसकी पत्नी का प्रसन्नतापूर्वक चरण स्पर्श किया। तब इन्द्र ने मित्र भाव से रोमशा से पूछा कि रानी तेरे बाल हैं वा नहीं। उसने बाल भाव से यह कहा कि शक्र 'उपोप मे परामृश'—हे इन्द्र! तू समीप से इनका स्पर्श कर। यह कथा, जो नितान्त अश्लील और इन्द्र और रोमशा दोनों की आचार भ्रष्टता की सूचक है, देकर वेंकट माधव ने 'आगधिता परिगधिता' इस मंत्र का अर्थ प्रायः स्कन्द स्वामी, सायणाचार्य, दुर्गाचार्य आदि के समान किया है। केवल 'यादुरी' का अर्थ उनके अर्थों से भिन्न 'अभिक्रमणवती' यह किया है, जिसका भाव उसने अधिक स्पष्ट नहीं किया। इसके पश्चात् उसने यह भी लिख दिया कि जब इसे भावयव्य और रोमशा पति-पत्नी का संवाद माना जाए तो जो प्राप्त यौवना पुरुष का आलिंगन करे, वही पुत्रोत्पादन में योग्य होती है, यह अभिप्राय है।

ग्रिफिथ ने ऋग्वेद के अंग्रेजी अनुवाद में इस तथा अगले मंत्र को अत्यन्त अश्लील मानकर इसका अंग्रेजी अनुवाद नहीं किया। परिशिष्ट में लेटिन अनुवाद देकर लिखा है कि···

They look like a fragment of a liberal shepherd's love-song.. Hymns of the Rigveda Vol. P. 641.

अर्थात्—ये मंत्र किसी उदार गडरिये के प्रेम संगीत के खण्ड प्रतीत होते हैं।

अब अन्य भाष्यकारों की वेद मंत्र के साथ की गई इस खिलवाड़ को देखने के पश्चात् महर्षि दयानन्दकृत मंत्रार्थ को देखिये, जो निम्न है···

कः काऽत्र राज्येऽवश्यं प्राप्तव्येत्यत्राह—या (आगधिता) समन्ताद् गृहीता। गध्यं गृहणातेः निरु० ५।१५ (परिगधिता) परितः सर्वतः गधिता शुभगुणैर्युक्ता नीतिः, गध्यतिर्मिश्रीभावकर्मा। निरु० ५।१५। (जंगहे) अत्यन्तं ग्रहीतव्ये (कशीका इव) यथा ताडनार्थं कशीका (याशूनां) प्रयतमानानाम्। अत्र यसु प्रयत्ने धातोर्बाहुलकादुण् प्रत्ययः सस्य शश्च (यादुरी) प्रयत्नशीला (शता) शतानि असंख्यातानि वसूनि (भोज्या) भोक्तुं योग्यानि (मह्यम्) (ददाति) सा सर्वैः स्वीकार्या।

भावार्थ—अत्रोपमालंकारः : यथा नीत्याऽसख्यातानि सुखानि स्युः, सा सर्वैः **सम्पादनीया।**

जिस नीति से अगणित सुख हों, वह सबको सिद्ध करनी चाहिए।

इस प्रकार विचारशील पाठक देखेंगे कि महर्षि दयानन्द ने भावयव्य नामक किसी राजा की अपनी अल्पायुष्का पत्नी रोमशा के सम्भोग की प्रार्थना पर उसके उपहास के रूप में कथित अश्लील उक्ति के रूप में मन्त्र को न लगाकर (जैसे कि स्कन्दस्वामी, सायणाचार्य, दुर्गाचार्य तथा वेंकटमाधव आदि मध्यकालीन भाष्यकारों ने किया) इसे नीति के विषय में लगाया है। जिस शुभगुणयुक्त नीति को भली-भाँति चारों ओर से ग्रहण किया जाए वह असंख्य सुखों को देने वाली होती है। जिस प्रकार चाबुक से घोड़े इत्यादि को वश में किया जाता है, उसी प्रकार इस उत्तम नीति

से दुष्टों को वश में किया जा सकता है। इस उपमा का यहां प्रयोग किया गया है। वह नीति न केवल शुभगुणयुक्ता होनी चाहिए, अपितु प्रयत्नशीला भी होनी चाहिए। इसलिए उसके विशेषण के रूप में "यादुरी" शब्द का प्रयोग किया गया है, जो "यती प्रयत्ने" से बना हुआ है।

कहाँ महर्षि दयानन्दकृत उत्तम नीति विषयक यह मन्त्रार्थ और कहां स्कन्दस्वामी, सायण, दुर्गाचार्य, वेंकटमाधवादि कृत अश्लील उपहासजनक अर्थ? इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से महर्षि के भाष्य की विशेषता स्पष्टतया ज्ञात होती है।

ऊपर उद्धृत मन्त्र के ही सायण भाष्य को देखिये कि कैसे पहले तो वह 'मैं' का प्रयोग माम् के स्थान पर मान कर कहता है कि द्वितीया के अर्थ में चतुर्थी का प्रयोग यहां किया गया है। फिर यद्वा कह कर वह "मे" को षष्ठी का प्रयोग मान लेता है और "गोपनीयं अंगम्" इसका अध्याहार करता है जिसका मन्त्र में कहीं निर्देश तक नहीं। "गन्धारीणामिवाविका" का भाष्य करते हुए पहले वह गन्धार देश की भेड़ों की उपमा मानकर अर्थ करता है और फिर सम्भवतः स्वयं अपनी प्रारम्भिक भूमिका में मीमांसा शास्त्र के आधार पर प्रतिपादित वेदों की नित्यता और अपौरुषेयता को दृष्टि में रखते हुए उसका गर्भ धारिणी स्त्रियों की योनिपरक अर्थ करता है। ऐसी अनिश्चयपूर्ण आनुमानिकता सायण भाष्य में बहुत अधिक पाई जाती है, जो निष्पक्ष विचारशील पाठकों को बहुत खटकती है।

वेंकटमाधव कृत अश्लीलार्थ :—

वेंकट माधव ने इस तथा इससे पूर्व मन्त्र के सम्बन्ध में श्लोकों में जो कथा दी है, उसका मैं पहले उल्लेख कर चुका हूं। उसके अनुसार "उपोप मे परामृश" यह वचन रोमशा का अपने पति भावयव्य के प्रति नहीं, अपितु इन्द्र के प्रति है जो उसके पति का मित्र था जिसने उसके चरण स्पर्श करने पर रोमशा से पूछा कि तेरे रोम आ चुके हैं वा नहीं और उसने बालभाव से उत्तर दिया कि तू मेरे अंगों का समीपता से स्पर्श कर।

इन्द्रः सखित्वादथ तामुवाच, रोमाणि ते सन्ति न सन्ति राज्ञि।
सा बालभावादथ तं जगाद, उपोप मे शक्र परामृशेति ॥

मंत्र का अर्थ वेंकटमाधव के शब्दों में निम्न प्रकार है······

त्वं ममांगानि उपपरामृश। मा मे अल्पानि रोमाणि मंस्थाः। सर्वांगा अहम् अस्मि रोमशा। गंधारयो नाम जनपदास्तत्र भवत्यूर्णा। यथा गंधारीणां सम्बन्धिनी अविकेति। (ऋगर्थदीपिका भाग २ डा० लक्ष्मण स्वरूप सम्पादित पृ० ४७)।

अर्थ ऊपर दिया ही जा चुका है। इस अर्थ को मानने पर इन्द्र और रोमशा दोनों की सदाचार भ्रष्टता और अनैतिकता प्रकट होती है, जिस पर अधिक टिप्पणी करना अनावश्यक है। कितने दुःख और आश्चर्य की बात है कि वेदों को अपौरुषेय ईश्वरीय वाणी तथा पवित्र धर्मग्रन्थ मानते हुए भी इन मध्यकालीन भाष्यकारों को मन्त्रों के ऐसे असंगत अश्लील ऊटपटाँग अर्थ करते हुए जरा भी संकोच न हुआ।

दुर्गाचार्य कृत अर्थ :—

दुर्गाचार्य ने भी अपने ३।२० के निरुक्त भाष्य में इस मन्त्र का ऐसा ही अश्लील अर्थ किया है, यथा······

भावयव्यमेव सा (रोमशा) भर्तारं तेनानुपेयमाना ब्रवीति हे राजन् ! (उप) (उपगम्य) (उप) उपश्लिष्य च (मे) मम (परामृश) संस्पृश। यो यः प्रदेशः पुरुषेण स्त्रियाः स्पष्टव्यस्तं तं सर्वमेव यथेच्छं संस्पृश । अथ त्वम् अलोमकाऽल्पवयस्कासि कथं स्पृष्टव्येति प्रत्युक्तेवाह। (मा मे दभ्राणि मन्यथाः) लोमानीति शेषः। दभ्राणि-अल्पानि (निघ० ३-२) लोमानि मे मन्यथाः। जानेऽहमेतत् यथा अलोमिकाया उपगम-प्रतिषेध उक्तः स्मृतौ "नाजातलोम्न्योपहासमिच्छेद्" इति । अतस्ते वेदयामि (सर्वाहमस्मि रोमशा) सर्वेष्वेवावयवेषु ममोत्पन्नानि रोमाणि येषु स्त्रीणाम् उत्पद्यन्ते। कथं च पुनरहमस्मि रोमशा (गंधारीणामिवाविका) गांधार (कंधार) देश जातानामवीनां मध्ये यथा (अविका) ह्रस्वा अविः तस्या रोमाणि सघनानि मृदुलानि च भवन्ति एवमहमस्मीति निःशंकमुपगच्छ मामिति भावः ॥

(दुर्गाचार्यकृत निरुक्त व्याख्या निर्णयसागर प्रेस बम्बई १९३० ई० पृ० १४८)

यहाँ दुर्गाचार्य स्मृति का वचन उद्धृत करते हुए कहते हैं कि छोटी आयु की पत्नी के साथ संभोग न करना चाहिये यह मैं भी जानती हूं किन्तु मैं अब रोमयुक्ता हूं। अतः आप मेरे सब अंगों का समीपता से स्पर्श करें इत्यादि। इस कथा को सत्य मानने पर ध्वनि यह निकलती है कि विवाह के समय रोमशा छोटी आयु की थी और उसके पति को भी यह ज्ञात न हुआ था कि वह ऋतुमती हो चुकी है, अतः उसने पूर्व मन्त्र द्वारा उसका उपहास किया था। यह सब कल्पना सर्वथा अमान्य और असंगत है। वेद यौवनावस्था में ही स्वयंवर विवाह का प्रतिपादन करते हैं। इस बात के सैंकड़ों प्रमाण हैं। ऋ० १०।८५ के जिन मन्त्रों से विवाह संस्कार आज तक भी प्रचलित है 'उनमें सूर्यां यत् पत्ये शंसन्तीं मनसा सविताऽददात्।" मंत्र ६ के भाष्य में सायण ने भी स्पष्ट लिखा हैं "पत्ये शंसन्तीम् पतिं कामयमानाम् पर्याप्त यौवनाम्" इत्यर्थः ॥

अर्थात् पति की कामना करने वाली—युवावस्थां प्राप्ता युवती। "गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमावदासि।" (मं० २६)

इत्यादि से स्पष्ट है कि कन्या विवाह के समय युवती होती है जिसे कहा जाता है अब तुम पति के घर में जाकर वहाँ घर की मालकिन बनो और सबको वश में रखते हुए उचित आदेश दो तथा ज्ञान का प्रसार करो । अतः दुर्गाचार्यादि कृत उपर्युक्त व्याख्या नितान्त असंगत है।

ऐसा ही अर्थ अंग्रेजी में विल्सन और श्री पद्मनाभ ऐयंगार ने किया है । इन अनुवादों को ही ठीक मानकर भारतीय विद्याभवन बम्बई द्वारा प्रकाशित "वैदिक एज" नामक पुस्तक के लेखकों ने पृ० ३४८ पर इस सूक्त (ऋ० १।१२६) के विषय में टिप्पणी दी है कि…

"This dismal hymn ends with two more verses notable only for their extreme obscenity.

(Vedic Age P. 348).

अर्थात् इस निराशाजनक सूक्त की समाप्ति दो मन्त्रों से होती है जो अश्लीलता की पराकाष्ठा के लिये कुख्यात हैं। यदि "वैदिक एज" के विद्वान् लेखक महर्षि दयानन्द कृत अर्थ को देख लेते तो वे ऐसी भ्रान्तिपूर्ण टिप्पणी करने का दुस्साहस न करते।

महर्षि दयानन्द कृत अर्थ :—

महर्षि दयानन्द ने इस मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार किया है—

पुना राज्ञी किं कुर्यादित्याह—हे पते राजन् ! याऽहं (गन्धारीणाम् इव अविका) पृथिवी राज्यधर्त्रीणां मध्ये रक्षिका (रोमशा) प्रशस्तलोमा सर्वा अस्मि तस्या मे गुणान् (परामृश) विचारय (मे) (दभ्राणि) अल्पानि कर्माणि (मा) (उपोप) अति समीपत्वे (मन्यथाः) जानीथाः ॥

भावार्थ—राज्ञी राजानं प्रति ब्रूयात् अहं भवतो न्यूना नास्मि यथा भवान् पुरुषाणां न्यायाधीशोऽस्ति तथाहं स्त्रीणां न्यायकारिणी भवामि।

अर्थात्—रानी राजा से कहती है कि आप भी मेरे गुणों का विचार करें। मुझे कभी तुच्छ न समझें और न मेरे कामों को तिरस्कार की दृष्टि से देखें। मैं आपसे न्यून नहीं हूँ। जैसे आप पुरुषों के लिए न्यायकारी हैं, वैसे मैं भी स्त्रियों के लिये न्यायकारिणी होती हूँ। मैं सदा स्त्रियों का न्याय करने में तत्पर हूँ।

इसमें अश्लीलता की क्या बात है? यह तो स्त्रियों का पुरुषों के समान स्थान बताया गया है और उनका कभी अपमान न करने का आदेश है जिसको सुसभ्य जगत् की देन माना जाता है। रानी का काम स्त्रियों का न्याय करना। अर्थात् मेजिस्ट्रेट वा जज आदि का स्थान भी स्त्रियों को दिया जाना चाहिए और उनको कभी तुच्छ न समझना चाहिये, यह कितनी उच्च व्यावहारिक शिक्षा मन्त्र में पति पत्नी के संवाद के रूप में दी गई है । इनको पढ़ते हुए तो सुप्रसिद्ध विचारक रस्किन के इन शब्दों का स्मरण हो जाता है कि—

"We are foolish and without excuse foolish in speaking of the superiority of the one sex to the other. Each completes the other and is completed by the other. The happiness and perfection of both depends on each asking and receiving from the other what the other only can give." (Sesame and lilies, by John Ruskin P. 73)

अर्थात्—हम पुरुष और स्त्री में से किसी एक को दूसरे से ऊंचा सिद्ध करने का यत्न करते हुए अक्षन्तव्य मूर्खता करते हैं, क्योंकि दोनों एक दूसरे की पूर्ति करने वाले हैं। दोनों की प्रसन्नता और पूर्णता एक दूसरे को यथाशक्ति देने और उससे लेने में है, इत्यादि।

ऐसे उच्चभावद्योतक मन्त्रों को बिना सोचे समझे अश्लीलता की पराकाष्ठा के सूचक मान लेना कितना बड़ा दुःस्साहस है।

शुद्धि और योग्य चेष्टा का ज्ञान कराते हैं ? क्या तुमने पढ़ा है, क्या क्या और पढ़ना है इत्यादि पूछकर अच्छी प्रकार परीक्षा करके उत्तम विद्यार्थियों को उत्साह देकर और दुष्ट स्वभाव वालों को धिक्कार देकर विद्या की उन्नति करावें ।

अब विचारशील निष्पक्षपात विद्वान् देखें कि इन दोनों अर्थों में कितना आकाश-पाताल का अन्तर है ? यहां घोड़े की हिंसा करके उस मरे हुए घोड़े को कहना कि प्रजा-पालक परमेश्वर ने तुझे काटा है, उसी ने तेरी खाल उतारी है और तेरे अंगों की अग्नि में आहुति दी है, मैंने नहीं (अपने हिंसा के पाप को प्रजापति 'परमेश्वर के सिर पर मढ़ना) और कहां आचार्य तथा अध्यापकों के विद्यार्थियों के भलीभाँति निरीक्षण और उनके दोष निवारण पूर्वक विद्यावृद्धि के प्रयत्न का प्रतिपादक सुन्दर उपदेश ! वस्तुतः कात्यायनादि के नाम से कल्पित विनियोग और विशसन तथा शमिता के अर्थ को ठीक न समझने से ही यह अनर्थ हुआ । विशास्ति का सीधा अर्थ विशेष रूप से ज्ञान देता है यही है । (शासु अनुशिष्टौ, अनुशिष्टिवविच्यज्ञापनम् अदा० पर० । उसका काटता है यह अर्थ अयुक्त है । शम्यति का अर्थ शान्ति पहुँचाता है, यह स्पष्ट है । हिंसापरक अर्थ कल्पित है । यही बात शमिता के विषय में है, जिसका अर्थ शान्ति-दाता अथवा शान्तियज्ञ को करने वाला है । विनियोग के विषय में महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में ठीक ही लिखा है कि······

तस्माद् युक्तिसिद्धवेदादिप्रमाणानुकूलो मन्त्रार्थानुसृतो विनियोगो ग्रहीतुं योग्योऽस्ति ॥

अर्थात्—ब्राह्मण, श्रौतसूत्रादि का भी वही विनियोग ग्रहण करने योग्य है जो युक्तिसिद्ध, वेदादि प्रमाण के अनुकूल और मन्त्रार्थ के अनुसार हो, अन्य नहीं। मैं यजुर्वेद के तुलनात्मक गम्भीर अनुशीलन के पश्चात् इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि मन्त्रों के प्रायः कात्यायनादि के नाम से प्रचलित असंगत वस्तुतः मन्त्रार्थ के विरुद्ध विनियोगों के कारण ही मध्यकालीन भाष्यकार सरल और सुस्पष्ट मन्त्रों के भी अर्थ का अनर्थ कर गये हैं । इसलिए महर्षि दयानन्द ने उन कल्पित विनियोगों की उपेक्षा करके मन्त्रों के वास्तविक तथा सार्वभौम शिक्षाप्रद अर्थों का निर्देश किया है । मैं इसे महर्षि के भाष्य की बड़ी विशेषता समझता हूं ।

अब इसके अगले मन्त्रों को तुलनात्मक दृष्टि से देखिए ।

ऋतवस्त ऋतुथा पर्व शमितारो विशासतु ।
संवत्सरस्य तेजसा शमीभिः शम्यन्तु त्वा ॥ (यजु० २३।४०)

उव्वट और महीधर ने इस मन्त्र का भाष्य इस प्रकार किया है—हे अश्व (ऋतवः) शमितारः (ऋतुथा) ऋतौ ऋतौ काले (ते) तव (पर्व) पर्वाणि अस्थि-ग्रन्थीन् (शमीभिः) कर्मभिः (विशासतु) भिन्नानि कुर्वन्तु । (त्वा) त्वां (शम्यन्तु) पर्वविशसनेन हविः कुर्वन्तु ॥ महीधरभाष्य में (जैसे कि उनकी चोरी की आदत प्रायः सर्वत्र प्रतीत होती है) उव्वटभाष्य को अक्षरशः उद्धृत कर दिया गयाहै, अतः उसे दुबारा लिखने की आवश्यकता नहीं । इसका तात्पर्य यह है कि हे घोड़े ! ऋतुएं शमन (इन भाष्यकारों के अनुसार) हिंसा करने वाली हैं । वे समय समय पर तुम्हारी हड्डियों के जोड़ों को तोड़ती रहें । संवत्सर रूप काल के तेज से-ये ऋतुएं तेरी हड्डियों को तोड़ कर उनकी हवि या आहुति दें । महर्षि दयानन्द जी ने इसका भाष्य इस प्रकार

पदार्थ—(ऋतवः) वसन्ताद्याः (ते) तव (ऋतुभ्यः) (पर्व) पालनम् (शमितारः) अध्ययनाध्यापनाख्ये यज्ञे शमादिगुणानां प्रापकाः (विशासतु) विशेषे-णोपदिशन्तु (संवत्सरस्य) (तेजसा) जलेन तेज इत्युदकनाम निघ० १।१२ (शमीभिः) कर्मभिः (शम्यन्तु) (त्वा) त्वाम् ॥

अन्वय—हे विद्यार्थिन् ! यथा ते ऋतवः ऋतुथा पर्वेव शमितारो ध्येतारं विशासतु संवत्सरस्य तेजसा शमीभिस्त्वा शम्यन्तु तांस्त्वं सदैव सेवस्व ॥

भावार्थ—यथा ऋतवः पर्यायेण स्वानि स्वानि लिंगान्यभिपद्यन्ते तथैव स्त्री - पुरुषाः पर्यायेण ब्रह्मचर्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्यासाश्रमान् कृत्वा ब्राह्मणा ब्राह्मण्यश्चाध्यापयेयुः । क्षत्रियाः प्रजा रक्षंतु वैश्याः कृष्यादिकमुन्नयन्तु, शूद्राश्चैतान सेवन्ताम् ।

अर्थात्—जैसे ऋतुएं क्रम से अपने अपने चिह्नों को प्रकट करती हैं, वैसे स्त्री-पुरुष क्रम से ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों को ग्रहण कर ब्राह्मण और ब्राह्मणियां अध्यापन करें, क्षत्रिय प्रजाओं की रक्षा करें, वैश्य कृषि आदि को उन्नत करें और शूद्र इनकी सेवा करें ।

इस प्रकार मन्त्र में ऋतुओं के दृष्टान्त से वर्णाश्रम धर्म विषयक कितनी सुन्दर शिक्षा दी गई है, जबकि उव्वट, महीधरादि तथा उनके अनुयायी ग्रिफिथ द्वारा जिसने···

In due time let the seasons as thy slaughterers divide thy joints.

And with the splendour of the year sacrifice thee with holy rites. (P. 214).

इस रूप में अक्षरशः उव्वट, महीधर का ही अविवेकपूर्वक अनुसरण किया है । ऋतुओं के घोड़े की हड्डियों के जोड़े तोड़ने की बात बेहूदी है, जिसका कोई भी बुद्धिमान् उपहास किए बिना नहीं रह सकता । यहां भी विशासतु और शम्यन्तु इत्यादि के "विशेष रूप से उपदेश करें, और शान्त करें" इस सीधे अर्थ को छोड़ हिंसापरक अर्थ करने से यह अनर्थ हुआ है ।

अब हम इससे अगले २३।४१ मन्त्र को लेते हैं जो निम्नलिखित है······

अर्द्धमासाः परूंषि ते मासा आच्छ्यन्तु शम्यन्तः ।
अहो रात्राणि मरुतो विलिष्टं सूदयन्तु ते ॥ य० २३।४१

इसका उव्वट भाष्य निम्न प्रकार है······

(अर्धमासाः) पक्षा मासाश्चेतदभिमानिनो देवाः (शम्यन्तः) संस्कुर्वन्तः, हे अश्व ! (ते) तव (परूंषि) पर्वाणि (आच्छ्यन्तु) समंताच्छिन्दन्तु किंच (अहोरात्राणि अहोरात्रानिमानि देवाः (मरुतः) च देवाः (ते) (विलिष्टम्) लिश अल्पीभावे विशेषेण अल्पमंगं तत् (सूदयन्तु) सन्दधतु सूद निरासे, अत्र सन्धानार्थः व्यर्थं मास्तु ॥ महीधर भाष्य में भी अक्षरशः उव्वट को उठाकर रख दिया गया है ।

उव्वट—महीधर भाष्यानुसार मन्त्र का अर्थ यह बनता है कि हे अश्व ! पक्ष और मास के अभिमानी देव संस्कार करते हुए तेरे जोड़ों को चारों ओर से काटें और फिर देव जो थोड़ा अंग है उसको जोड़ दें । अब पाठक विचार करें कि यह बात क्या बनी ? पक्ष और मास के अभिमानी देव घोड़े के जोड़ों को चारों ओर से जोड़ दें, यह

क्या असंगत बात मारे जाते हुए घोड़े को सम्बोधन करके कही जा रही है ?

ग्रिफिथ ने भी इन दोनों का ही अनुसरण निम्न अंग्रेजी अनुवाद में किया है···

Let the half months and let the months, while sacrificing, flay thy limbs. Let day and night and Maruts mend each fault in sacrificing thee. (P. 214).

यहां ग्रिफिथ साहब ने चतुर्थ चरण के अनुवाद में एक बात अधिक जोड़ दी है जो उव्वट और महीधर के भाष्य में अस्पष्ट थी कि तेरी बलि चढ़ाने में जो त्रुटि रह गई हो उसको दिन रात और मरुत् देवता ठीक कर दें। अब महर्षि दयानन्द कृत अर्थ को देखिए······

पदार्थ—(अर्धमासाः) कृष्णशुक्लपक्षाः (परूंषि) कठोरवचनानि (ते) तव (मासाः) चैत्रादयः (आ) समन्तात् (छ्यन्तु) छिन्दन्तु (शम्यन्तः) शान्तिं प्रापयन्तः (अहोरात्राणि) (मरुतः) मनुष्याः (विलिष्टम्) विरुद्धम् अल्पमपि व्यसनम् (सूदयन्तु) दूरीकारयन्तु (ते) तव ॥

अन्वय—हे विद्यार्थिन्! अहोरात्राणि, अर्धमासा मासाश्च आयूंषीव तव (परूंषि) शम्यन्तो महतो दुर्व्यसनान् छ्यन्तु ते तव मासा विलिष्टं सूदयन्तु।

भावार्थ—यदि माता पित्रध्यापकोपदेशकातिथयो बालानां दुर्गुणान्न निवर्तयेयुस्ते शिष्टाः कदाचिन्न भवेयुः॥

तात्पर्य यह है कि यह सम्बोधन मारे जाने वाले घोड़े को नहीं अपितु विद्यार्थी को किया जा रहा है। उसे कहा जा रहा है कि माता पिता अध्यापक और अतिथि तेरे कठोर वचनों तथा सब छोटे से छोटे व्यसनों को भी क्रम से काटते वा दूर करते जायें। इस प्रकार व्यसनरहित बनाकर वे तुझे शान्ति पहुँचाएं। यहां घोड़े के अंगों को काटने की शिक्षा नहीं, किन्तु विद्यार्थी के परुष वा कठोर वचनों (परु और परुष शब्द एक ही धातु के रूप में हैं) को काटने और उसके छोटे-बड़े सब दुर्व्यसनों को दूर करने की है जो शिक्षा की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। निष्पक्ष और विद्वान् पाठक विचार करें कि इन दो प्रकार के अर्थों में कितना आकाश पाताल का अन्तर है और वेदों के महत्त्व की दृष्टि से (जो सायण, उव्वट, महीधरादि सब भारतीय भाष्यकार सम्मत है) कौन सा अर्थ उपादेय है।

अब हम इसके अगले मन्त्र २३।४२ का तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत करते हैं। मन्त्र इस प्रकार है······

दैव्या अध्वर्यवस्त्वाच्छ्यन्तु वि च शासतु।
गात्राणि पर्वशस्ते सिमाः कृण्वन्तु शम्यन्तीः॥

इसका उव्वट कृत भाष्य निम्न प्रकार है—

देवानामिमे दैव्याः अश्विनौ देवानामध्वर्यू इत्युक्तत्वात् अश्विप्रभृतयो देवसम्बन्धिनोऽध्वर्यवः। हे अश्व (त्वा) आछ्यन्तु आच्छिन्दन्तु (विशासतु) च हविः-कुर्वन्तु किंच तव (गात्राणि) विभक्तिव्यत्ययः गात्रेषु शरीरेषु (पर्वशः) पर्वणि पर्वणि (सिमाः) मर्यादाः (कृण्वन्तु) कृ करणे स्वादिः कीदृशीः सीमाः (शम्यन्तीः) संस्कुर्वाणाः॥

महीधर ने भी अक्षरशः इसी भाष्य को उद्धृत कर दिया। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने इसका हिन्दी अनुवाद इस प्रकार किया है······

हे अश्व! देव-सम्बन्धी अध्वर्यु अश्विनीकुमार तुझको छेदन करें (काटें) और विशसन करते (काटते हुए) हवि को सम्पादन करें। संस्कार करती हुई सीमाएं तेरे गात्रों को भिन्न भिन्न करें।

यहां फिर विशासतु का अर्थ "विशेष रूप से उपदेश करना" यह छोड़कर काटने वाले लिया गया है और घोड़े के अंगों की आहुति देने का विधान इन मध्यकालीन भाष्यकारों ने कर दिया है। जब घोड़े को काटा ही जा रहा है तो उसके लिए मर्यादा स्थापित करने और उसे शान्ति पहुँचाने का अर्थ ही क्या रह जाता है?

ग्रिफिथ ने भी ठीक इनका अनुसरण करते हुए अनुवाद कर दिया है जो निम्न है······

Let the divine Adhvaryus flay thy body and dissect thy frame.

And let the sacrificing lines prepare thy members joint by joint. (P. 214).

अब महर्षि दयानन्द कृत अर्थ को देखिये। वे विषय का निर्देश करते हुए लिखते हैं······

"अथाध्यापकादयः कथं वर्तेरन्नित्याह" अर्थात् अब अध्यपकादि कैसे व्यवहार करें इसका उपदेश दिया जाता है।

पदार्थ—(दैव्याः) देवेषु विद्वत्सु कुशलाः (अध्वर्यवः) आत्मनोऽहिंसाख्ययज्ञमिच्छन्तः (त्वा) (त्वाम् आछ्यन्तु) छिन्दन्तु (वि च शासतु) उपदिशन्तु (गात्राणि) अंगानि (पर्वशः) सन्धितः (ते) तव (सिमाः) प्रेमबद्धाः (कृण्वन्तु) (शम्यन्तीः) दुष्टस्वभावं निवारयन्त्यः॥

अन्वय—हे विद्यार्थिन् विद्यार्थिनी वा दैव्या अध्वर्यवः त्वा विशासतु च ते तव दोषान् आच्छ्यन्तु पर्वशो गात्राणि परीक्षन्तां सिमाः शम्यन्तीः सत्यो मातरोऽप्येवं शिक्षां कृण्वन्तु॥

भावार्थ—अध्यापकोपदेशकातिथयो यदा बालकान् शिक्षेयुस्तदा दुर्गुणान् विनाश्य विद्यां प्रापयेयुरेवमध्यापिकोपदेशिका विदुष्यः स्त्रियोऽपि कन्याः प्रत्याचरेयुः। वैद्यकशास्त्ररीत्या शरीरावयवान् सम्यक् परीक्ष्योषधान्यापि प्रदद्युः॥

तात्पर्य यह कि (अध्वर्यवः) अहिंसा रूप यज्ञ की इच्छा करने वाले विद्वान् विद्यार्थियों के दोषों को काटें। वे उनके अंगों की वैद्यक शास्त्र की रीति से अच्छी प्रकार परीक्षा करें। (शम्यन्तीः) दुष्टस्वभाव का प्रशमन अर्थात् निवारण करती और शान्ति को देती हुई प्रेमबद्ध माताएं भी कन्याओं को इसी प्रकार की शिक्षा दें।

यहां भी विद्यार्थियों के स्थान पर घोड़े पर इसे लगाने और विशासतु, शम्यन्तीः इत्यादि शब्दों के सीधे "उपदेश करें, तथा दुर्गुणों को प्रशमन करके शान्ति पहुँचाती रहें," इनके स्थान में हिंसापरक अर्थ लेने से कितना अनर्थ हो गया है और किस प्रकार की असंगत बात बन गई है। इसे विद्वान् लोग विचार करें। अध्वर शब्द की व्युत्पत्ति करते

निरुक्त में यास्काचार्य ने २।७ में स्पष्ट कहा है कि "अध्वर इति यज्ञनाम ध्वरति हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः" अध्वर्युः का अर्थ यहां "अध्वरं युक्तीति वा अध्वरं कामयत इति वा" किया गया है अर्थात् अहिंसात्मक यज्ञ की कामना करने वाला अथवा उसकी व्यवस्था करने वाला। ऐसे अध्वर्युशब्द का प्रयोग करते हुए फिर उसके साथ अश्वादि पशुओं के अंग अंग काटने की बात जोड़ देना कितना असंगत और परस्पर विरुद्ध कथन है ? अतः महर्षि दयानन्द ने अध्वर्युपद का अहिंसारूप यज्ञ की इच्छा करते हुए यह अर्थ देकर विशासतु का अर्थ उव्वट, महीधर, ग्रिफिथ आदि की तरह काटने वा काटे हुए अंगों की आहुति देने का न करके जो "विशेष रूप से उपदेश देने" का किया है, वह सरल और सुसंगत है। इसके साथ छात्र-छात्राओं वा संतानों के दुर्गुण निवारण और समय-समय पर उनकी शारीरिक परीक्षा की बात कितनी महत्त्वपूर्ण है।

अब हम इसी २३वें अध्याय के ४३वें मन्त्र पर विचार करना चाहते हैं जो निम्नलिखित है······

द्यौस्ते पृथिव्यन्तरिक्षं वायुश्छिद्रं पृणातु ते।
सूर्यस्ते नक्षत्रैः सह लोकं कृणोतु साधुया॥

इसका उव्वटकृत भाष्य इस प्रकार है (द्यौः) स्वर्गः (पृथिवी) (अन्तरिक्षम्) लोकत्रयाभिमानिनो देवा अग्निवायु सूर्याःवायुश्च शरीरस्थः प्राणादिः हे अश्व (ते) तव (छिद्रं पृणातु) वचन व्यत्ययः पृणन्तु पूरयन्तु यत् न्यूनं तत्पूरयन्तु किंच (नक्षत्रैः सह) नक्षत्रयुक्तः सूर्यः (ते) तव (साधुया) साधु समीचीनं (लोकं कृणोतु) करोतु सूर्यस्ते उत्तमं लोकं ददात्वित्यर्थः॥ (पृ० ४१५)।

घोड़े के अंगों को काटकर और उनकी आहुति अग्नि में देने के पश्चात् यह प्रार्थना कि अग्नि, वायु, सूर्य तेरी न्यूनताओं को पूरा करें कितनी असंगत है, पाठक इसका विचार करें। कर्म फलदाता भगवान् है, उसके स्थान पर सूर्य से यह प्रार्थना कि नक्षत्रों के साथ वह तुझे उत्तम गति देवे, उत्तम लोक में पहुँचाए, यह भी कितनी असंगत और उपहासजनक प्रार्थना है। अब महर्षि दयानन्दकृत अर्थ को देखिए। उनके अनुसार पूर्व मंत्रवत् यहां सम्बोधन मारे जाते हुए अश्व को नहीं अपितु शिष्या वा अध्यापिका को है कि······

पदार्थ—(द्यौः) प्रकाशरूपा विद्युत् (ते) तव (पृथिवी) भूमिः (अन्तरिक्षम्) आकाशम् (वायुः) पवनः (छिद्रम्) इन्द्रियम् (पृणातु) सुखयतु (ते) तव (सूर्यः) सविता (नक्षत्रैः) (सह) (लोकम्) दर्शनीयम् (कृणोतु) (साधुया) साधु सत्यम्।

अन्वय—हे शिष्येऽध्यापिके वा यथा द्यौः पृथिव्यन्तरिक्षं वायु सूर्यो नक्षत्रैः सह चन्द्रश्च ते छिद्रं पृणातु (ते) तव व्यवहारं साध्नोतु (ते) तव साधुया लोकं कृणोतु।

भावार्थ—यथा पृथिव्यादयः सुखप्रदाः सूर्योदयप्रकाशकाः पदार्थाः सन्ति तथैवाध्यापका उपदेशकाश्च अध्यापिका अप्युपदेशिकाश्च सर्वान् सन्मार्गस्थान् कृत्वा विद्याप्रकाशं जनयन्तु।

तात्पर्य यह है कि जैसे पृथिवी आदि पदार्थ सुखदायक हैं और सूर्यादि प्रकाशक हैं वैसे ही अध्यापक उपदेशक तथा अध्यापिकाएं और उपदेशिकाएं सबको सन्मार्ग पर चलाकर विद्याप्रकाश को उत्पन्न करें। विद्युत्, पृथ्वी, आकाश और वायु तेरी इन्द्रियों

को सुख देवें और सूर्य तेरे लिए सारे लोक को भलीभांति दर्शनीय बनाए। सूर्य-प्रकाश से तुम सदा लाभ उठाते रहो। अब पाठक देखें कि इन दो प्रकार के अर्थों में कितना अधिक अन्तर है ? कहाँ तो शिष्य-शिष्याओं के लिए यह शुभ कामना कि पृथिवी, वायु, आकाशादि सब उनकी इन्द्रियों के लिए सुखदायी हों और यह उपदेश कि अध्यापक, उपदेशक अथवा अध्यापिका, उपदेशिकाएं उनको उत्तम मार्ग पर चलाने वाली और विद्या प्रकाश को देने वाली हों और कहां घोड़े को मार कर उसकी त्रुटियों को पूरा करने की अग्नि-वायु-सूर्यादि से प्रार्थना ? वेदों के महत्त्व की दृष्टि से कौन सा अर्थ उपादेय है, यह विचारशील, पाठक स्वयं विचार करें। हमें तो महर्षि दयानन्द कृत अर्थ ही सरल और सुसंगत प्रतीत होता है। अब इस प्रकरण के अन्तिम अर्थात् ४४वें मन्त्र पर हम तुलनात्मक दृष्टि से विचार करना चाहते हैं। यह मन्त्र निम्नलिखित है···

शं ते परेभ्यो गात्रेभ्यः शमस्त्ववरेभ्यः।
शमस्थभ्यो मज्जभ्यः शम्वस्तु तन्वै तव॥

इसका उव्वटाचार्य कृत भाष्य इस प्रकार है······

हे अश्व ! (ते) तव (परेभ्यः) उच्चेभ्यः अवयवेभ्यः शिर आदिभ्यः (शम्) सुखम् (अस्तु) (अवरेभ्यः) अधःस्थेभ्यश्च पादादिभ्यः (गात्रेभ्यः) अवयवेभ्यः शम् अस्तु। (अस्थभ्यः) तवास्थिभ्यश्च शम् अस्तु (मज्जभ्यः) पृष्ठधातुभ्योऽपि शम् उ अस्तु किं बहुना तव (तन्वै) तन्वाः सर्वस्यापि शरीरस्य (शमु) सुखमेवास्तु ! उ एवार्थे।

महीधर ने यहां भी अपने स्वभावानुसार उव्वट के भाष्य की अक्षरशः नकल कर ली है अतः उसको उद्धृत करना अनावश्यक है। पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र ने उव्वट-महीधर भाष्य का ही अनुवाद निम्न शब्दों में किया है—

हे अश्व ! तुम्हारा हर अवयव अर्थात् शिर आदि से सुख हो अर्थात् तुम्हारे उत्तमांग हमारे लिए कल्याणाकारी हों। नीचे स्थित कर-चरणादि गात्रों को वा अंगों को सुख हों। अस्थियों के निमित्त, मज्जा के निमित्त सुख हो वा इनसे हमारा मंगल हो वा तुम्हारे शरीर को सुख हो।

ग्रिफिथ ने भी इस मंत्र का अंग्रेजी अनुवाद इसी आशय का किया है, सम्बोधन अश्व (Horse) को ही है······

Well be it with thine upper parts, well with thy marrow and with all thy frame !

जहां तक इस मन्त्र के शब्दों के अर्थ का सम्बन्ध है उसमें कोई दोष वा आक्षेपयोग्य बात नहीं। ये शब्द इतने सरल और स्पष्ट हैं कि दूसरे अर्थ की कल्पना भी नहीं हो सकती। इसलिए, जैसा कि मैं अभी दिखाऊँगा, महर्षि दयानन्द ने भी शब्दों का अर्थ इसी प्रकार किया है किन्तु प्रश्न केवल विनियोग का है अथवा इस चीज का कि यह सब अंगों तथा समस्त शरीर के सुखकारी होने का आशीर्वाद किसको दिया जा रहा है। जहां उव्वट, महीधर, ग्रिफिथ आदि यह मानते हैं कि यह आशीर्वाद घोड़े के अंगों को काटकर उसकी आहुति अग्नि में देते हुए उसे दिया जा रहा है कि तेरे सिर, हाथ, पैर आदि सब अंगों को सुख हो तथा तू हमारे लिए भी कल्याणाकारी हो (जिसकी असंगतता को एक अत्यन्त मूढ़ व्यक्ति भी समझ सकता है), वहां महर्षि दयानन्द इस आशीर्वाद को विद्यार्थी के लिए मानते हुए अर्थ करते हैं कि······ विद्यामिच्छो ! ते

(परेभ्यः) उत्कृष्टेभ्यः (गात्रेभ्यः) (शम्) सुखम् (अस्तु) (अवरेभ्यः) अस्थिभ्यः (मज्जभ्यः) (शम् उ अस्तु) (तन्वै) शरीराय (तव)।

अन्वय—हे विद्यामिच्छो ! यथा पृथिव्यादि तत्त्वं तव तन्वै शम् अस्तु परेभ्यः गात्रेभ्यः शम् उ अवरेभ्यः गात्रेभ्यः शम् अस्तु अस्थभ्यो मज्जभ्यः शम् अस्तु तथा स्वकीयैरुत्तमगुणकर्मस्वाभवैरध्यापकास्ते शंकरा भवन्तु।

भावार्थ—अत्र वाचकलु० यथा माता पित्रध्यापकोपदेशकैस्सन्तानानां दृढांगानि दृढ़ा धातवश्च स्युर्यैः कल्याणं कर्तुमर्हेयुस्तथाऽध्यापनीयमुपदेष्टव्यं च।

तात्पर्य यह है कि हे विद्या की इच्छा करने वाले ! पृथिवी आदि तत्त्व तेरे शरीर, तेरे ऊपर नीचे के अंग, अस्थि, मज्जा आदि सब के लिए सुखकारी हों तथा अपने उत्तम गुण कर्म स्वभाव के कारण अध्यापक तेरे लिए सुखशान्तिदायक हों।

भावार्थ—माता-पिता, अध्यापकों और उपदेशकों को ऐसा पढ़ाना और उपदेश करना चाहिए जिससे सन्तानों और विद्यार्थियों के अंग और धातुएं दृढ़ हों।

इस प्रकार मैंने यजुर्वेद के २३वें अध्याय के ६ मन्त्रों का तुलनात्मक अनुशीलन विचारशील पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है, जिनके अशुद्ध विनियोग के कारण महान् अनर्थ हो गया है। महर्षि दयानन्द ने इनका अश्व देवता नहीं माना। उनके अनुसार मन्त्र ३६ और ४२ का अध्यापक, मं० ४० और ४१ का प्रजा और मं० ४३ और ४४ का राजा देवता है। यदि कथित अश्व देवता मानने पर किसी का आग्रह हो तो भी 'वीर्यं वा अश्वः'' - शत० २. १. ४. २४ के अनुसार उनका अर्थ वीर्यवान् ब्रह्मचारी वा अध्यापक होने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। क्षत्रं वा अश्वः शत० १३. २. २- १५। वज्रो वा अश्वः प्राजापत्यः - तै० ३. ८ ४,२। इन्द्रो वा अश्वः कौ० १५-४ इत्यादि के अनुसार अश्व का अर्थ क्षात्रबल सम्पन्न वज्रधारी इन्द्र वा राजा हो ही सकता है। इसलिये उव्वट, महीधर, ग्रिफिथ आदि कृत इनके अर्थ वेदों की पवित्र शिक्षा के विरुद्ध, असंगत और उपहासास्पद हैं। महर्षि दयानन्द ने इनका शिक्षादिपरक जो उत्तम अर्थ किया है वह सर्वथा उपादेय है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की वेदार्थ-विषयक क्रान्ति

ऐसे समय में जन्म लेकर जब देश विदेशों में सर्वत्र वेद और वैदिक धर्म विषयक अज्ञान छाया हुआ था, जब भारत के बड़े बड़े विद्वान् भी वेदों के वास्तविक अर्थों से अनभिज्ञ होकर उनकी क्रियात्मक उपेक्षा कर रहे थे, जब वे वेदोंको सहस्रों देवी-देवताओं की पूजा का प्रतिपादक तथा जाति भेद, अस्पृश्यता, बाल विवाहादि तथा यज्ञों में पशु हिंसा आदि का समर्थक मानते थे, जब पवित्र वेदों का स्थान अधिकतर रामायण, महाभारत, भगवद्गीता, पुराणादि ने ले लिया था, महर्षि दयानन्द ने फिर वेदों की ओर चलो, वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं, वेदों का पढ़ना पढ़ाना, सुनना सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है—का सिंहनाद करके जनता में जो अद्भुत जागृति उत्पन्न कर दी, पवित्र वेद मन्दिर का द्वार वैदिक आदेशानुसार सब नर नारियों के लिए खोलने की जो उदारता दिखाई, वेदों की सार्वभौम, सार्वकालिक, युक्तियुक्त और वैज्ञानिक शिक्षाओं को जिस उत्तम रूप से जगत् के सम्मुख रखकर उस वेदभानु की किरणों से सर्वत्र व्याप्त अज्ञानान्धकार को छिन्न भिन्न करने का जो अत्यन्त अभिनन्दनीय कार्य किया, उसका किन शब्दों में वर्णन किया जाए? वैदिक ज्ञान प्रसार विषयक महर्षि दयानन्द के उपकार अत्यन्त महान् और अनुपम हैं, यदि ऐसा कहा जाए तो इसमें अणु मात्र भी अत्युक्ति न होगी। वेदों को केवल कर्मकाण्डपरक और यज्ञों में पशु हिंसादि प्रतिपादक समझ कर अच्छे अच्छे विचारक उनसे विमुख हो रहे थे। महर्षि ने वेदों का सर्वशास्त्र सम्मत महत्त्व बता कर उन्हें वेदाध्ययन में पुनः प्रवृत्त किया।

(१) महर्षि दयानन्द ने अत्यन्त प्रबल युक्तियों और प्रमाणों से मानव सृष्टि के प्रारम्भ में ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता को सिद्ध करते हुए अनेक कसौटियों से प्रमाणित किया कि ईश्वरीय ज्ञान वेद ही हैं जिनकी शिक्षाएं सर्वथा पवित्र, निष्पक्ष, सार्वभौम और युक्ति, तत्त्वज्ञान और विज्ञान सम्मत हैं।

(२) वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं और मानव सृष्टि के प्रारम्भ में प्रकाशित होने के कारण नित्य हैं। अतः उनमें अनित्य इतिहास नहीं हो सकता। वेदों में पाये जाने वाले वसिष्ठ, विश्वामित्र, अत्रि, जमदग्नि, काण्व इत्यादि शब्द व्यक्ति विशेष वाचक नहीं किन्तु गुणविशिष्ट व्यक्ति तथा पदार्थ सूचक हैं, जैसे कि प्राणो वै ऋषिः। (शत० ८. १. ६) प्रजापतिर्वै वसिष्ठः (कौषीतकी ब्रा० २५. २. २६. १५) प्रजापतिर्वै जमदग्नि (शत० १३. २. २. ४) श्रोत्रं वै विश्वामित्र ऋषिः (शत० ८. १. १. ६) मनो वै भरद्वाज ऋषिः (शत० ८. १. १. ६) प्राणो वा अंगिराः (शत० ६. १. २. २८) कण्व इति मेधाविनाम (निघ० ३. ५) इत्यादि आर्य वचनों से सिद्ध होता है।

(३) वेदों के शब्द यौगिक वा योगरूढ़ि हैं, केवल रुढ़ि नहीं जैसा कि नामान्याख्यातजानीति नैरुक्तः समयः। नामज धातुजमाह निरुक्ते, व्याकरण शकटस

च तोकम् ॥ (महाभाष्य) इत्यादि में बताया गया है । लौकिक संस्कृत के अनुसार रूढ़ि मानकर उनकी व्याख्या करना ठीक नहीं है । यौगिक होने के कारण अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, यम, मातरिश्वा, रुद्र, देव इत्यादि शब्द आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दृष्टि से अनेकार्थ वाचक हैं ।

(४) वेद विशुद्ध रूप से एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करने वाले हैं । अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुणादि शब्द (जैसे कि इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः इत्यादि मन्त्रों को उद्धृत करते हुए बताया गया है) प्रधानतया परमेश्वरवाचक हैं । आधिभौतिक क्षेत्र में वे ब्राह्मण, ऐश्वर्य सम्पन्न राजा, जीव, पुरोहित, अज्ञानान्धकार निवारक श्रेष्ठ पुरुष इत्यादि के वाचक भी हैं । ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र (बिजली) और प्रजापति (यज्ञ) ये ३३ तत्त्व प्रकाशादि दायक तथा लाभकारी होने के कारण वेदादिशास्त्रों में देव बताये गये हैं किन्तु उपास्य परमदेव एक परमेश्वर ही है । यज्ञ शब्द जिस यज धातु से बनता है उसके देवपूजा, संगतिकरण और दान ये तीन अर्थ हैं, जो अपने से बड़ों, बराबर स्थिति वालों और हीनों के प्रति कर्तव्य के सूचक हैं । अतः अपने और जगत् के कल्याण के लिए किया गया प्रत्येक शुभ कार्य यज्ञ कहलाता है । यज्ञों में पशुहिंसा सर्वथा वेद विरुद्ध है । यज्ञ के लिए वेदों में सैंकड़ों स्थानों पर अध्वर शब्द का प्रयोग पाया जाता है जिसका अर्थ ही अध्वर इति यज्ञ नाम ध्वरति हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः (निरुक्त २.७) इत्यादि यास्काचार्य कृत निरुक्तानुसार हिंसा रहित शुभ कर्म है । गौ को सर्वत्र वेदों में अघ्न्या, अदिति इत्यादि शब्दों से पुकारा गया है जिसका अर्थ सर्वथा अहन्तव्या होता है । गोघातक के लिए वेदों में "अन्तकाय गोघातम् (य० ३०.१८) यदि नो गांहंसि यद्यश्वं यदि पूरुषं तंत्वा सीसेन विध्यामो यथा नो सो अवीरहा" (अथर्व १.१६.४), इत्यादि मंत्रानुसार प्राण दण्ड तक का विधान है ।

(६) वेदों में अध्यात्म विद्या के अतिरिक्त भौतिक विद्याओं का भी बीज रूप में उपदेश है । ज्योतिष, आयुर्वेद, धनुर्विद्या, राजनीति विद्या, विज्ञानादि का मूल वेदों में विद्यमान है ।

महर्षि दयानन्द द्वारा अभिमत वेद विषयक ये मन्तव्य प्राचीन ऋषि मुनियों द्वारा सम्मत हैं और उनके समर्थन में सैंकड़ों प्रमाण प्रस्तुत किये जा सकते हैं किन्तु विस्तारभय से ऐसा न करके मैं महर्षि की वेद भाष्य शैली की विशेषता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना चाहता हूँ ।

महर्षि के वेद भाष्य की विशेषता के कुछ स्पष्ट उदाहरण :—

१. महर्षि दयानन्द की श्री सायणाचार्य, उव्वट, महीधरादि भाष्यकारों से विशेषता प्रदर्शित करने के लिए सबसे पूर्व मैं यजुर्वेद के रुद्राध्याय (अ० १६) के कुछ मन्त्रांशों को प्रस्तुत करता हूं ।

यजु० १६-२० में "स्तेनानां पतये नमो नमो निचेरवे परिचरायारण्यानां पतये नमः" और मं० २१ में "नमो वंचते परिवंचते स्तायूनां पतये नमः" इस प्रकार के शब्द आते हैं ।

काण्व संहिता अ० १७ में इनका भाष्य करते हुए श्री सायणाचार्य ने लिखा है...

स्तेना गुप्तचौरास्तेषां पालकाय नमः । अपहरणबुध्द्या निरन्तरं चरतीति निचेरुः । परित आपणवाटिकादौ हरणेच्छया चरतीति परिचरः । तस्मै नमः । अरण्यानां पतये नमः । रुद्रो लीलया चौरादि रूपं धत्ते । यद्वा रुद्रस्य जगदात्मकत्वाच्चौरादयो रुद्रा एव ध्येयाः ॥

वंचति प्रतारयति वंचन् । परि सर्वतो वंचति परिवंचन् तस्मै नमः । स्वामिन आप्तो भूत्वा व्यवहारे कथंचित् तदीयं धनम् अपहृते तद् वंचनम् । सर्वं व्यवहारे धनापह्नुः परिवंचनम् । गुप्तचौरा द्विविधाः । रात्रौ गृहे खातानां द्रव्यहर्तारः । अहर्निशमज्ञाता हर्तारश्च पूर्वे स्तेना उत्तरे स्तायवः । तेषां पतये नमः । तस्कराः प्रकटचौरास्तेषां पतये नमः । क्षेत्रादिषु धान्याय हर्तारः मुष्णन्तस्तेषां पालकाय नमः ॥

सायणीय काण्व संहिता भाष्यम् । अ० १७ पृ० ११६

उव्वट और महीधर का भाष्य भी इन मंत्रों का इसी प्रकार का है । महीधर ने तो सायणाचार्य की अक्षरशः नकल मारी है । इन तीनों भाष्यकारों ने मन्त्रों में आए हुए स्तेन, निचेरु, परिचरन्, मुष्णन् आदि शब्दों का चोरपरक अर्थ किया है । स्तेन, गुप्त चोर, चुराने की इच्छा से निरन्तर विचरण करने वाले निचेरु, बाजार, वाटिका आदि में चारों ओर चुराने की इच्छा से विचरने वाले परिचर, स्वामी का आप्त वा विश्वास पात्र बनकर व्यवहार में कभी उनके धन का गोलमाल कर देना वा उसे छुपा देना, वचन और सभी व्यवहारों में धन का इस प्रकार वंचन परिवंचन ऐसे चोरी करने वाले रुद्र को नमस्कार हो । यह इन भाष्यकारों के भाष्य का तात्पर्य है । यह ईश्वर पर कितना बड़ा कलंक है, पर सायणाचार्य और महीधर को यह लिखते हुए लज्जा भी न आई कि रुद्रो लीलया चौरादि रूपं धत्ते यद्वा रुद्रस्य जगदात्मकत्वाच्चौरादयो रुद्रा एव ध्येयाः ॥ अर्थात् रुद्र (ईश्वर) लीलावश चोर आदि का रूप धारण कर लेता है अथवा क्योंकि रुद्र ही जगद् रूप है इसलिए चोर आदि को भी रुद्र के रूप में ही जानना चाहिए । ग्रिफिथ ने अपने अंग्रेजी अनुवाद में इन्हीं भाष्यकारों का अन्धानुसरण करते हुए लिखा है......

16.20 Homage to the Lord of thieves, Homage to the gliding robber, to the roamer.

16.21 Homage to the Cheat, to the arch-deceiver, to the lord of stealers homage.

(The Texts of the White Yajurveda, Translated by Griffith P. 170).

अर्थ वही है जो ऊपर दिया गया है कि चोरों को, ठगों को, बड़े भारी ठगों को हमारा नमस्कार हो ।

इस पर पाद टिप्पणी देते हुए ग्रिफिथ ने लिखा है......

Thieves—robbers, assuming their forms in sports, says Mahidhara.

अर्थात् रुद्र ठग, चौरादि का रूप लीला से धारण करता है । ऐसा महीधर कहता है । रुद्रो लीलया चौरादि रूपं धत्ते ।

इन असंगत अर्थों के साथ जिनको बुद्धिमान् विचारशील कभी स्वीकार नहीं कर सकते (जब तक कि वे कई पाश्चात्यों के समान वेदों को गडरियों के गीत वा बच्चों की बिलबिलाहट न मानते हों) हम महर्षि दयानन्द के भाष्य पर दृष्टिपात करते हैं तो उनकी सूक्ष्म बुद्धि और आर्ष दृष्टि को देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं । वे स्तेन,

निचेरु, परिचर, स्तायु, मुष्यन्, वंचन्, परिवंचन् इत्यादि शब्दों का अनेक प्रकार के चोर और ठग परक अर्थ करते हैं, किन्तु उनके सम्बन्ध में प्रयुक्त नमः का अर्थ सत्कार वा सम्मान बोधक न लेकर नम इति वज्रनाम (निघ० २-२०) के अनुसार वज्र वा दण्ड करते हैं। ऐसे चोरों और ठगों की अन्य भाष्यकारों के अर्थानुसार इन्हें स्वयं रुद्र (ईश्वर) वा ईश्वर रूप मानकर नमस्कार न किया जाय, किन्तु उनपर वज्र प्रहार किया जाय अर्थात् कठोर दण्ड दिया जाय। स्तेयकर्म कर्तृणां पालयित्रे (नमः) वज्र प्रहरणम्। (नमः) वज्रप्रहारः (वंचते) छलेन परपदार्थानां हर्त्रे (परिवंचते) सर्वत्र कापट्येन वर्तमानाय (स्तायूनाम्) चौर्येण जीवतां (पतये) स्वामिने (नमः) वज्रादिशस्त्रप्रहरणम्।

इस प्रकार शब्दार्थ देकर भावार्थ में महर्षि दयानन्द ने लिखा है कि :—

"राजजनैः कपट व्यवहारेण छलयतां दिवारात्रौ चानर्थकारिणां निग्रहं धार्मिकानां च पालनं सततं विधेयम्"।

अर्थात् राजपुरुषों को चाहिए कि कपट व्यवहार से छलने और दिन वा रात में अनर्थ करने वालों को रोक के धर्मात्माओं का निरन्तर पालन करें।

नमोऽश्वेभ्यः (१६-२४) नमः श्वभ्यः (१६-२८) इत्यादि में अश्वों और कुत्तों के लिए प्रयुक्त "नमः" का अर्थ नमस्कार व सम्मान अन्य भाष्यकारों की तरह न करके महर्षि दयानन्द नमः इत्यन्न नाम (निघ २-७) के अनुसार अन्नपरक सुसंगत अर्थ किया है कि इन घोड़े कुत्ते आदि को अन्न दिया जाय। (ग्रिफिथ ने भी इन सायणाचार्य उव्वट, महीधरादि का अन्धानुसरण करते हुए Homage to horses, homage to dogs ऐसा ही असंगत अर्थ कर दिया है)। नमः इत्यन्ननाम (निघं० २-७) वैदिक कोष के अनुसार जब नमः का अर्थ अन्न भी है तो क्यों न उसको मानकर मन्त्रों का संगत, युक्तियुक्त अर्थ किया जाय ?

रुद्र के भी इन भाष्यकारों की तरह सर्वत्र ईश्वरपरक अर्थ न करके जिसकी संगति इस अध्याय के अनेक मन्त्रों में बिल्कुल ही नहीं लगती, क्योंकि वहां बहुवचन में रुद्र का असंख्याताः सहस्राणि ये रुद्रा अभिभूम्याम् (यजु० १६-५४) इत्यादि का प्रयोग है और उनको असंख्यात कहा गया है। प्रकरणानुसार भिन्न २ अर्थ भिन्न २ व्युत्पत्ति के अनुसार रुद्र शब्द को अन्य वैदिक शब्दों की तरह यौगिक मानकर महर्षि दयानन्द ने किए हैं, यथा...

१—रोदयति दुष्टान् दण्ड प्रदानेनेति रुद्रोन्यायकारी परमेश्वरः
२—रोदयति शत्रूनिति रुद्रो महावीरः —— महान् वीर
३—रोदयति दुष्टानिति रुद्रो न्यायाधीशः —— न्यायाधीश
४—रोदयति धनिकान् इति रुद्रश्चौरः —— चोर
५- रुद्रं—ज्ञानं राति ददातीति रुद्र उपदेशकः —— उपदेशक
६—रुत् —— दुःखं द्रावयतीति रुद्रो वैद्यः —— वैद्य
७—रुत् ——रोगं राति ददातीति रुद्रो रोगोत्पादकः कृमिः —— रोगजनक कृमि

इस प्रकार ये ७ अर्थ किए हैं जिनकी अच्छी संगति लग जाती है। "बुद्धि पूर्वा वाक्यकृति र्वेदे" के अनुसार मन्त्रों की बुद्धिपूर्वक संगति लगाना ही विद्वानों का कर्तव्य है।

अब मैं शिक्षा विषयक २ मंत्रों को प्रस्तुत करता हूँ, जिनके सायणाचार्य, उव्वट, महीधरादि ने पशुहिंसा परक अर्थ करके महान् अनर्थ किया और वेदों को विचारशील जनता की दृष्टि में गिराने का अक्षन्तव्य अपराध किया है......

यजुर्वेद के छठे अध्याय में निम्नलिखित दो मंत्र आते हैं—

वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि चक्षुस्ते शुन्धामि,
श्रोत्रं ते शुन्धामि नाभिं ते शुन्धामि मेढ्रं ते शुन्धामि।
पायुं ते शुन्धामि चरित्रांस्ते शुन्धामि। (यजु० ६-१४)

मनस्त आप्यायतां वाक् आप्यायतां प्राणस्त आप्यायतां चक्षुस्त आप्यायतां श्रोत्रं त आप्यायताम्। यत् ते क्रूरं यदास्थितं तत्त आप्यायतां तत्ते शुध्यतु शमहोभ्यः। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनं हिंसीः॥

(यजु० ६-१५)

काण्वसंहिता भाष्य में श्री सायणाचार्य ने इन दोनों मन्त्रों को मृत पशु के अंगों को यजमान पत्नी द्वारा जल से धोने पर विनियोग मानकर लिखा है—

पशु सम्बन्धीनि प्राणस्थानानि मुखादि छिद्राणि पत्नी तत्तन्मन्त्रेण शोधयति। वाचं ते शुन्धामीति। हे पशो-ते वच सम्बन्धीनी (वाचम्) वागिन्द्रियमहं (शुन्धामि) (शुभं करोमि) तथा त्वदीयं पंचवृत्तिक प्राणं शुन्धामि तथा चक्षुरिन्द्रियम्, श्रोत्रियेद्रियं नाभिच्छिद्रं गुह्यन्द्रियं चरित्रान् चरणसाधनभूतान् पादान् एवं विधानि त्वदीयानि सर्वेन्द्रियाणि शुन्धामि। (काण्व संहितायाः सायणाचार्य भाष्ये पृ० ८४)

अर्थात् मृत पशु के मुखादि अंगों को जल से शुद्ध करके यजमान पत्नी कहती है कि हे पशो, मैं तेरी वाणी, प्राण, आंख, कान, गुह्येन्द्रिय और पैरों को शुद्ध करती हूँ। यही अर्थ उव्वट और महीधर ने भी किया है। उव्वट ने अपने भाष्य में लिखा है :—

"पशोः प्राणान् शुन्धयति पत्नी यथा लिंगम्, वाचं ते शुन्धामि वाचं तव शोधयामि उदकेन - उन्दनेन एवं सर्वत्र व्याख्येयम् मेढ्र शब्देन शिश्नमुच्यते। चरित्राः पादाः परिचरन्ति गच्छन्त्येभिरिति चरित्रशब्देन पादा उच्यन्ते।"

महीधर ने अपने भाष्य में पशु से तात्पर्य यहाँ मृत पशु का है इसको स्पष्ट शब्दों में लिख दिया है—

"पत्नी पशु समीप उपविश्य मृतस्य पशोः प्राणान् मुखादीन्यष्टौ प्राणायतनानि प्रतिमंत्रदेवत्यानि। हे पशो, अहं ते (तव) वाचं वागिन्द्रियं शुन्धामि (शोधयामि) एव-मग्रेऽपि प्राणं प्राणवायुं, प्राणेन्द्रियं चक्षुरिन्द्रियं श्रोत्रेन्द्रियं नाभिं नाभिछिद्रं (मेढ्रम्) लिंगं (पायुम्) गुदं चरन्ति गच्छन्ति एभिरिति चरित्राः पादाः, एवं त्वदीयानि सर्वेन्द्रियाणि शुन्धामि।"

(शुक्ल यजुर्वेद संहिता उव्वट महीधर भाष्य संवलिता, निर्णय सागर, बम्बई पृ० १०२)

देखिये यह कितनी मूर्खतापूर्ण असंगत बात है कि मृत पशु को सम्बोधन करके कहा जाय कि मैं तेरी वाणी, प्राण, आँख, कान तथा चरित्रों को पवित्र बनाती हूँ।

चरित्र का अर्थ इन भाष्यकारों ने पैर कर दिया है अन्यथा इसकी असंगतता इनको स्वयं खटक जाती। ग्रिफिथ ने भी इन मन्त्रों का ऐसा ही अंग्रेजी अनुवाद किया है—

"The matron wipes each organ of the animal as she recites the appropriate clause of the text. I cleanse thy voice, thy breath and thy rump. (P. 54).

अब इस (६-१४) मंत्र का महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अर्थ देखिए। उन्होंने कात्यायन के नाम से प्रचलित इस तथा अन्य विनियोगों को अशुद्ध और अनुचित समझ कर उपेक्षा की है। इसमें संदेह नहीं कि ऐसे असंगत ऊटपटांग विनियोग ही महान् अनर्थ के कारण हुए हैं और उन्होंने भाष्यकारों को मार्गभ्रष्ट किया है। और निम्न प्रकार ६-१४ का भाष्य किया है।

अथ कथं ता गुरुपत्नीः गुरवश्च यथायोग्य शिक्षया स्वान्तः वासिनः सद्गुणेषु प्रकाशयन्तीत्युपदिश्यते—वाचं ते शुन्धामि प्राणं ते शुन्धामि।

हे शिष्य ! विविध शिक्षाभिस्तेऽहं वाचं शुन्धामि ते प्राणं शुन्धामि ते चक्षुः शुन्धामि - निर्मलीकरोमि ते नाभिं निर्मलीकरोमि ते मेढ्रम् उपस्थेन्द्रियं ते पायं (गुदेन्द्रियम्) शुन्धामि चरित्रान् व्यवहारान् ते शुन्धामि निर्मलीकरोमि।

भावार्थ :—गुरुभिर्गुरुपत्नीभिश्च वेदोपवेद वेदांगो पांगशिक्षया देहेन्द्रिया क्रियान्तःकरणात्ममनः शुद्धि शरीर पुष्टि प्राणसन्तुष्टीः प्रदाय सर्वे कुमाराः सर्वाः कन्याश्च सद्गुणेषु प्रवर्तयितव्या इति ॥ (महर्षि दयानन्द भाष्ये यजु० प्रथम खण्डे)

अर्थात् वे गुरुपत्नी और गुरुजन यथा योग्य शिक्षा से अपने अपने विद्यार्थियों को अच्छे अच्छे गुणों में कैसे प्रकाशित करते हैं। यह मंत्र में कहते हैं :—

हे शिष्य, मैं विविध शिक्षाओं से तेरी वाणी को शुद्ध अर्थात् सद्धर्मानुकूल बनाता हूं। तेरे प्राण को शुद्ध करता हूं, तेरे नेत्र को शुद्ध करता हूं, तेरे कानों को शुद्ध करता हूँ। तेरी नाभि को पवित्र करता हूं। तेरी उपस्थेन्द्रिय को पवित्र करता हूं। तेरी गुदेन्द्रिय को पवित्र करता हूँ। तेरे समस्त व्यवहारों को पवित्र शुद्ध अर्थात् धर्म के अनुकूल करता हूं। तथा गुरु पत्नी पक्ष में सर्वत्र तेरे (कन्या के) सब अंगों और व्यवहारों को शुद्ध करती हूं। यह योजना करनी चाहिए।

भावार्थ :- गुरु और गुरु पत्नियों को चाहिए कि वेद, उपवेद तथा वेदांगों उपांगों की शिक्षा से मेढ्, इन्द्रिय, अन्तःकरण और मन की शुद्धि, शरीर की पुष्टि तथा प्राण की संतुष्टि देकर समस्त कुमार और कुमारियों को अच्छे अच्छे गुणों में प्रवृत्त करावें।

इस प्रकार सायणाचार्य, उव्वट, महीधरादि भाष्यकारों तथा उनके अनुयायी पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र और ग्रिफिथ आदि ने जहां मृत पशु को सम्बोधन करके उसके अंगों की शुद्धि परक इस मंत्र की नितांत असंगत और उपहासजनक व्याख्या की है। वहां महर्षि दयानन्द ने शिक्षा का उद्देश्य सब अंगों और चरित्र की पवित्रता है यह उत्तम शिक्षा इस मंत्र में दी गई है, ऐसा बताया है। इन दोनों प्रकारके अर्थों में से वेदों को सर्वसम्मत गौरव की दृष्टि से (जिसे सायणाचार्य, उव्वट, महीधरादि सभी भारतीय भाष्यकार स्वीकार करते हैं और वेदों को अपौरुषेय ईश्वरीय ज्ञान तक मानते हैं) कौन

सा अर्थ उपादेय है इसका निर्णय मैं निष्पक्षपात विचारशील विद्वानों पर ही छोड़ता हूँ।

अब मैं इससे अगले मन्त्र यजु० ६-१५ पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार प्रस्तुत करना चाहता हूं जिसका उल्लेख पूर्व मन्त्र के साथ ही किया जा चुका है और जिसका प्रारम्भ "मनस्त आप्यायतां वाक् त आप्यायतां प्राणस्त आप्यायताम्" से होता है।

काण्व संहिता भाष्य अ० ७ में सायणाचार्य ने इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है।

पत्न्या पश्ववयवजातं येनोदकेन शोधितं तेनोदकशेषेणाध्वर्यु यजमानौ पशोः शिर आद्यगानुक्रमेण सिञ्चेताम् ॥ अर्थात् पत्नी ने पशु के अवयवों को जिस जल से साफ किया था उस जल के शेष से अध्वर्यु और यजमान पशु के शिर आदि अंगों का क्रम से सिंचन करें।

पाठस्तु - मनस्त आप्यायताम् श्रोत्रं त आप्यायताम् इति
हे पशो - ते त्वदीयं मनः आप्यायताम् - शाम्यतु एवं त्वदीयानि वाक्
प्राण चक्षुः श्रोत्राणि शाम्यन्त्वित्यर्थः
हे पशो; ते (तव) यत् बन्धनं मुखनिरोधादिकं क्रूरम् अस्माभिः कृतं
यच्च छेदादिकम् (आस्थितम्) कर्तुम् उपस्थितं तत् (आप्यायताम्)
शाम्यतु किंच तत् सर्वं (निष्ट्यायताम्) संहतं भवतु। तत् सर्वं शुद्धं
भवतु। पशोर्जघन भागमध्वर्यु यजमानौ अभिषिञ्चेताम्। पाठस्तु शमहोभ्यः दिवसादिकाल विशेषेभ्यः शम् सुखम् अस्माकं पशोर्वा भूयादिति (सायणीय काण्व संहिता भाष्ये पृ० ८४-८५)

अर्थात् हे पशो, तेरा मन, तेरी वाणी, प्राण, आंख, कान इत्यादि सब शान्त हों। हमने तेरे प्रति बांधना, मुख का निरोध वा बंद करना इत्यादि जो क्रूर कार्य किया है तथा अब भी तेरे अंगों को जो हम काटने लगे हैं यह सब शांत हो जायें। सदा हमारा और पशु का सुख हो पूर्वप्रसवतां स्वधितिं तृणस्योपरि स्थापयित्वा तया प्रसिद्धया स्वधित्या नाभिं छिन्द्यात्। पाठस्तु स्वधिते मैनं हिंसीरिति। एवं पशुं मा हिंसीः।

(पृ० ८५)

अर्थात् तब तृण के ऊपर स्वधिति वा छुरी को रखकर उससे पशु की नाभि को काटे। कहे कि हे छुरी, इस पशु की हिंसा न कर, इसे कष्ट न पहुंचा इत्यादि। उव्वट और महीधर ने भी मन्त्र का इसी प्रकार का अर्थ किया है। उव्वट ने लिखा है:—

'अध्वर्यु यजमानौ पशुमाप्याययतः मनस्ते (तव) आप्यायताम् हे पशो, एवं वागादीन्यपि व्याख्येयानि अंगानि। यत् ते क्रूरम् यत् यत् तव हे पशो। (क्रूरम्) विकृतम् अशांतं वा यच्चावयव रूपम् आस्थितम् अध्यवसितं शमित्रा यत्र स्थितः शमितेत्यर्थः। तत् आप्यायताम् निष्ट्यायताम् यत् च संघाते संहतं भवतु। तत् ते शुध्यतु। जघनेन पशुम् उदकं निनयतः (शम् अहोभ्यः) शं सुखम् अहरादिभ्य' काल-विशेषेभ्यः अस्माकम् अस्त्विति शेषः पशोर्वो अहरादिभ्यः सुखं भवतु। अग्रे नाभिं तृणं निदधाति। ओषधे त्रायस्व व्याख्यातः स्वधिते मैनं हिंसीः।

महीधर ने सायणाचार्य की ही पूरी नकल करके अन्त में लिखा है कि प्रज्ञा-तया प्रस्तुतया कृत चिह्नया घृताक्तया असिधारया । अभि निधाय तृणोपर्यसिधारां निधाय तूष्णीं सतृणमुदरत्वचं छिन्द्यात् एवं पशुं स्वधिते मा हिंसीः ।

(शुक्ल यजुर्वेद संहिता उव्वट महीधर भाष्य संवलिता पृ० १०३)

यह सारी सायणाचार्य के भाष्य की ही नकल है । अन्तिम भाग में कहा है कि तृण के ऊपर तलवार की धार को रखकर पशु के पेट की त्वचा को काटे और छुरी से कहे कि इस पशु की हिंसा न कर ।

इस प्रकार सायणाचार्य, उव्वट और महीधर का मन्त्रार्थ कितना असंगत, सामान्य बुद्धि और परस्पर विरुद्ध है यह कहने की आवश्यकता नहीं । वस्तुतः व्याकरण की दृष्टि से भी यह अर्थ सर्वथा अशुद्ध है क्योंकि जिस आप्यायताम् क्रिया का प्रयोग इस मन्त्र में छः बार किया गया है वह आङ्पूर्वक 'ओप्यायी वृद्धौ' इस धातु से बनता है और इसका चारों ओर से भलीभांति बढ़े, ऐसा अर्थ होना चाहिये किन्तु उसकी असंगतता अत्यधिक स्पष्ट होने के कारण प्रतीत होता है कि भाष्यकारों को भी स्वयं खटकी और उन्होंने आप्यायताम् का अर्थ वर्धताम् या बढ़े के स्थान में शाम्यतु वा शान्त हो यह कर दिया पर इसकी असंगतता उससे कुछ भी कम नहीं हो पाई । यदि पशु का बांधना, उसका मुख बन्द करना आदि सचमुच क्रूर कर्म हैं जैसा कि इस मन्त्र के भाष्य में सायणाचार्य, उव्वट, महीधरादि इन सब भाष्यकारों ने माना है तो ऐसा क्रूर कर्म क्यों किया ? ऐसा क्रूर कर्म करके फिर कहना कि वह शान्त हो जाय और पशु को सुख मिले, कितना असंगत तथा उपहासजनक है ? बेचारे पशु की नाभि को छुरी अथवा महीधर के भाष्यानुसार तलवार की धार से काटते हुए कहना कि तू इस पशु की हिंसा मत कर कितना मूर्खतापूर्ण है?

महर्षि दयानन्द कृत अर्थ को देने से पूर्व ग्रिफ़िथ के अंग्रेजी अनुवाद को भी उद्धृत कर देना अनुचित न होगा, क्योंकि महीधरादि के अनुसार अनुवाद करते हुए भी उसने आप्यायताम् का अनुवाद धात्वर्थ के अनुसार Increase in fulness किया है । ग्रिफ़िथ ने भी यह भूल अवश्य की है कि इसको पशुहिंसा परक ही मान कर निम्न अनुवाद किया है जिसकी असंगतता बहुत ही स्पष्ट है:—

Let thy mind, voice and breath increase in fulness, thine eye be fuller and thy ear grow stronger, whatever there is in thee sore or wounded, may that be filled for thee, clean and united. (The texts of the Yajurveda. Chap. VI. Page 54)

अब हम महर्षि दयानन्द कृत भाष्य पर दृष्टिपात करते हैं । महर्षि मन्त्र का भाष्य करते हुए लिखते हैं:—

'हे शिष्य, मदीयशिक्षणेन तव मनः आप्यायताम् सत्कर्मानुष्ठानेन वर्धताम् ते प्राण आप्यायताम् । ते श्रोत्रम् आप्यायताम् । यत् ते (क्रूरम्) दुश्चरित्रम् निश्चितं तत् (आप्यायताम्) इत्थं ते सर्वं शुद्धं भवतु । (अहोभ्यः) दिनेभ्यः ते शम् अस्तु । अथ स्वस्वामिनि शिष्यलालनापरं गुरु पत्नी वाक्यम् । हे (औषधे) विज्ञानिवराध्यापक औषो विज्ञानं धीयते यस्मिन् तत्सम्बुद्धौ अत्र ओष गतौ इत्यस्माद् गतिरत्र विज्ञानं

गृह्यते । त्वम् एवं शिष्यं त्रायस्व मा हिंसीः स च स्वपत्नीं प्रत्याह हे (स्वधिते) अध्यापिके स्त्रि, त्वम् एनां शिष्यां त्रायस्व मा हिंसीः ।'

भावार्थः—सत्कर्मानुष्ठानेन सर्वस्योन्नतिर्भवत्यतः सर्वैर्मनुष्यैर्गुरु शिक्षया सत्कर्मानुष्ठेयम् । दम्पती परस्पर मुपदिशेताम् हे पते, भवानयं शिष्यो यथा सद्यो विद्वान् स्यात् तथा प्रयतताम् । हे धर्मपत्नि, भवती यथेयं कन्या तूर्णं विदुषी भवेत् तथा विदधातु इति ।

तात्पर्य यह है कि गुरु शिष्यों को सब प्रकार से उन्नत करने तथा उनकी प्राण, वाणी, मन आदि की शक्तियों को विकसित करने के लिये सदा प्रयत्न करते रहें । अध्यापिकाएं भी अपनी शिष्याओं के प्रति इसी कर्तव्य का पालन करें । यह सम विकास शिक्षा का मुख्य ध्येय है । कहां सायणाचार्य, उव्वट, महीधरादि के नितान्त असंगत, पशुहिंसा प्रतिपादक कुत्सित अर्थ और कहां महर्षि दयानन्द का शिक्षा के उद्देश्य का प्रतिपादक नितान्त सर्वोपयोगी अर्थ । इसमें आकाश पाताल का अन्तर है ।

अन्य भी सैकड़ों मन्त्रों को उद्धृत करके दिखाया जा सकता है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के भाष्य में कितना गाम्भीर्य है । कितनी उदात्त और विशाल आर्ष दृष्टि है, जिसका इन अन्य भाष्यकारों के व्याकरणादि विषयों के विद्वान् होने पर भी योगी और ऋषि न होने के कारण अभाव पाया जाता है, जिससे अनेकों स्थानों पर उन्होंने अर्थ का महान् अनर्थ कर दिया है, और वेदों को विचारशील जनता की दृष्टि में उपहासास्पद बना दिया जैसा कि ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है । मैंने इस विषय के बहुत से प्रमाणों का संग्रह किया है और एक विस्तृत निबन्ध लिख रहा हूं अतः स्थानाभाव से अभी इसका अधिक विस्तार करना उचित नहीं प्रतीत होता । गणानां त्वा गणपतिं हवामहे । इत्यादि यजु० अ० २३ के अनेक मन्त्रों का जो अनर्थ महीधरादि ने किया है उसका निर्देश महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में किया है इसलिए उस विषय का मैंने यहां उल्लेख करना आवश्यक नहीं समझा यद्यपि वह स्वयं अत्यन्त आवश्यक है ।

महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य की कुछ मूल विशेषताएं:—

१. वेदों के विषय में इस सर्वशास्त्र सम्मत सिद्धान्त का कि वे ईश्वरीय ज्ञान रूप तथा सार्वभौम सर्वजनोपयोगी शिक्षाओं का भण्डार है, महर्षि के भाष्य से ही पूर्णतया समर्थन होता है ।

२. बुद्धि पूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे, इस वैशेषिक शास्त्र के वचनानुसार महर्षि के भाष्य में जितनी बुद्धिसंगत व्याख्या दिखाई देती है तथा अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि शब्दों के विशेषणादि को ध्यान में रखते हुए आध्यात्मिक, आधिभौतिक वा आधिदैविक दृष्टि से अनेकार्थपरक व्याख्या हुई है, वह अन्य भाष्यों में दृष्टिगोचर नहीं होती ।

३. प्रत्येक मन्त्र के भाष्य के प्रारम्भ में विषय का संक्षेप से निर्देश और आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक अनेकार्थ सूचक पदार्थ देकर सर्वसाधारण के लाभार्थ भावार्थ का निर्देश यह महर्षि दयानन्द के भाष्य में ही पाया जाता है, जिससे

अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार सब लाभ उठा सकते हैं ।

४. अनेक मन्त्रों की पारमार्थिक और व्यावहारिक अथवा आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक व्याख्या महर्षि भाष्य में श्लेषालंकार का आश्रय लेकर पाई जाती है, जिसको 'त्रयो ऽर्था: सर्व वेदेषु' आदि द्वारा श्री आनन्दतीर्थादि आचार्यों ने भी स्वीकार किया था ।

५. वेद में विविध विद्याओं का मूल पाया जाता है । इस बात की पुष्टि महर्षि दयानन्द के भाष्य में जितनी उत्तमता से पाई जाती है उतनी अन्य भाष्यों में नहीं । उनमें अधिकतर यज्ञ और उस पर भी पशु हिंसात्मक यज्ञ परक ही व्याख्या की गई है । सायणाचार्य की तो मूल में ही भ्रांति पाई जाती है । जब काण्व संहिता भाष्य के उपोद्घात में लिखते हैं कि:—

'तस्मिंश्च वेदे द्वौ काण्डौ, कर्मकाण्डो ब्रह्मकाण्डश्च बृहदारण्यको ग्रन्थ: ब्रह्मकाण्डस्तद् व्यतिरिक्तं शतपथ ब्राह्मणं संहिता इत्यनयोर्ग्रन्थयो: कर्मकाण्डत्वम् । तत्रोभयत्राग्निहोत्र दर्शपौर्णमासादि कर्मण एव प्रतिपाद्यत्वात् ।

(सायणाचार्य कृते काण्व संहिता भाष्योपोद्घाते)

अर्थात् वेद में दो काण्ड हैं । कर्मकाण्ड और ब्रह्मकाण्ड; बृहदारण्यक ब्रह्मकाण्ड है; उसके अतिरिक्त सारा शतपथ और संहिता कर्मकाण्ड है । क्योंकि इनमें अग्निहोत्र, दर्श, पौर्णमासादि कर्म का प्रतिपादन है । इस मौलिक भ्रांति का परिणाम यह हुआ कि श्री सायणाचार्य वेदों के सार्वभौम उदात्त अर्थों तक न पहुंच सके और न उन में विविध विज्ञानों और आध्यात्मिक तत्त्वों का पता लगा सके और केवल यज्ञपरक अर्थ करने के लिए उन्हें साधारण शब्दों को भी संकुचित अर्थ में लेना पड़ा । उदाहरणार्थ—'ऋग्वेद १०, ४, १ में 'इयक्षवे पूरवे प्रत्न राजन्' पाठ आता है । पुरुरिति मनुष्यनाम (निघं. २. ३) किन्तु सायणाचार्य उसका अर्थ मनुष्याय यजमानाय कर देते हैं । सचेतसो यं प्रणयन्त मर्ता: ऋ० १०, ४, ५ । मर्ता: का अर्थ सायणाचार्य मर्ता:=मनुष्या ऋत्विज: कर देते हैं । ऋ० १० २० ५ में पाठ है जुषद् हव्या मानुषस्य, सायणाचार्य मानुषस्य का अर्थ यजमानस्य कर देते हैं । ऋ० ६, ६६, ५ में मनीषिण: पाठ है । सायणाचार्य उसका अर्थ मेधाविनो यजमाना: कर देते हैं । ऋ० ६, ६६, ८ में नृभि: पाठ आता है । सायणाचार्य उसका अर्थ कर्मनेतृभि: ऋत्विग्भि: कर देते हैं । ऐसे ही सैंकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं ।

महर्षि दयानन्द यज्ञ को ही स्वयं अति विस्तृत अर्थ में लेते हैं जिसमें सब शुभकर्मों का समावेश हो जाता है और मनुष्या:, नरा:, नृभि: इत्यादि का अत्यधिक विशाल अर्थ करते हैं । उन्हें केवल बाह्य यज्ञ तक सीमित नहीं रखते ।

श्री सायणाचार्य के इस प्रकार वेदों के केवल यज्ञपरक अर्थ करने का जो भयंकर परिणाम हुआ और होता है उसका काशी की पंडित सभा के भूतपूर्व प्रधान गोपालदत्त जी शास्त्री दर्शन केसरी ने वेदवाणी, काशी के द्वितीय विशेष वेदांक सन् १९५३ में निम्न शब्दों में अपने अनुभव के आधार पर वर्णन किया । उन्होंने लिखा था :—

आज इन केवल यज्ञ मात्र परक अर्थ करने वाले सायणाचार्य आदि भाष्यकारों के भाष्य पढ़नेवालों को वेद के प्रति कितनी अनास्था होती जाती है इसके दो उदाहरण मुझे ज्ञात हैं ।

स्वर्गिय बा० शिवप्रसाद जी गुप्त (काशी) वेद पर बड़ी आस्था रखते थे । उन्होंने बड़ी श्रद्धा के साथ सायणाचार्य का किसी विद्वान् से आदि अन्त तक पाठ कराया और स्वयं भी वहां नित्य नियम से बैठकर सुनते रहे । उसी अवसर पर एक रोज मैं वहां गया तो उन्होंने हाथ जोड़कर हंसते हुए मुझे कहा कि शास्त्री जी महाराज, पहले ही अच्छा था कि मैंने वेद का अर्थ नहीं सुना था । जब से मैंने सायणाचार्य का वेदार्थ सुना तब से तो मेरी वेद पर अनास्था हो गई है ।

(वेदवाणी नव० सन् १९५३)

दूसरा उदाहरण हमारे स्वर्गीय गुरु महामहोपाध्याय पूज्यपाद पं० अन्नदाचरण तर्क चूड़ामणि जी महाराज हैं । उन्होंने एक बार दर्शन पढाते समय प्रसंगत: कह दिया कि वेद के संहिता भाग में क्या रखा है ? इन्द्र की स्तुति और वरुण की स्तुति ही तो भरी पड़ी है । सार तो उपनिषदों की श्रुतियों में है, जिस पर वेदव्यास जी ने विचार किया है । देखा आपने सायणाचार्य और महीधराचार्य के भाष्य के अध्ययन का यही तो फल निकलता है । इसी कारण मैंने कहा है कि सायणाचार्य ने जहां वेदार्थ करके जगत् का उपकार किया है वहां उन्होंने केवल यज्ञ मन्त्र परक अर्थ करके बड़ा भारी अपकार भी किया है ।

(वेदवाणी सन् १९५३)

महान् योगी और विद्वान् श्री कपाली शास्त्री जी ने अपने ऋग्वेद के सिद्धाञ्जन नामक भाष्य की भूमिका में श्री सायणाचार्य के भाष्य के विषय में ठीक ही लिखा है कि :—

"सायणीयं भाष्यं न चेदभविष्यत् अन्धकार बन्धुरो दु:खगाह एवाभविष्यद् वेद शब्द समुदायोऽस्माकम् । तस्मात् प्रशंसनीय: कृतज्ञतया प्रयोजनगरिमा परन्तु याज्ञिक पारम्यं प्रदर्शयितुं प्रवृत्तेऽस्मिन् व्याख्याने छिद्रबहुल: स्वप्रयोजनस्यापि अनावश्यक: अनृजु: पन्था: स्फुटास्फुटरहस्यार्थमन्त्रेषु कर्म परतया व्याख्यानाय अवलम्बित: । अथ किं फलितम् । वेदपावनताया: प्रतिष्ठैव निर्मूलिता अध्यात्म तत्त्व देवता स्वरूपसाक्षात्कार आदि बहुरहस्य निक्षेपो वेदराशिरिति विश्वजनीन विश्वासस्य निराधारता । नेह अध्यात्म नि:श्रेयसादिक द्रष्टव्यम् तत्तु वेदान्ताख्यासु उपनिषत्सु । मन्त्रात्मके मूलवेदे कर्म साधनमेव लक्षणीयं येन विविधं धनं बलं प्रजा: पशव: गवाश्वादय: पुष्टिस्तुष्टि: हिरण्यं भृत्या: विजय: अरातेर्वध: तद्धनहरणं प्रतिस्पर्धिना निन्दकानां विनष्टि: एतद्दृशफल प्राप्त्यायुपाय भूतो योगो वेदे विधीयत इति सायणीय मन्त्र व्याख्याबलेन नव्या: प्राचीनर्षीणां पृथग्जनतां निर्णेतुं प्रवृत्ता इति कथमिदम् अन्याय्यं भवितुमर्हति ?

(ऋग्भाष्यभूमिका कपालिशास्त्रिकृता पृ० १९)

भावार्थ यह कि यदि सायणभाष्य न होता तो वेदशब्द समुदाय को समझना हमारे लिए अन्धे में भटकने के समान हो जाता और वेद के गुप्त अर्थ की परीक्षा भी सम्भव न होती । इसलिए उसके परिश्रमादि की कृतज्ञता पूर्वक हम प्रशंसा करते

हैं किन्तु उसको सब मन्त्रों का केवल यज्ञ परक अर्थ सिद्ध करने के लिए सर्वथा अनावश्यक और असरल मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा। इसका फल क्या हुआ ? यही कि वेद की पवित्रता की प्रतिष्ठा नष्ट हो गई। वेद अध्यात्मतत्त्वों और रहस्यों का भण्डार है यह सार्वजनिक विश्वास निराधार है। इसमें (मन्त्र संहितात्मक वेद में) अध्यात्म तत्त्व और मुक्ति इत्यादि को नहीं देखना चाहिए, वह तो वेदान्त के नाम से प्रसिद्ध उपनिषदों में है। मन्त्रात्मक मूल वेद में तो कर्म का साधन ही लक्ष्य है, जिससे विविध प्रकार के धन, बल, प्रजा, पशु, पुष्टितुष्टि, भृत्य, विजय, शत्रुनाश, उनके धन का हरण, प्रतिस्पर्धी निन्दकों का नाश इत्यादि फलों की प्राप्ति हो। सायणाचार्य की ऐसी मन्त्रव्याख्या का अवलम्बन करके ही नवीन लोग प्राचीन ऋषियों को असभ्य सिद्ध करने को तत्पर हो गए तो उसमें क्या अन्याय की बात हो सकती है ? एक अन्य स्थान पर कपाली शास्त्री जी ने लिखा कि किं वा न भवेन्निरंकुश कर्म परता प्रतिपादनोत्साह समीरिते सायणीये भाष्ये अर्थात् निरंकुश रूप से कर्म परता प्रतिपादन के उत्साह से प्रेरित सायणीय भाष्य में क्या नहीं हो सकता ? वेदों की अपौरुषेयता और नित्यता के पक्ष का अपनी ऋग्वेद भाष्य भूमिका में प्रबल रूप से प्रतिपादन करके भी वेद भाष्य में राजर्षियों के वृत्तान्त, युद्ध कथा, शपथ, अभिशाप इत्यादि रूप से सायणाचार्य के व्याख्यान की भी कठोर आलोचना करते हुए मान्य शास्त्री जी ने लिखा है :—

"अत्र वेदापौरुषेयत्ववादपक्षोच्छेदः कृतः"

इससे वेदों की अपौरुषेयता के पक्ष का उच्छेद कर दिया। इस प्रकार की परस्पर विरुद्धता महर्षि दयानन्द के भाष्य में कहीं नहीं पाई जाती और न कहीं सायणाचार्य की तरह अनित्य इतिहास तथा असंगत अश्लील कथाएं पाई जाती हैं, अपितु सर्वत्र सर्वजनोपयोगी पवित्र सार्वभौम उपदेश है। इस बात को ध्यान में रखते हुए जगद्विख्यात योगी श्री अरविन्द जी ने महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य के विषय में ठीक ही लिखा कि—

Whatever may be the final complete interpretation of the Vedas, Dayananda will be honoured as the first discoverer of the right clues. He has found out the keys of the doors that time had closed and rent asunder the seals of the imprisoned fountains.

(Dayananda and Veda, by Shri Aurobindo).

भावार्थ यह कि वेदों का सम्पूर्ण और अन्तिम भाष्य जो कोई भी हो ऋषि दयानन्द का ठीक भाष्य शैली के प्रथम उद्धारक के रूप में सदा सम्मान किया जायगा। समय ने जिनको बन्द कर दिया था ऐसे द्वारों की चाबी को उन्होंने फिर से पा लिया और बन्द स्रोत की मुहर को तोड़ डाला, इत्यादि।

वर्तमान काल के सुप्रसिद्ध दाक्षिणात्य विद्वान् और योगी श्री माधव पुण्डलीक पण्डित ने "Mystic Approach to the Veda and the Upanishad" में ऋषि दयानन्द सरस्वती के विषय में यथार्थ रूप से लिखा है कि :—

"By the middle of the last century the call to re-establish the Vedas in the sovereign pedestal for presiding over an assured and

inevitable resurgence of the national life, found a vigorous expression in the stalwart champion of Indian culture, Swami Dayananda Saraswati. He called for a bold dispersal of the fog of half-baked theories and alien prejudice that had settled round the Luminous Vedas and enjoined upon every son of the soil to look straight into the force of the truth and recognise there what was indeed a Revealed Scripture. He pointed out with un-answerable proof how the concept of One Deity stood out toweringly in the Hymns, with all other gods as names for its many qualities and powers."

(Mystic Approach to the Veda and the Upanishad by Shri M. P. Pandit, P. 17).

भावार्थ यह कि गत १९वीं शताब्दी के मध्य में वेदों को पुनः भारत के राष्ट्रीय जीवन में सर्वोत्कृष्ट रूप से प्रतिष्ठापित करने के लिए भारतीय संस्कृति के बलशाली पोषक स्वामी दयानन्द सरस्वती के रूप में प्राप्त हुए। उन्होंने ज्योतिर्मय वेद विषयक भ्रान्तियों और पाश्चात्य पक्षपातों का निराकरण करके प्रत्येक भारतीय को प्रबल प्रेरणा की कि वह सत्य को सीधा देखने का यत्न करे और इस बात को पहचाने कि वेद वस्तुतः ईश्वरीय ज्ञान है। अकाट्य प्रमाणों से इस बात को सिद्ध किया कि वेदों में एक परमेश्वर का विचार अत्यन्त स्पष्ट रूप में प्रतिपादित किया गया है। अन्य देव जिसके नाम अथवा गुण सूचक शब्द हैं।

इस प्रकार अन्य अनेक निष्पक्षपात विद्वानों ने भी ऋषि दयानन्द के वेद तथा भाष्य विषयक महत्ता को स्वीकार किया है। यह प्रसन्नता की बात है।

११

महर्षि दयानन्द की वेदार्थविषयक क्रान्ति का निष्पक्ष विद्वानों पर प्रभाव

निरुक्तकार महर्षि यास्काचार्य ने ठीक ही लिखा है कि "नह्येषु (मन्त्रेषु) प्रत्यक्ष मस्त्यनृषेरतपसो वा" अर्थात् जो ऋषि और तपस्वी नहीं है वह मन्त्रार्थ का साक्षात् वास्तविक दर्शन नहीं कर सकता। महर्षि दयानन्दजी परमयोगी; तपस्वी होने के कारण वेदों के रहस्य को समझने में समर्थ हो सके। उनकी वेदभाष्य शैली की विशेषताओं में से कुछ का ऊपर संक्षेप से दिग्दर्शन कराया गया है। अग्निः, आपः, पृथ्वी, उषा आदि देवता के जिन मन्त्रों को स्थूलदर्शी भाष्यकारों ने केवल भौतिक आग, पानी, भूमि और बाह्य उषा मात्र अर्थ समझा उन्होंने गहराई में जाकर उनकी विद्वान् नेता, जलानीव शान्ति शीला विदुष्यः, पृथिवीव सहनशीला पत्नी उषर्बत्पत्नी इत्यादि रूप में भी सुन्दर व्याख्या की है। यहाँ महर्षि की इस क्रांति का विविध मतावलम्बी विद्वानों पर जो प्रभाव हुआ उसका कुछ निर्देश करना चाहता हूँ। महर्षि दयानन्द ने वैदिक एकेश्वरवाद का प्रतिपादन करते हुए बताया था कि वेदों में इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि इत्यादि शब्द प्रधान तथा ईश्वर वाचक हैं इसे पहले पौराणिक तथा अन्य विद्वान् नहीं मानते थे। किन्तु अब अनेक निष्पक्षपात विद्वान् इसे स्वीकार करने लगे हैं यह हर्ष की बात है।

१—सबसे पहले मैं रामानन्द सम्प्रदाय के आचार्य पण्डितराज स्वामी भगवदाचार्य जी को लेता हूँ जिन्होंने सामवेद संहिता का विद्वत्तापूर्ण साम संस्कार भाष्य दो भागों में प्रकाशित करवाया है और यजुर्वेद के प्रथम पाँच अध्यायों का भी संस्कृत हिन्दी में उन्होंने भाष्य किया है जिसे हमारे स्नातक मित्र श्री पं० मनोहर जी विद्यालंकार ने छपवाया है। उसके पश्चात् उनका सम्पूर्ण यजुर्वेद संस्कार भाष्य भी प्रकाशित हुआ है। यह भाष्य इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि इसमें अग्नि, इन्द्र, सोम, मित्र वरुणादि पदों को परमेश्वरपरक मानकर उनकी उत्तम आध्यात्मिक भक्तिपरक व्याख्या की गई है। "अग्न आयाहि वीतये" इस सामवेद के प्रथम मन्त्र की व्याख्या में स्वामी भगवदाचार्य जी ने लिखा है "अग्रम् सर्वोत्कृष्टं पदं भक्तं ज्ञानिनं वा नयतीति अग्निः। अंगति सर्वत्र गच्छति सर्वत्र व्याप्नोतीति वा—हे अग्ने! त्वयि निरतान् त्वद्भक्तान् ज्ञानिनो वा अत्युत्कृष्टं स्वं पदं प्रापयितः परमेश्वर (आयाहि) आगच्छ सर्वव्यापकोऽपि त्वम् अस्माकम् अज्ञानाद् दूरे स्थित इव प्रतीयमानः अस्मद् हृदयप्रदेशम् आप्नुहीति तात्पर्यम्॥ (साम संस्कार भाष्यम् पृ० ५-६)

अर्थात् भक्त वा ज्ञानी को उत्कृष्ट पद प्राप्त कराने वा सर्वव्यापक होने के कारण अग्नि का अर्थ यहाँ परमेश्वर है। उससे प्रार्थना है कि तुम हमारे हृदय प्रदेश में आवो जो सर्वव्यापक होते हुए भी हमारे अज्ञान के कारण दूर प्रतीत हो रहे हो। यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः (साम मं० ११६) इत्यादि मन्त्रों में इन्द्र का अर्थ पण्डितराज स्वामी भगवदाचार्य जी ने "हे परमैश्वर्ययुक्त इन्द्र, परमैश्वर्य वा

परमेश्वर किया है। तमिन्द्रं वाजयामसि (साम मं० ११६) के भाष्य में इन्द्रम् का अर्थ परम प्रसिद्धम् इन्द्रम्—परमात्मानम् यही किया है। (पृ० ६५) इस प्रकार उन्होंने सोम का अर्थ परमेश्वर या भक्ति रस किया है। मित्र, वरुणादि का अर्थ प्रायः सर्वत्र परमात्मा किया है। इस भाष्य में कुछ स्थलों में संशोधन की आवश्यकता है, जैसा कि मैं उनसे हृषिकेश और हरिद्वार में मिलकर निवेदन कर चुका हूँ। तथापि सम्पूर्णतया देखा जाय तो वह आध्यात्मिक व्याख्या की दृष्टि से प्रशंसनीय है। भूमिका में श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती को उन्होंने 'कलियुग के आस्तिक शिरोमणि' के नाम से स्मरण किया है।

२—कनखल निवासी परमहंस स्वामी महेश्वरानन्द जी मण्डलेश्वर ने ऋग्वेद संहितोपनिषच्छतकम्, यजुर्वेद—सामवेद—अथर्ववेद संहितोपनिषच्छतकम् नामक ग्रन्थ संस्कृत में (अब हिन्दी अनुवाद सहित) प्रकाशित कराये हैं। इनमें अग्नि, इन्द्र, विष्णु, सोम, मित्र, वरुणादि पदों का परमेश्वर अर्थ करते हुए उसके लिये एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः इत्यादि प्रमाणों को उद्धृत किया गया है। उदाहरणार्थ पृ० ४ पर अग्निमीडे पुरोहितम्, इस मन्त्र की व्याख्या में उन्होंने लिखा है—

अहम् अग्निम् अग्निनामकं परमात्मदेवम् (ईडे) स्तौमि। कथं परमात्मनोऽग्निनाम प्रतिपाद्यता? श्रुति प्रामाण्यात्त्वमग्ने प्रथमो अंगिरा ऋषिर्देवो देवानामभवः शिवः सखा (ऋ०) प्राणोऽग्निः परमात्मा (मैत्रायी ६।९।) अग्निः सर्वा देवताः (ऐ० ब्रा० ६-९) इत्यादि सृष्ट्यादित्वं, सर्वांगसारत्वं देवदेवत्वं, शिवसखित्वं सर्वदेव प्राथम्यम्। अप्रमत्तयोगिहृदयध्येयत्वं च अग्नेः परमात्मत्वमन्तरेण न संगच्छते अतोऽग्निपदाभिधेयस्य परमात्मत्वम् अभ्युदेयम्"।

इस प्रकार अनेक प्रमाण देकर सिद्ध किया गया है कि अग्नि का मुख्यार्थ परमात्मा है।

पृ० २११ इन्द्रं परेऽवरे मध्यमासः (ऋ० ३-१५-४) इसकी व्याख्या में इन्द्रम् का अर्थ सुखस्वभाव परमात्मानमेव ऐसा परमेश्वरपरक किया है।

पृ० १८९ पर त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वपो अजनयस्त्वं गाः (ऋ० १-९१-२२) इत्यादि मन्त्रों को उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है इत्यादिभिः श्रुतिभिः सोमः परमात्मनः शुद्ध सौम्यं रूपं निश्चीयते, अर्थात् परमात्मा के शुद्ध सौम्य रूप का नाम सोम है। यह निश्चित होता है। सामवेदोपनिषच्छतकम् के पृ० १०३ पर कोऽयं सोमरसः का शीर्षक देते हुए उन्होंने लिखा है "सोमपदस्य त्रयोऽर्थाः प्रामाणिकाः प्रदर्शिताः सन्ति।"

१—एकोऽर्थः ज्ञानमयभक्ति रस रूपः सोमः।
२—द्वितीयोऽर्थः स्मितवदनः प्रशान्तप्रसन्न हृदयो ज्ञान भक्तिनिष्ठो महात्मा।
३—तृतीयोऽर्थः परमात्मा। अर्थात् सोम के तीन प्रामाणिक अर्थ हैं—
१ ज्ञान मय भक्तिरस।
२—सदा प्रसन्न ज्ञान भक्ति निष्ठ महात्मा और
३—परमात्मा।

इसी सामवेदोपनिषच्छतकम् की भूमिका में उन्होंने पृ० ६४ पर शीर्षक दिया

है सद्गुणाढ्याः स्त्रियोऽपि ऋषयो बभूवुः भवितुमर्हन्ति च ।। अर्थात् गुणवती स्त्रियाँ प्राचीन काल में ऋषिकाएं हो गईं और अब भी हो सकती हैं। "चातुर्वर्ण्य भारत समीक्षा" नामक अपनी पुस्तक के दो खंडों में महामण्डलेश्वर स्वामी महेश्वरानन्दजी ने वर्ण व्यवस्था को बड़े प्रबल प्रमाणों द्वारा गुण कर्मानुसार वर्णन किया और महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के विषय में चातुर्वर्ण्य भारत समीक्षा के द्वितीय खंड की भूमिका पृ० १५ पर इस प्रकार लिखा है —

> बहुनामग्रहो न्याय्यः, समाज राष्ट्र रक्षकः ।
> महर्षि श्री दयानन्दो, दम्भ पाखण्ड मर्दकः ।। १२८ ।।
> वेद धर्म प्रचाराय, मर्दनाय विधर्मणाम्
> आर्याणां संघशक्त्यर्थं, प्रयासो येन वै कृतः ।।१२९ ।।
> तस्य महानुभावस्य, सम्मतिश्चास्ति कृष्णवत् ।
> गुणकर्मानुसारेण, चातुर्वर्ण्य व्यवस्थितिः ।। १३० ।।

(चातुर्वर्ण्य — भारत समीक्षा महामण्डलेश्वर
स्वामी महेश्वरानन्द गिरि कृता द्वितीयः खंड पृ० १६)

इन श्लोकों द्वारा उन्होंने दम्भ पाखण्ड मर्दक, वेद धर्म प्रचारक, समाजराष्ट्र रक्षक महर्षि के रूप में स्वामी दयानन्द जी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित की है जो महत्त्वपूर्ण है और जिसको पढ़कर मुझे कई बार यह कहावत याद आई कि "जादू वह जो सर पर चढ़कर बोले", महर्षि दयानन्द का जादू इस प्रकार महामण्डलेश्वरों पर भी धीरे धीरे कार्य कर रहा है। गत ४ वर्षों से स्वामी महेश्वरानन्द जी से हमारा विशेष सम्पर्क बना हुआ है और उनके साथ विचार विमर्श प्रेमपूर्वक चलता रहता है। वे अद्वैतवाद के समर्थक हैं जिसका निराकरण मैंने अपनी 'वेदों का यथार्थ स्वरूप' नामक पुस्तक में उनके ग्रन्थ का उद्धरण देकर और नाम निर्देश पूर्वक भी किया है, जिसकी प्रति उन को भेंट की गई। इस पर जब मैंने एक बार सन् १९४४ में हमारी आनन्द कुटीर पर आने पर उन्हें कहा कि स्वामी जी आपका अद्वैतवाद हमें बिलकुल पसन्द नहीं तो उन्होंने इतना ही कहा कि अपने सम्प्रदाय की तो हमें रक्षा करनी है ना, शेष जातिभेद निवारण, अस्पृश्यता निवारण, स्त्री शूद्र वेदाधिकार, सकामयुवति-विधवा विवाह इत्यादि प्रायः सब सामाजिक विषयों में वे महर्षि दयानन्द के विचारों से प्रभावित हैं। सायणाचार्य के वेदभाष्यों से उन्हें कई संशय उत्पन्न हो गये थे जिनके निवारणार्थ मैंने उनको महर्षि दयानन्द के भाष्य पढ़ने की प्रेरणा की है। तथा सायणाचार्य आदि की अप्रामाणिकता और उनके अपौरुषेयवाद की अनित्य इतिहासों से परस्पर विरुद्धता उन्हें दिखाई है जिसका आशा है यथेष्ट प्रभाव पड़ेगा। उनमें ऐक्य संगठन और समाज सुधार की बड़ी प्रशंसनीय लगन है।

३ गीता प्रेस, गोरखपुर से महामहोपाध्याय पंडित विद्याधर शर्मा गौड़ वेदाचार्य ब्रह्मादि विद्वानों द्वारा सम्पादित "सन्ध्योपासन विधि" मन्त्रानुवाद सहित प्रकाशित हुई है जिसमें सुप्रसिद्ध गायत्री मन्त्र के "सवितुः" पद का अर्थ स्थावर जंगम सम्पूर्ण विश्व को उत्पन्न करने वाले उस निरतिशय परमेश्वर का यह अर्थ किया गया है। पहले पौराणिक भाई प्रायः उसका सूर्यपरक ही अर्थ किया करते थे। महर्षि दयानन्द जी ने पंच महायज्ञ विधि, सत्यार्थप्रकाश, संस्कारविधि तथा वेद भाष्यों में इसका परमेश्वरपरक अर्थ ही किया है।

४ श्री अरविन्दाश्रम, पाण्डीचरी से सुप्रसिद्ध योगी श्री अरविन्द जी के (जो

महर्षि दयानन्द कृत वेदभाष्य शैली के अत्यधिक प्रशंसक थे) निर्देशानुसार विख्यात दाक्षिणात्य विद्वान् श्री कपाली शास्त्रीजी ने ऋग्वेदसंहिता के प्रथम अष्टक (१२१ सूक्त) तक का सिद्धाञ्जन भाष्य किया था। इस पर महर्षि दयानन्द जी की छाप सर्वथा स्पष्ट है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १०वें सूक्त की व्याख्या में ज्योतिष्कृदसि सूर्य का अर्थ करते हुए महाविद्वान् श्री कपाली शास्त्री जी ने लिखा (सूर्य) सर्वस्य प्रेरक परमात्मन् येना पावक चक्षसा'''त्वं वरुण पश्यसि ।। पृ०५०-६) की व्याख्या में उन्होंने लिखा "वृत्र वरणो इति निष्पन्नत्वात् सर्वमपि आवृत्य स्थितो वरुणः—विपुलः सर्वव्यापीति साधीयानर्थः अर्थात् सर्वव्यापक परमेश्वर यह वरुण का अर्थ है। ऐसे ही अन्य सैंकड़ों उदाहरण श्री कपाली शास्त्री के इस आध्यात्मिक भाष्य से दिखाये जा सकते हैं। खेद है कि मान्य कपाली शास्त्री जी के देहावसान से यह उत्तम भाष्य बीच में ही रह गया। आशा है उनके सुयोग्य शिष्य श्री माधव पुण्डलीक पण्डित जी श्री पण्डित जगन्नाथजी वेदालंकार आदि अन्य विद्वानों की सहायता से इसे पूरा करने का प्रयत्न करेंगे। इस भाष्य में सायणाचार्यादि को स्थूलदर्शी वा स्थूलवादी बताते हुए वेदों के रहस्य को खोलने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया गया है।

५. इस प्रकरण में एक अन्य अत्यन्त उल्लेखनीय ग्रन्थ का निर्देश किये बिना मैं नहीं रह सकता। वह गिडौर राजकीय श्री रावणेश्वर संस्कृत विद्यालय के अध्यापक वेद कर्म काण्डाचार्य श्री दामोदर शर्मा झा द्वारा विरचित और श्री बालकृष्ण शास्त्री द्वारा सन् १९४१ में ज्योतिषप्रकाश प्रेस विश्वेश्वरगंज बनारस २८।२४ से प्रकाशित "मन्त्रार्थ चन्द्रोदय" नामक पुस्तक है जिसकी ओर सबसे प्रथम मेरा ध्यान सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् वेदमूर्ति स्व० श्री पण्डित श्रीपाद दामोदर सातवेलकरजी ने सन् १९५३ में बम्बई में सम्पन्न चतुर्वेद पारायण यज्ञ के अवसर पर आकृष्ट करते हुए कहा था कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी व आर्य समाज का प्रभाव इस ग्रन्थ के कर्ता पर स्पष्ट है। मैंने जब उस ग्रन्थ में यजु० अध्याय २३ के उन मन्त्रों का भाष्य पढ़ा जिनके महीधर भाष्य की महर्षि दयानन्दजी ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में उग्र आलोचना की है तो मेरे आश्चर्य और हर्ष की सीमा न रही। पूर्व के समान 'जादू वह जो सर पर चढ़ कर बोले' यह लोकोक्ति मुझे उसे पढ़ते हुए बार-बार याद आई। उसके कुछ मुख्य मुख्य शब्दों के यौगिकार्थ ही उद्धृत करना पर्याप्त होगा।

गणानां त्वा गणपति हवामहे—इस मन्त्र की परमेश्वर परक व्याख्या करते हुए वेदाचार्य पं० दामोदरजी झा ने अश्व, निधिपति, वसु इत्यादि पदों का निम्न अर्थ किया है —

(अश्वः) अश्नुते चराचरं सर्वं जगत् इत्यश्वः सर्वव्यापकः परमेश्वर इत्यादि। सर्वव्यापक परमेश्वर (निधिपतिम्) निधयः महापद्मादयः ब्रह्मविद्यारूपा वा तत्पालकं परमेश्वरम्। (वसो) वसन्ति सर्वभूतानि अस्मिन् इति वसुर्वासुदेवाख्यः परमेश्वरः तत्सम्बुद्धौ (हे वसो) हे सर्वजगन्निवास परमेश्वर !

शिश्नपद का अर्थ भी श्री पं० दामोदर झा ने शेषति—तमोऽपहन्तीति शिश्नः प्रकाशः; गायत्री मन्त्र प्रतिपाद्यं वरेण्यं भर्गः सर्व प्रार्थनीय सर्व पापानां भर्जन-समर्थं तेज इत्यर्थः। अर्थात् अज्ञानान्धकार विनाशक परमेश्वर का तेज जिसका गायत्री मन्त्र में वर्णन है इस प्रकार किया है जो विलक्षण है। एक अन्य स्थान पर मन्त्रों का महर्षि दयानन्द के समान राजधर्मादि परक अर्थ करते हुए आपने शिश्नः का अर्थ शेषति प्रजादुःखम् अपहन्तीति शिश्नो राजा अर्थात् प्रजा दुःखनाशक राजा ऐसा

किया है। (देखो मन्त्रार्थ चन्द्रोदय पृ० ४०१) माता च ते पिता च ते अग्रे वृक्षस्य रोहतः ॥ इस मन्त्र के भाष्य में वृक्षः का अर्थ नश्वरं राष्ट्रम्, अर्थात् नष्ट होने वाला अनित्य राष्ट्र ऐसा किया है। (पृ० ४०१) मुष्क शब्द का यौगिक अर्थ मुष्को वृषभ-संधयोः। इति कोषादौ दर्शनात् मुष्कौ शिक्षिताशिक्षितौ विज्ञाविज्ञौ वा प्रजासंघौ। प्रजा संघ किया है और मन्त्रों की राजप्रजाधर्म विषयक व्याख्या की है जो द्रष्टव्य है। (योनेः) का अर्थ प्रकृते :—प्रकृत्याक्तिकायाः प्रजायाः। अर्थात् प्रजा का ऐसा अर्थ किया है। (रेतः) का अर्थ करते हुए लिखा है रेतः शुद्धेऽथ तेजसि इति कोषादौ दर्शनात् रेतः तेजः। तच्चेह ब्राह्मं वरेण्यं श्रुतिस्मृति प्रतिपाद्यम्। अर्थात् रेतः का अर्थ यहाँ श्रुतिस्मृति प्रतिपादित परमेश्वरीय तेज का है। वाजी का अर्थ वेगवान् परमेश्वरः ऐसा परमेश्वरपरक किया गया है।

इस प्रकार महीधर के अश्लील अर्थों से सर्वथा भिन्न आध्यात्मिक वा राजधर्म परक अर्थ करते हुए (जिस पर महर्षि दयानन्द की छाप स्पष्ट है) आश्चर्य होता और साथ ही हँसी भी आती है। अब हम सुयोग्य विद्वान् श्री दामोदरजी को यह लिखते हुए पाते हैं—

"एवं निर्दुष्टार्थत्वेऽपि अविदितार्थतत्त्वज्ञैर्मृताश्वेन सह राजमहिष्या ग्राम्यधर्मः (मैथुनम्) कथं सम्भावितः यस्मिन् अश्वमेधे राज्ञो धर्मात्मित्वप्रतिपादनमेव प्रयोजनं तत्र कामित्व मूलम् अश्वेन सह राज्ञ्या मैथुनकल्पनं तु धर्म विरोधिनामेव कृत्यं संभवितुमर्हति किमधिकं च वक्तव्यम्। मही धरस्याप्ययमेवाशयः। स च तत्कृतवेद-भाष्ये द्रष्टव्यः" (मन्त्रार्थचन्द्रोदयः पृ० ३६६-३६७)

अर्थात् इस प्रकार उत्तम अर्थ होने पर भी अर्थ के तत्त्व को न जानने वाले लोगों ने राजमहिषी वा पटरानी का मृत अश्व के साथ सम्भोग कैसे कल्पित कर लिया? जिस अश्वमेध में राजा की धार्मिकता का प्रतिपादन ही मुख्य प्रयोजन है उसमें कामभावना के आधार पर घोड़े के साथ रानी के सम्भोग की कल्पना तो धर्म-विरोधियों का ही काम हो सकता है? बस और अधिक क्या लिखा जाए? महीधर का भी ऐसा ही अभिप्राय है, जो उसके वेदभाष्य में देखना चाहिये।

सुयोग्य लेखक महोदय ने यौगिक व्युत्पत्ति के आधार पर जो ईश्वर वा राज-धर्म परक अर्थ किये हैं उनके इस यत्न का हम अभिनन्दन करते हैं किन्तु उनका यह कथन यथार्थ नहीं है कि महीधर का भी वही तात्पर्य है जो उन्होंने बताया है। महीधर के अपने वेद भाष्य में किये अर्थ अश्लील, ग्राम्यधर्म वा सम्भोगादि परक हैं यह निष्पक्ष विद्वानों को लज्जा के साथ स्वीकार करना पड़ेगा। इसीलिये महर्षि दयानन्द जी को उनकी इतनी उग्र समालोचना करनी पड़ी। ग्रिफिथ ने, जिसने यजुर्वेद का अंग्रेजी अनुवाद महीधर भाष्य के अनुसार किया है, यजु० २३ के २०-३१ तक का अंग्रेजी अनुवाद छोड़ते हुए यह टिप्पणी दी है—

"This and the following nine stanzas are not reproducible even in the semi-obscurity of a learned European language and stanzas 30.31 will be unintelligible without them."

(P. 252 foot note)

अर्थात् इन मन्त्रों का अनुवाद किसी सभ्य युरोपीय भाषा में (यद्यपि उनमें आधी अस्पष्टता विद्यमान होती है) नहीं दिया जा सकता।

अतः हम मन्त्रार्थ चन्द्रोदय के कर्ता पण्डित दामोदर झा के ईश्वर अथवा राजधर्म परक अर्थ की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते और इस पर महर्षि दयानन्द के अर्थ की छाप का अनुभव करते हैं।

वैदिक शब्दों के अर्थ यौगिक होते हैं इसकी महर्षि दयानन्द ने "सर्वाणि नामानि आख्यातजानीति नैरुक्तः समयः" (निरुक्त) श्री महेशचन्द्र न्यायरत्न के समान अन्य पौराणिक विद्वान् भी प्रायः इसका विरोध करते रहे हैं। किन्तु मन्त्रार्थ चन्द्रोदय के लेखक श्री पण्डित दामोदर जी झा वेद कर्मकाण्डाचार्य ने महर्षि दयानन्द सम्मत इस सिद्धान्त की पुष्टि में अपनी उपरिलिखित पुस्तक के पृ० ३८७ पर जो पाद टिप्पणी अनेक स्पष्ट उदाहरणों सहित दी है मैं उसका उल्लेख किये बिना नहीं रह सकता और उसकी ओर महर्षि दयानन्द के भाष्य के उन समालोचकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट करना चाहता हूँ जो यौगिक वाद के आधार पर किये गये उनके भाष्य का उपहास करते हैं। आपने लिखा है—"वेदे यौगिकशब्दा यथा शुक्लयजुर्वेदसंहि-तायां १-१ वायवःस्थ देवो वः सविता इत्यत्र वा—गतिगन्धनयोः वान्ति गच्छन्तीति वायवः इति व्युत्पत्त्या वायुशब्देन मातृभ्यः सकाशादन्यत्र यन्तारो वत्सा उच्यन्ते। पुनः यजु० १-२ वसोः पवित्रमित्यत्र वस—निवासे वासयति वृष्ट्यादि द्वारा स्थापयति विश्वमिति वसुर्यज्ञः।

पुनः यजु० ३-६ आयं गौरित्यत्र गम्लृ गतौ गच्छतीति गौरिति व्युत्पत्त्या यज्ञ-निष्पत्तये तत्तद् यजमानगृहेषु गन्ता अग्निरुच्यते न तु गोपशुः। पुनस्तत्रैव महिषो दिवम् इत्यत्र षणु—दाने महिमाहात्म्यं यागकर्तृ स्वरूपं सनोति ददातीति महिष इतिव्युत्पत्त्या महिषशब्देन वह्निरभिधीयते न तु यमवाहनो महिषपशुः।

पुनस्तत्रैव ८ कण्डिकायां—पतंगाय धीयते इत्यत्र पतन् गच्छतीति पतंगः अग्निवाचकः न तु पतंगः पक्षिसूर्ययो इतिकोषादि प्रमाणतः सूर्यः पक्षी वा। पुनस्तत्रैव १३ कण्डिकायाम् "उभाविन्द्राग्नी" इत्यत्र इदि परमैश्वर्ये इन्दतीति इन्द्रः इति व्यु-त्पत्त्या इन्द्र शब्देन यज्ञसाधकत्वरूपम् ऐश्वर्यम् उत आहवनीयोऽग्निरभिधीयते न च देव-राडिन्द्रः तथा तस्मिन्नेवाध्याये १६ कण्डिकायां "सहस्रसामृषिम्" इत्यत्र ऋष गतौ अर्षति दोहदस्थानं गच्छतीति ऋषिर्गौः इति व्युत्पत्त्या ऋषिशब्देन गौरभिधीयते। न च मन्त्रद्रष्टा ऋषिरिति। (पण्डित दामोदर झा वेदाचार्य कृते मन्त्रार्थचन्द्रोदये पृ० ३८७)

विस्तार भय से इस सारे विद्वत्तापूर्ण लेख का भाषानुवाद करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि मुख्यतः यह विद्वानों के लिये उपयोगी है। इतना ही भावार्थ देना पर्याप्त है कि यौगिक व्युत्पत्ति के आधार पर सायणाचार्यादि भाष्यकारों ने यहाँ निम्नलिखित अर्थ वायवः वसु आदि शब्दों के लिए हैं।

१—वायवः—बछड़े	२—वसुः—यज्ञ
३—गौः—अग्नि	४—महिषः—अग्नि
५—पतंगः—अग्नि	६—इन्द्रः— यज्ञ साधकत्व रूप

ऐश्वर्य वा आहवनीय तथा ऋषि—गौ। ऐसे ही सर्वत्र वेदों के शब्द यौगिक होने के कारण उनके अर्थ व्युत्पत्ति के अनुसार करने चाहिये। महर्षि दयानन्द की वेद भाष्य शैली की आधारशिला यह यौगिकवाद है और सायणाचार्यादि के अनुयायी विद्वान् मुख्यतया इसके आधार पर महर्षि दयानन्द के भाष्य को अप्रामाणिक वा

कपोल कल्पित बताने का यत्न करते हैं, अतः सायणाचार्य कृत कुछ अन्य विचित्र यौगिक अर्थों का भी निर्देश कर देना प्रसंगवश अनुचित न होगा। विद्वान् ध्यान से पढ़ें—

८—ऋग्वेद २।३४।३ के भाष्य में सायणाचार्य ने अश्वान् का अर्थ अशूङ् व्याप्तौ को लेकर व्याप्तान् लोकान् ही किया है।

९ ऋ० २।३४।६ के भाष्य में धेनुम् का अर्थ सायणभाष्य में "मेघम्" है।

१०—ऋ० ५।५४।६ के सायणभाष्य में वृक्षः का अर्थ वृश्च्यते विदार्यत इति वृक्षो मेघः किया गया है।

११—ऋ० ५।५९।१ में अश्वान् का अर्थ व्यापकान् उदक संघातान् व जल समूह श्री सायणाचार्य ने लिखा है। अशूङ्—व्याप्तौ।

१२—ऋ० ५।५३।३ के सायणभाष्य में वयः का अर्थ अश्वाः किया गया है। यद्यपि सब जानते हैं कि लौकिक संस्कृत में उसका अर्थ पक्षी होता है।

१३—एक और श्री सायणाचार्यकृत विचित्र अर्थ देखिये—ऋ० ४।७८।४ में प्रयुक्त नृभिः का अर्थ जो मनुष्य वाचक है सायणाचार्य अश्वैः यह करते हैं। यदि महर्षि दयानन्द के भाष्य में कहीं नृभिः का अर्थ अश्वैः (घोड़ों ने) ऐसा होता तो हमारे पौराणिक विद्वान् भाई उसका अवश्य उपहास करते और इसे कपोल कल्पित कहते किन्तु सायणाचार्य के इस विचित्र सर्वथा लोक विरुद्ध अर्थ पर वे कुछ नहीं कहते।

१४—ऋ० ६।६६।८ में द्योः शब्द का अर्थ सायणाचार्य आकाश न करके "शत्रोः" करते हैं और उसके लिये दीप्तस्य विजिगीषोर्वा शत्रोः यह व्युत्पत्ति दिवु—क्रीड़ा विजिगीषा=इत्यादि धात्वर्थ को लेकर देते हैं।

१५—ऋ० १०।१।६ में प्रयुक्त 'वस्त्राणि' का अर्थ वे आच्छादकानि तेजांसि अर्थात् तेज करते हैं क्योंकि वह वस आच्छादने से बनता है।

१६—ऋ० ९।१०१।६ में आये "रयीणाम्" जो ऐश्वर्य वाचक सुप्रसिद्ध है का अर्थ सायणाचार्य हविषो दातृणां यजमानानाम्, रा दाने को लेकर करते हैं।

१७—ऋ० १०।३।३ में "रामम्" शब्द आया है जिसका अर्थ श्री सायणाचार्य ने "शार्वरं तमः" वा रात्रि का अन्धकार किया है जबकि पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र आदि ने इसी से रामावतार सिद्ध करने का यत्न किया है।

१८ ऋ० १०।३।३ में प्रयुक्त "जार" का अर्थ सायणाचार्य "जरयिताः शत्रूणाम् अग्निः" अर्थात् शत्रु नाशक अग्नि किया है।

१९ ऋ० १०।७२।७ में प्रयुक्त "यतय" शब्द का अर्थ (जो स्पष्टतया संन्यासीवाचक है और "यद्देवा यनयो तथा भुवनान्यपिन्वत" में ऐसा अर्थ महर्षि दयानन्द जी ने संस्कार विधि के संन्यास प्रकरण में किया है) मेघ करते हैं किस अर्थ में खीचातानी है विद्वान् निर्णय करें।

२० ऋ० १०।५।४ मे प्रयुक्त "युवतिम्" का अर्थ सायणाचार्य आहुतिम् करते हैं।

२१—ऋ० ९।६७।१३ में प्रयुक्त "देवेषु" का अर्थ सायणाचार्य देवेषु स्तोत्रकारिषु कर्म कुर्वाणेषु वा अस्मासु इस प्रकार स्तुति करने वाले अथवा कर्म करने वाले हम म यह किया है। महर्षि दयानन्द के विद्वांसो हि देवाः (शतपथ ३।७।३) सत्य

संहता वै देवाः (ऐतरेय १।६) सत्यमया उ देवा (कौषीतकी ब्रा० २।८ (इत्यादि प्रबल) और स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर "देवः" का अर्थ सत्यनिष्ठ विद्वान् यह अर्थ करने पर शोर मचाने वाले हमारे कट्टर सनातनधर्माभिमानी विद्वान् मित्रों को अपने परम प्रामाणिक वेद भाष्यकार श्री सायणाचार्य के देवेषु के स्तोत्रकारिषु—कर्म कुर्वाणेषु वा अस्मासु—स्तुति करने वाले अथवा कर्म करने वाले हम मनुष्यों में इस अर्थ पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। ऋ० १।१९।२१ देवा भवत वाजिनः के भाष्य में श्री सायणाचार्य ने "देवाः" की व्याख्या यों की है। हे देवाः—ऋत्विजादयो ब्राह्मणाः। एते वै देवाः प्रत्यक्षं यद् ब्राह्मणाः (तैत्तिरीयसंहितायाम् १।७।३ इति श्रुत्यन्तरात्॥

जब देवाः—का अर्थ तैत्तिरीयसंहिता के प्रमाण से ऋत्विजादि ब्राह्मण हो सकता है तो ऋषि दयानन्द के देवाः का अर्थ सत्यनिष्ठ विद्वान् करने पर आपत्ति क्यों? ऋग्वेद १०।७।७ में देवासः शब्द आया है जिसके भाष्य में सायणाचार्य ने उसका अर्थ द्युलोकवासी देव न करके "हविषां दातारः ऋत्विग् यजमानाः अर्थात् हवियों के देने वाले ऋत्विक् और यजमान यह किया है। देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा इत्यादि निरुक्तानुसार देव शब्द को दा—दाने से मानकर ऋत्विक् यजमान मनुष्यपरक अर्थ सायणाचार्य ने किया है। ऐसे ही सैकड़ों उदाहरण दिये जा सकते हैं किन्तु पहले ही विस्तार बहुत अधिक हो गया है अतः महर्षि दयानन्द के निरुक्तब्राह्मणादि सर्व शास्त्र सम्मत यौगिकवाद पर आक्षेप करने वालों का मुख बन्द करने वालों के लिये इतने ही उदाहरण पर्याप्त हैं। स्कंद स्वामी, सायणाचार्यादि के भाष्यों में व्यत्ययों की भरमार है...

महर्षि दयानन्द के भाष्य पर यह आक्षेप किया जाता है कि उन्होंने वचन विभक्ति व्यत्ययादि का बहुत आश्रय लिया है। व्यत्ययो बहुलम् (अष्टा० तथा सुप्तिङुपग्रहलिंग नराणां, कालहलच् स्वर कर्तृयांच। व्यत्ययमिच्छति शास्त्र कृदेषां सोऽपि च सिद्ध्यति बाहुलकेन॥ महाभाष्य में उद्धृत इस कारिका के अनुसार वेदों में व्यत्यय के सिद्धांत से तो इन्कार कोई कर ही नहीं सकता अतः केवल महर्षि दयानन्द जी ने ही ऐसा व्यत्यय अनेक स्थानों पर किया है, अन्य भाष्यकारों ने नहीं, यह समझना बडी भूल है। स्कन्द स्वामी, सायणाचार्य, उव्वट, महीधर, भरत स्वामी आदि सभी भाष्यकारों के भाष्यों में इस व्यत्यय के सैकड़ों उदाहरण दिखाये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ—

१. ऋ० १०।१४।८ संगच्छस्व तन्वा सुवर्चाः के भाष्य में श्री सायणाचार्य ने लिखा है—"सुवर्चाः" तृतीयार्थे प्रथमा। सुवर्चसा शोभन दीप्तियुक्तेन तन्वा स्वशरीरेण (सायणाचार्य पृ० ३७)

२. त्रिकद्रुकेषुभिः पतति (ऋ० १०।१४।१६) के भाष्य में सायणाचार्य जी लिखते हैं। द्वितीयार्थे तृतीयैषा—त्रिकद्रुकान्।

३. ऋ० १०।१५।१० आग्ने याहि सहस्रदेववन्दैः के भाष्य में सायणाचार्य कहते हैं कि सहस्रम्—तृतीयार्थे प्रथमा सहस्रेण बहुभिरित्यर्थः।

४. ऋ० १०।१८।१२ के "सहस्रं मित उपहिश्रयन्ताम्" के भाष्य में सायणाचार्य लिखते हैं सहस्रम् तृतीयार्थे प्रथमा मित इति निष्ठान्तं रूपम्। व्यत्ययेन बहुवचनस्यैकवचनम्।

५. उद्गीथ भाष्य में भी इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है सहस्त्रमिति तृतीयार्थे प्रथमा मित इति च बहुवचनस्य स्थान एकवचनम् ।

६. ऋ० १०।२२।१५ महश्च रायः इत्यादि के भाष्य में सायणाचार्य लिखते हैं "महश्च रायः इत्युभयत्र तृतीयार्थे षष्ठी महता धनेन ।

७. ऋ० १०।१३३।१ के सायणभाष्य में लिखा है अस्मा इन्द्राय—षष्ठ्यर्थे चतुर्थी—अस्येन्द्रस्य ।

८. १०।१२१।७ आपो ह यद् बृहती: के भाष्य में सायणाचार्य कहते हैं "लिंग वचनयोर्व्यत्यय:" । आप:-अद्भ्य: ।

९. ऋ० १०।१८।३ के भाष्य में उद्गीथाचार्य ने लिखा है त्वत् परि—षष्ठ्यर्थे पंचमी उपरि शब्दस्य उकार लोप: (पृ० ४९)

१०. ऋ० १०।२२।९ के भाष्य में उद्गीथाचार्य ने लिखा है उशना:—द्वितीयार्थे प्रथमैषा उशनसम् ।

११. ऋ० १०।२२।९ के भाष्य में सायणाचार्य ने भी लिखा है उशनेति विभक्ति व्यत्यय: उशनसम् ।

१२. ऋ० १।२७।६ के भाष्य में राघवेन्द्र यती ने लिखा है (इन्द्राय) षष्ठ्यर्थे चतुर्थी—प्रसिद्धेन्द्रस्य ।

ऐसे ही व्यत्यय के सैंकड़ों उदाहरण स्कन्द स्वामी, उव्वट, महीधरादि के भाष्यों से दिखाये जा सकते हैं, अतः महर्षि दयानन्द सरस्वती को दोष देना सर्वथा अन्याय है । यह बात हमने प्रसंगवश लिख दी है ।

पारसी विद्वानों पर महर्षि दयानन्द का प्रभाव—

पारसी विद्वानों पर भी इस वेदार्थ-विषयक क्रान्ति का प्रभाव पड़ा जिसके उदाहरण के रूप में बम्बई के सुप्रसिद्ध पारसी विद्वान् दादाचॉनजी बी० ए० एल-एल० बी० के Philosophy of Zoroastrianism से वेद-विषयक निम्न उद्धरण देना आवश्यक प्रतीत होता है । यह पुस्तक सन् १९४१ में Times of India Press, Bombay में छपी । वे लिखते हैं—

The Veda is a Book of knowledge and wisdom comprising the Book of nature, the Book of Religion, the Book of Prayers, the Book of Morals and so on. The word Veda means wit, wisdom, knowledge and truely the Veda is condensed wit, wisdom and knowledge. (P. 100)

अर्थात् वेद ज्ञान की पुस्तक है जिसमें प्रकृति, धर्म, प्रार्थना, सदाचार, इत्यादि पुस्तकें सम्मिलित है । वेद का अर्थ ज्ञान है और वास्तव में वेद में सारे ज्ञान विज्ञान का तत्त्व है ।

ऋग्वेद के प्रथम सूक्त का अनुवाद देकर जिसमें महर्षि दयानन्द सरस्वती के समान भौतिक अग्नि तथा ईश्वर परक दोनों अर्थ किये हैं वे पारसी विद्वान् लिखते हैं—"Thus we see that Agni in this hymn means both fire as well as God."

(P. 100)

अर्थात् इस प्रकार हम देखते हैं कि इस सूक्त में अग्नि के भौतिक अग्नि और ईश्वर ये दोनों अर्थ हैं । आगे आपने "Two fold significance of words" इस शीर्षक के नीचे लिखा है कि जिन पाठकों को वेद की इस अद्भुत विशेषता का ज्ञान नहीं कि किस प्रकार एक ही शब्द से वे भौतिक और आध्यात्मिक तत्त्वों का वर्णन करते हैं उनको यह भ्रम हो सकता है कि वेद अग्नि, वायु, उषा, सूर्यादि को ईश्वर समझते हैं । किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है । इस विषय में सुयोग्य लेखकों ने पृ० १०२ पर स्पष्ट लिखा है कि "The Vedas teach nothing but monotheism of the purest Kind."

अर्थात् वेद ऐसे एकेश्वरवाद की शिक्षा देते हैं जो सबसे अधिक पवित्र है । इन सब विचारों पर महर्षि दयानन्द के वेद विषयक विचारों की छाप स्पष्ट है ।

मुसलमान विद्वानों पर प्रभाव—

मुसलमान विद्वान् भी महर्षि दयानन्द की इस वेदार्थ विषयक क्रान्ति से प्रभावित हुए बिना नहीं रहे । यह सुप्रसिद्ध है कि सर सय्यद अहमदखां (अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के संस्थापक) ने महर्षि के विचारों से प्रभावित होकर कुरान की नई तर्कसंगत व्याख्या का यत्न किया और स्वामी दयानन्दजी का देहावसान होने पर ६ नव० १८८३ के अलीगढ़ इन्स्टीच्यूट मैगजीन में लिखा कि "स्वामी दयानन्द इलावा इल्मोफजल के निहायत नेक और दरवेश सिफ़्त (साधु) आदमी थे । इनके मोहतकिद (अनुयायी) इनको देवता मानते थे और बेशक वे इसी लायक थे । वे सिर्फ़ ज्योति स्वरूप निराकार के सिवाय दूसरे की पूजा जायज नहीं रखते थे । हम हमेशा इनका निहायत अदब (आदर) करते थे कि हरेक मजहब वाले को इनका अदब लाजिम (आवश्यक) था । बहरहाल ऐसे शख्स थे जिनका मसल इस वक्त हिन्दुस्तान में नहीं है । और हर शख्स को उनकी वफात (मृत्यु) का ग़म (शोक) करना लाजमी है कि ऐसा बेनजीर (अनुपम) शख्स इनके दरमियान से जाता रहा ।"

(सर सय्यद अहमदखां—अलीगढ़ इन्स्टीच्यूट मैगजीन में) ६-११-१८८३

सर यामिन खाँ Kt. C.I.E. नामक मुसलमान ने "God, soul and Universe in Science and Islam." नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने बताया कि "Originally the conception of God among the Hindus was right when they believed Him to be unit and omnipresent." (P. 2)

अर्थात् प्रारम्भ में हिन्दुओं का ईश्वर विषयक विश्वास बिल्कुल ठीक था जब वे उसे एक और सर्वव्यापक मानते थे ।

पीछे त्रिमूर्ति इत्यादि का जो अशुद्ध विचार उत्पन्न हो गया उसका जिकर करके उन्होंने अंत में लिखा—

"Swami Dayananda Saraswati—a man of great learning started preaching the old religion of the Vedas which conceived unity of God." (God, soul and universe in Science and Islam, P. 3, 5)

अर्थात् स्वामी दयानंद सरस्वती ने जो एक बहुत बड़े विद्वान् थे वेदों के

पुराने धर्म का प्रचार फिर प्रारम्भ किया जो एकेश्वरवाद का प्रतिपादक था ।

पाश्चात्य विद्वानों पर प्रभाव—

अनेक निष्पक्ष पाश्चात्य विद्वानों पर भी महर्षि दयानंद की इस वेदार्थ विषयक क्रांति का प्रभाव पड़ा इसे अनेक उदाहरणों द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। जगद्विख्यात मनीषी और साहित्यकार रूस देशीय तालस्ताय जो सौभाग्यवश हमारे मान्य आचार्य रामदेवजी के वैदिक मैगजीन द्वारा निकट सम्पर्क में आये महर्षि दयानन्द के वेद विषयक विचारों से इतने प्रभावित हुए कि तालस्ताय सग्रहालय के अनुसंधान कर्ता विद्वान् अलैक्जेन्डर शिफूमान ने उनके विषय में उनकी जन्मशताब्दि पर लेख लिखते हुए बताया "Tolstoy not only read the Vedas, but also spread their teachings in Russia. He included many of the sayings of the Vedas and the Upanishads in his collections. "Range of Reading, Thoughts of wisemen and others."

अर्थात् तालस्ताय ने न केवल वेदों को पढ़ा, बल्कि उनकी शिक्षाओं और सन्देशों का रूस में प्रचार भी किया। उन्होंने वेदों और उपनिषदों की अनेक सूक्तियों का संग्रह अपनी पुस्तकों में किया।

सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् प्रो० मैक्समूलर जिन्होंने अधिकतर ईसाइयत की श्रेष्ठता दिखाने के लिये ही वेदों का अँग्रेजी अनुवाद किया था, अपनी पत्नी के नाम सन् १८६८ में लिखे पत्र में उन्होंने लिखा था कि—"I hope, I shall finish that work and I feel convinced though I shall not live to see it, yet this edition of mine (of the Rigveda) and the translation of the Vedas will hereafter tell to a great extent on the fate of India and on the growth of millions of souls in that country. It is the root of their religion and to show them what the root is, is, I feel sure, the only way of uprooting all that has been sprung from it during the last three thousand years."

(Prof. Maxmuller's letter to his wife)

अर्थात् मुझे आशा है कि मैं उस वेदों के सम्पादनादि कार्य को पूरा कर दूंगा और मुझे निश्चय है कि ऋग्वेद का यह संस्करण और वेदों का अनुवाद भारत के भाग्य और लाखों भारतीयों के आत्माओं के विकास पर प्रभाव डालने वाला होगा। यह (वेद) उनके धर्म का मूल है और मूल को दिखा देना, पिछले ३००० वर्षों में उससे जो कुछ निकला है उसको मूल सहित उखाड़ देने का सबसे उत्तम प्रकार है। १६ दिसम्बर सन् १८६८ को उन दिनों भारत मन्त्री ड्यूक आफ औगयिल के नाम एक पत्र में प्रो० मैक्समूलर ने लिखा था—

"The ancient religion of India is doomed and if Christianity does not step in, whose fault will it be?"

अर्थात् भारत के प्राचीन धर्म का नाश तो अब निश्चित है और यदि ईसाइयत आकर उसका स्थान न ग्रहण करे तो यह किसका दोष होगा? ऐसे कट्टर ईसाई प्रो०

मैक्समूलर भी महर्षि दयानंद की वेदार्थ विषयक क्रांति से प्रभावित हुए बिना न रहे और जैसा कि मैंने पहले दिखाया है कि अपने अन्तिम ग्रंथ The six systems of Philosophy में उन्होंने स्वीकार किया कि वेदों में इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, प्रजापति आदि नाम एक ही परमेश्वर के हैं। Biographical Essays में स्वामी दयानंद जी पर निबंध लिखते हुए प्रो० मैक्समूलर ने लिखा है कि—

"To Swami Dayananda, everything contained in the Vedas was not only perfect truth, but he went one step further and by their interpretation, succeeded in persuading others that everything worth-knowing, even the most recent inventions of modern science were alluded to in the Vedas. Steam engines, electricity, telegraphy and wireless microgram were shown to have been known at least in the germs to the poets of the Vedas."

(Prof Maxmuller's Biographical Essays)

अर्थात् स्वामी दयानंद की दृष्टि में वेदों में पूर्ण सत्य का ही प्रतिपादन किया गया है। इतना ही नहीं, वे एक कदम और आगे बढ़े और उन्होंने उनकी व्याख्या द्वारा औरों को भी यह विश्वास दिलाने में सफलता प्राप्त की कि जो कुछ भी ज्ञातव्य है जिसमें भाप के इंजन (रेलगाड़ी), बिजली, तार, बेतार आदि भी सम्मिलित हैं इन सब वर्तमान विज्ञान के नवीनतम अविष्कारों का भी वैदिक ऋषियों को कम से कम बीज रूप में ज्ञान था।

यहाँ मुख्य बात वेद भाष्य द्वारा लोगों को यह विश्वास दिलाने में सफलता की है जो महत्त्वपूर्ण है। इस सम्बन्ध में प्रो० मैक्समूलर का सन् १८८७ में लण्डन आर्य समाज के मन्त्री के नाम उसके निमंत्रण के उत्तर में लिखा पत्र भी महत्त्वपूर्ण है जिससे ज्ञात होता है कि ईसाई होते हुए भी उस पर ऋषि दयानंद का जादू कितना काम कर रहा था। प्रो० मैक्समूलर ने लिखा—

"I have full sympathy with the Arya Samaj movement. I know Swami Dayananda worked with honest motives. The followers of Swami Dayananda should not be content with what Swami Dayananda has done, but should carry on the work which he has left undone. I shall be glad if I am able to do any service to the Arya Samaj" (Quoted here from Pandit Indra Vidyavachaspati's आर्यसमाज का इतिहास, Vol. 1, P. 211).

(श्री पं० इंद्रजी विद्यावाचस्पति द्वारा लिखित आर्य समाज के इतिहास भाग १ पृ० २११ से उद्धृत) तात्पर्य यह है कि मेरी आर्य समाज के आंदोलन से पूर्ण सहानुभूति है। मैं जानता हूँ कि स्वामी दयानन्द ने सत्य निष्ठता से कार्य किया था। स्वामी दयानंद के अनुयायियों को जो कुछ वे कर गये उससे ही संतुष्ट न होकर जो काम वे छोड़ गये हैं उसकी पूर्ति करने में लग जाना चाहिये। यदि मैं आर्य समाज की कुछ सेवा कर सकूं तो मुझे प्रसन्नता होगी।

"जादू वह जो सर पर चढ़कर बोले" का इससे अच्छा क्या उदाहरण होगा?

नोबल पुरस्कार विजेता मैटरलिंक पर अद्भुत प्रभाव—लगभग डेढ़ लाख रुपये के नोबल पुरस्कार विजेता स्वीडन वासी श्री मैटरलिंक ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "The Great Secret" (परम रहस्य) में वेदों के प्रति अत्यधिक आदर का भाव दिखाया है। वेदों की कर्तव्यशास्त्रादि विषयक शिक्षाओं को उद्धृत करते हुए उसने लिखा है कि—

"Let us agree that this system of "Vedic" Ethics, while the first ever known to man, is also the loftiest which he has ever practised." (The Great Secret, P. 96).

अर्थात् हमें इस बात को स्वीकार करना चाहिये कि यह कर्तव्यशास्त्र वैदिक प्रणाली जब कि मनुष्य को ज्ञात प्रणालियों में सर्वप्रथम है साथ ही सबसे अधिक उत्कृष्ट है जिसका मनुष्य ने अब तक आचरण किया है।

प्राचीन परम्परा वा Primitive Tradition का निर्देश करते हुए मैटरलिंक ने लिखा है कि—

"As for the primitive tradition, it is true that these affirmations and precepts are the most unlooked for, the loftiest, the most admirable and the most plausible that mankind has hitherto known.

(The Great Secret, P. :7)

अर्थात् प्राचीन प्रारम्भिक परम्परा के सम्बन्ध में यह सत्य है कि ये उक्तियां और आदेश अत्यन्त अविलोकित, सर्वोत्कृष्ट, सर्वाधिक प्रशंसनीय और सबसे अधिक युक्तियुक्त हैं जिनका मनुष्यों ने अब तक ज्ञान प्राप्त किया है।

इस परम्परा का अनुसरण करते हुए और स्वामी दयानन्द जी के नाम का भी एक स्थान पर उल्लेख करते हुए मैटरलिंक ने वेदों को ज्ञान का विशाल भण्डार माना है, जिनको मानव सृष्टि के प्रारम्भ में ऋषियों पर प्रकाशित किया गया। उनके शब्द ये हैं—

"This tradition attributes to the vast reservoir of the wisdom that somewhere took shape simultaneously with the origin of man to more spiritual entities, to Beings less entangled in matter."

(The Great Secret by Materlink Prologue, P. 66)

सुप्रसिद्ध दार्शनिक मैटरलिंक के इन विचारों से जिन पर महर्षि दयानन्द की छाप स्पष्ट है सामाजिक विकासवाद का भी पूर्णतया खंडन हो जाता है। क्योंकि यदि सबसे प्राचीन वेदों की कर्तव्यादि विषयक शिक्षाएं सबसे उत्कृष्ट, प्रशंसनीय और युक्ति-युक्त हैं तो फिर सामाजिक विकासवाद के लिये कहाँ स्थान रह जाता है?

डा० अल्फ्रेड रसेल वैलेस पर प्रभाव

भौतिक क्षेत्र में विकासवाद के डार्विन के साथ ही प्रवर्तक डा० अल्फ्रेड रसेल वैलेस ने भी वेदों के कुछ अनुशीलन के पश्चात् सामाजिक विकासवाद को स्वीकार

करने से इंकार कर दिया था। यह उनके Social Enviornment and moral Progress. नामक ग्रन्थ से ज्ञात होता है। डा० वैलेस ने लिखा है—

"The wonderful collection of hymns known as the Vedas is a vast system of religious teachings as pure and lofty as those of the finest portions of the Hebrew-Scriptures. Its authors were fully our equals in their conception of the Universe and the Deity expressed in the finest poetic language." In the Veda, we find many of the essential teachings of the most advanced religious thinkers, P. 11.

अर्थात् वेद के नाम से प्रसिद्ध आश्चर्यजनक संहिता के अन्दर बाइबिल के अच्छे से अच्छे भाग के तुल्य पवित्र और ऊँची धार्मिक शिक्षाओं की एक पद्धति पाई जाती है। इसके लेखक सुन्दरतम कविता में प्रकाशित ईश्वर और संसार विषयक विचार में पूर्णतया हमारे समान थे। इनमें हम अत्यधिक उन्नत वा प्रगतिशील धार्मिक विचारकों की मुख्य शिक्षाओं को पाते हैं। इससे सामाजिक विकासवाद का अत्यन्त स्पष्ट खंडन हो जाता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं। स्वयं भौतिक जगत् में विकासवाद के प्रवर्तकों में से एक वैज्ञानिक शिरोमणि का सामाजिक विकासवाद का इस प्रकार का मुख्यतया वेदों के आधार पर निराकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस सामाजिक विकासवाद के आधार पर जो ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता से इनकार करते हैं उनको अपना विचार बदलने को विवश होना पड़ेगा। यह बात डा० अल्फ्रेड रसेल वैलेस के ऊपर उद्धृत तथा अन्य वाक्यों से स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकरण को अभी हम यहीं समाप्त करते हैं यद्यपि अन्य भी सैंकड़ों उदाहरण महर्षि दयानन्द की वेदार्थ विषयक क्रांति के भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों पर प्रभाव के दिये जा सकते हैं।

९

महर्षि दयानन्द कृत वेद भाष्य की विशेषता के कुछ अन्य उदाहरण

गत अध्याय में मैंने महर्षि दयानन्द कृत वेद भाष्य के तुलनात्मक दृष्टि से महत्त्व और विशेषता के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये हैं किंतु मुझे ऐसे प्रतीत होता है कि अभी कुछ और मन्त्रों के भाष्यों पर तुलनात्मक विवेचन महर्षि दयानंद के भाष्य की गम्भीरता और महत्त्व को दिखाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है यद्यपि यह विषय तो इतना विस्तृत है कि इसका कई सौ पृष्ठों में भी अन्त नहीं हो सकता।

अग्ने यं यज्ञमध्वरम् ॥ (ऋ० १. १. ४) का तुलनात्मक विवेचन।

सबसे पहले इस प्रसंग में जिस मंत्र पर तुलनात्मक विचार प्रस्तुत करना चाहता हूँ वह ऋग्वेद के प्रथम मंडल के प्रथम सूक्त का चतुर्थ मन्त्र है। यह मन्त्र इस दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व का है कि यदि इसका ऋषि दयानन्द की तरह अन्य भारतीय और पाश्चात्य भाष्यकारों वा अनुवादकों ने ठीक ठीक अर्थ समझा होता तो पवित्र वैदिक धर्म को घृणास्पद बनाने वाली यज्ञों में पशु हिंसा की प्रथा कभी प्रचलित न होती क्योंकि मन्त्र में यज्ञ को अध्वर अर्थात् हिंसा रहित कहा गया है, और यह भाव भी प्रकट किया गया है कि ऐसे हिंसा रहित यज्ञ को ही भगवान् और उसके भक्त सत्य-निष्ठ विद्वान् लोग स्वीकार करते हैं अन्यों को नहीं।

सम्पूर्ण मन्त्र का पाठ इस प्रकार है—

अग्ने यं यज्ञमध्वरम् विश्वतः परिभूरसि। स इद् देवेषु गच्छति ॥

ऋ० १. १. ४

इस मंत्र का सायणाचार्य कृत भाष्य निम्नलिखित है—

हे अग्ने! त्वं यं यज्ञं (विश्वतः) सर्वासु दिक्षु (परिभूः) परितः प्राप्तवानसि (स इत्) स एव यज्ञः (देवेषु) तृप्तिं प्रणेतुं स्वर्गे (गच्छति) कीदृशं यज्ञम् (अध्वरम्) हिंसारहितम् नह्यग्निनः सर्वतः पालितं यज्ञं राक्षसादयो हिंसितुं प्रभवन्ति ॥

यहाँ सायणाचार्य ने एक तो अग्नि पद से केवल भौतिक अग्नि का ग्रहण किया है एक तो वह भी ठीक नहीं दूसरा यज्ञ के "अध्वरम्" इस महत्त्वपूर्ण विशेषता के भाव को उसने नहीं समझा अन्यथा वे मंत्रों की यज्ञों में पशु हिंसा परक व्याख्या करके वेदों को विचारशील लोगों की दृष्टि में गिराने के पाप के भागी न बनते। यदि वे निरुक्तकार यास्काचार्य के अध्वर इति यज्ञनाम ध्वरति हिंसा कर्मा तत् प्रतिषेधः (निरुक्त १ ८) इस महत्त्वपूर्ण वचन को भी ध्यान में रखते जिसमें अध्वर को यज्ञ का पर्यायवाची बताते हुए उसका अर्थ हिंसा रहित जहां हिंसा का सर्वथा प्रतिषेध यह किया है तो भी उस महान् अनर्थ से बचे रहते, जिससे वेद मंत्रों का हिंसापरक अर्थ करने का उत्तरदायित्व उन पर आया। वे स्वयं यह जानते और

मानते हैं कि अध्वर का अर्थ हिंसा रहित है जैसे कि "अध्वरम्" का अर्थ "हिंसा रहितम्" लिखकर उन्होंने स्पष्ट किया है किंतु उसका सीधा अर्थ अहिंसात्मक वा जहाँ हिंसा का सर्वथा प्रतिषेध है न करके यह अर्थ करना कि "न हि अग्निना पालितं यज्ञं राक्षसादयो हिंसितुं प्रभवन्ति" अर्थात् अग्नि से पालित वा रक्षित यज्ञ की राक्षसादि हिंसा नहीं कर सकते खींचातानी और शब्द के सीधे और स्पष्ट अर्थ से अनभिज्ञता प्रकट करना है जिसके भारत के धार्मिक इतिहास में महा भयंकर परिणाम हुए यह सर्वविदित है।

वेंकट माधव कृत अर्थ—

वेंकट माधव ने ऋगर्थ दीपिका नामक अपने अत्यन्त संक्षिप्त विवरण में मंत्र का अर्थ पूर्ववत् ही इन शब्दों में किया है—

अग्ने यं यज्ञम् हिंसारहितम् अहिंसितं त्वत सन्निधानादसुरैः सर्वतः परिभवसि गार्हपत्यादिव्यूहेनारानिव नेमिः स एव देवेषु गच्छति ॥

यहाँ भी यद्यपि अध्वरम् का हिंसा रहितम् यह अर्थ किया गया है तथापि उसके महत्त्व को न समझकर यही लिख दिया गया है कि तुझ अग्नि के सान्निध्य के कारण राक्षसों द्वारा अहिंसित। यहाँ यह बात भी स्मरणीय है कि यह बात कि अग्नि के कारण राक्षसादि यज्ञ की हिंसा नहीं कर सकते इसीलिये वह अध्वर कहलाता है। ऐतिहासिक दृष्टि वा प्रत्यक्ष प्रमाण के भी कितनी विरुद्ध है। रामायणादि प्राचीन ग्रन्थों के पढ़ने से स्पष्ट ज्ञात होता है कि किस प्रकार राक्षस यज्ञों का ध्वंस करते रहते थे और इसीलिये विश्वामित्रादि ऋषियों को दशरथ के दरबार में श्रीराम को यज्ञ रक्षार्थ साथ भेजने की प्रार्थना करनी पड़ी। इस प्रकार भी अध्वर के सायणाचार्य वेंकट माधवादि सम्मत इस अर्थ की असत्यता स्पष्टतया ज्ञात होती है।

इस मन्त्र का स्कन्द स्वामिकृत अशुद्ध अर्थ—

स्कन्द स्वामी ने (जो सायणाचार्य से पूर्ववर्ती है) इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार किया है—

हे अग्ने! यं यज्ञम् अध्वर शब्दोऽयं यज्ञम् इत्यनेन पौनरुक्त्यान्न यज्ञनाम किं तर्हि तद् विशेषणम्। हिंसावचनो ध्वरतिः हिंसा कर्मा! ध्वरणं ध्वरो हिंसा यस्मिन् नास्ति सोऽध्वरः। यज्ञे हि सर्वस्यानुग्रहो न हिंसा। ये ऽपि तत्र पश्वादयो हिंस्यन्ते तेषामप्यनुग्रहमेव शिष्टाः स्मरन्ति।

"ओषध्यः पशवो वृक्षास्तिर्यंचः पक्षिणस्तथा।
यज्ञार्थं निधनं प्राप्ताः, प्राप्नुवन्त्युच्छ्रितीः पुनः ॥ इति

तस्मादुपपन्नं हिंसावर्जितत्वम्। अथवा षष्ठ्यर्थे बहुव्रीहिः। अविद्यमानो ध्वरो यस्य सोऽध्वरः। रक्षोभिरहिंसितत्वगुणमित्यर्थः। सर्वत्र षष्ठ्यर्थे द्वितीया। यस्य यज्ञस्य हिंसावर्जितस्य सर्वतः परिभूः परिपूर्णको भवति सर्वत्र परिग्रहे परिग्रहीभवसि स इदिति इच्छब्द एवार्थे। स एव देवेषु गच्छति। देवास्तमेव परिगृह्णन्ति नान्यमित्यर्थः।"

सरल होने के कारण इसका भाषार्थ करने की आवश्यकता नहीं। मुख्य बात अध्वर शब्द की है। स्कन्द स्वामी का यह कथन यथार्थ है कि यहां अध्वर का अर्थ यज्ञ लेना उचित नहीं अन्यथा पुनरुक्ति का दोष "यज्ञम्" के आने से हो जायेगा। अतः "अध्वरम्" यज्ञम् का विशेषण है। इस अध्वरम् का अर्थ पहले स्कन्द स्वामी ठीक ही करते हैं कि "ध्वरणं ध्वरो हिंसा यस्मिन् नास्ति सः" (जिसमें किसी की हिंसा नहीं ऐसे हिंसा रहित शुभ कर्म को जिसमें सबका अनुग्रह ही है हिंसा नहीं) अध्वर कहते हैं। यदि स्कन्द स्वामी अध्वर की इसी ठीक निरुक्त सम्मत व्याख्या पर ही रुक जाते तो अच्छा होता किन्तु वे अपने समय के प्रचलित यज्ञों में हिंसा की प्रथा से परिचित थे जिसका यज्ञ के इस अध्वर विशेषण से विरोध बहुत ही स्पष्ट था। अतः उसे बचाने के लिये उनको यह लिखना पड़ा कि यज्ञ में जो पशुओं की हिंसा की जाती है वह भी उन पर अनुग्रह (कृपा) ही होता है हिंसा नहीं जैसे कि "ओषध्यः पशवो वृक्षाः" इस श्लोक में बताया गया है अथवा राक्षसादि द्वारा जिस यज्ञ की हिंसा नहीं हो सकती यह अर्थ अध्वर शब्द का ले सकते हैं। ऐसा यज्ञ ही देवों द्वारा स्वीकृत होता है अन्य नहीं। यह कितने दुःख और आश्चर्य की बात है कि स्कन्द स्वामी जैसे विद्वान् भी यज्ञ के अध्वर विशेषण के महत्त्व को कुसंस्कार वश समझने में असमर्थ रहे और उन्होंने सर्वथा वेद विरुद्ध (जैसा कि निरुक्त और उनकी अपनी प्रथम व्याख्या के अनुसार भी अध्वर शब्द स्पष्ट सिद्ध करता है) यज्ञों में पशु-हिंसा का समर्थन कर दिया।

दो पाश्चात्य विद्वानों के अनुवाद—

इस समय इस मन्त्र के दो पाश्चात्य विद्वानों के किये अनुवाद हमारे सम्मुख हैं। एक तो प्रो० विल्सन का जो निम्न शब्दों में सायणानुसारी है—

Agni, the unobstructed secrifice of which thou art on everyside the protector, assuredly reaches the Gods."

(Wilson's translation)

इसमें सायणाचार्य का अनुसरण करते हुए "अध्वरम्" का अर्थ Unobstructed अर्थात् जिसे कोई रोक नहीं सकता यह किया गया है जिसकी अशुद्धता का निर्देश ऊपर किया जा चुका है।

दूसरा अनुवाद ओल्डन बर्ग (Oldan Berg) का Vedic Hymn Vol. II. में है जो निम्न प्रकार है—

Agni, whatever sacrific and worship thou encompasseth on everyside, that indeed goes to the Gods.

(Olden Berg in the Vedic Hymn, Vol. II)

यहां अध्वरम् का अर्थ सर्वथा छोड़ दिया गया है। यह बात ध्यान देने योग्य है

ऋषि दयानन्द कृत अर्थ—

अन्य भाष्यकारों का अर्थ देने के पश्चात् अब मैं ऋषि दयानन्द कृत भाष्य को प्रस्तुत करता हूँ जो निम्न शब्दों में है।

पदार्थः—(अग्ने) परमेश्वर भौतिको वा (यं) (यज्ञम्) प्रथम मन्त्रोक्तम् (अध्वरम्) हिंसाऽधर्मादि दोष रहितम् ध्वरति हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधोनिपातः (निरुक्ते १.८) (विश्वतः) सर्वतः सर्वेषां जलपृथिवीमयानां पदार्थानां विविधाश्रयात् (परिभूः) यः परितः सर्वतः पदार्थेषु भवति (असि) अस्ति वा (सः) यज्ञः (इत्) एव (देवेषु) विद्वत्सु दिव्येषु पदार्थेषु वा (गच्छति) प्राप्नोति ॥

अन्वय—हे अग्ने त्वं यम् अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूरसि व्याप्य पालकोऽसि। तथा यमग्निरपि सम्पादयितास्ति स इद् देवेषु गच्छति।

भावार्थ—अत्र श्लेषालंकारः—

यतोऽयं व्यापकः परमेश्वरः स्वसत्तया पूर्वोक्त यज्ञं सर्वतः सततं रक्षति अत एव स यज्ञो दिव्यगुण प्राप्तिहेतुर्भवति। एवमेव परमेश्वरेण यो दिव्य गुण सहितोऽग्निः रचितोऽस्ति तस्मादेवायं दिव्य शिल्प विद्यासम्पादकोऽस्ति। यो धार्मिक उद्योगी विद्वान् मनुष्योऽस्ति स एवैतान् गुणान् प्राप्तुमर्हति ॥

भाषा भावार्थ—

इस मन्त्र में श्लेषालंकार है— जिस कारण व्यापक परमेश्वर अपनी सत्ता से उक्त यज्ञ की निरन्तर रक्षा करता है इसी से वह अच्छे अच्छे गुणों के देने का हेतु होता है इसी प्रकार ईश्वर ने दिव्य गुण युक्त अग्नि भी रचा है कि जो उत्तम शिल्प विद्या का उत्पन्न करने वाला है। उन गुणों को केवल धार्मिक, उद्योगी और विद्वान् मनुष्य ही प्राप्त होने के योग्य होता है।

यहां जिस बात की ओर हम विशेष रूप से ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं और जो तुलनात्मक दृष्टि से मन्त्र का अनुशीलन करते हुए अत्यन्त महत्त्व की है वह "अध्वरम्" का अर्थ हिंसाऽधर्मादि दोषरहितम् अर्थात् हिंसा अधर्म आदि दोष रहित जिसके लिये महर्षि दयानन्द ने निरुक्तकार महर्षि यास्काचार्य का सुप्रसिद्ध "ध्वरति-हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधः (निरुक्त १.८) यह वचन उद्धृत किया है। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से मन्त्र का यह अनुशीलन महर्षि दयानन्द के भाष्य के महत्त्व और उसकी विशेषता को निष्पक्ष विचारकों के सम्मुख स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है जिसको न समझने के कारण अन्य भाष्यकारों ने महान् अनर्थ कर दिया है।

मन्त्रों के अनेक गम्भीर अर्थ—

महर्षि दयानन्द के भाष्य में श्लेषालंकार का आश्रय लेकर मन्त्रों के व्यावहारिक और पारमार्थिक वा ईश्वरादि परक अर्थ बहुत स्थानों पर पाये जाते हैं। यद्यपि अन्य भाष्यकारों को इन आध्यात्मिक वा पारमार्थिक अर्थों का ज्ञान प्रायः नहीं हो सका और उन्होंने अग्नि, वायु, सूर्य इत्यादि से केवल भौतिक अग्नि, वायु, सूर्य इत्यादि का अर्थ ग्रहण करके उनकी पूजा का अशुद्ध विधान कर दिया। आर्याभिविनय नामक अपने लघु ग्रन्थ की भूमिका में महर्षि ने इस विषय में यह बड़ी महत्त्वपूर्ण बात लिखी कि "इस आर्याभिविनय ग्रन्थ में मुख्यता से वेद मन्त्रों का परमेश्वर सम्बन्धी एक ही अर्थ संक्षेप से किया गया है। दोनों अर्थ करने से ग्रन्थ बढ़ जाता। इससे व्यवहार विद्या सम्बन्धी अर्थ नहीं किया गया, परन्तु वेदों के भाष्य में विस्तारपूर्वक परमार्थ और व्यवहारार्थ दोनों अर्थ सप्रमाण किये जायेंगे जैसे कि—

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद् वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥

(यजु० ३२.१) इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुः (ऋ० १. १६४. ४६) बृहस्पतिर्वै ब्रह्म (ऐतरेय १.१३) प्राणो वै ब्रह्म (शतपथ ३. ४. ४. १५) ब्रह्म ह्यग्निः (शत० १. ५. १. ११) इत्यादि शतपथ ऐतरेय ब्रह्म ब्राह्मणादि प्रमाण और "महान्त-मेवात्मानाम्" (निरु० ७.१४) इत्यादि प्रमाणों से परब्रह्म ही अर्थ लिया जाता है तथा मुखादग्निरजायत (यज० ३१.१२) वायोरग्निः अग्निरग्रणीर्भवति (निरु० ७.१४) इत्यादि प्रमाणों से यह प्रत्यक्ष जो रूप गुण वाला दाह प्रकाशयुक्त भौतिक अग्नि है वह लिया जाता है। इत्यादि दृढ़ प्रमाणयुक्त, प्रत्यक्ष व्यवहार से दोनों अर्थ वेद भाष्य में लिखे जायेंगे जिससे सायणाचार्य कृत भाष्य और उनके अनुसार अंग्रेजी कृतार्थ दोषरूप वेदों के कलंक निवृत्त हो जायेंगे। और वेदों के सत्यार्थ का प्रकाश होने से वेदों का महत्त्व तथा वेदों का अनन्तार्थ जानने से मनुष्यों का महा लाभ और वेदों में यथावत् प्रीति होगी। (आर्याभिविनय की महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत भूमिका से) ऋग्वेद के प्रारम्भ के ५० के लगभग सूक्तों का ऐसा ही अनेकार्थक भाष्य (जिसमें कई मन्त्रों के ३ ४,५ अर्थ तक दिये गये थे) महर्षि ने किया था जिसका ऋग्वेद प्रथम नौ मन्त्रों का भाष्य ही नमूने के रूप में पृथक् प्रकाशित हुआ। शेष दुर्भाग्यवश अब तक अप्रकाशित है पर परोपकारिणी सभा को विद्वानों के लाभार्थ प्रकाशित करना चाहिये। इस अतिविस्तृत भाष्य के विचार को पीछे से महर्षि को इसलिये छोडना पड़ा कि इसकी पूर्ति में तो बहुत अधिक समय लग जाता जबकि उनकी अपनी आयु बार-बार विष दिये जाने के कारण सन्दिग्ध थी। किन्तु जो भाष्य विद्यमान है उसमें भी महर्षि की अगाध विद्वत्ता और बुद्धि प्रकट होती है। ऋग्वेद १. १२-१३-१४ तथा अन्य सूक्तों के जिनका देवता अग्नि है जहां अन्य भाष्यकारों ने केवल भौतिक अग्निपरक और उसमें भौतिक अग्नि की स्तुति और पूजा प्रतिपादक अर्थ किये हैं वहां महर्षि दयानन्द ने परमेश्वर और भौतिक अग्नि तथा विद्युत् के विविध रूप में उपयोग परक अत्युत्तम अर्थ सप्रमाण किये हैं। ऋ० १. ५० के सूर्य सूक्त के परमेश्वर, सूर्य और प्राणधर तीन अर्थ प्रायः सब मन्त्रों के महर्षि ने किये थे जिनमें से मुद्रित वेदभाष्य में सबका विस्तार से निर्देश नहीं पर वहां भी दो अर्थों का प्रायः निर्देश है। उदाहरणार्थ ऋ० १. ५० के चतुर्थ मन्त्र को हम ले सकते हैं जो उनके विस्तृत भाष्य में इस प्रकार था तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमाभासि रोचनम् ॥ (ऋ० १. ५०. ४)

पदार्थ—(तरणिः) क्षिप्रतया संप्लविता (विश्वदर्शतः) यो विश्वस्य दर्शयिता (ज्योतिष्कृत्) यो ज्योतिः प्रकाशं बलं विज्ञानं च करोति सः (असि) अस्ति वा (सूर्य) प्रकाशमानः सर्वात्मन् वा (विश्वम्) सर्वं जगत् (आ) समन्तात् (भासि) प्रकाशयति वा (रोचनम्) अभिप्रीतम्।

अन्वय—अयं विश्वदर्शतः तरणिः सूर्यः सविता प्राणो वा ज्योतिष्कृत् असि अस्ति स रोचनं विश्वम् आभासि सर्वतः प्रकाशयतीत्येकः। हे सूर्य चराचरात्मन् परमेश्वर! यस्त्वं तरणिर्विश्वदर्शतः ज्योतिष्कृदसि यतस्त्वं रोचनं विश्वम् आभासि तस्माद् विश्वदर्शत तरणिः ज्योतिष्कृदसीति द्वितीयः ॥

भावार्थ—अत्र श्लेषालंकारः। यथा बाह्याभ्यन्तरस्थान् मूर्तामूर्तान् पदार्थान् सूर्य प्राणौ प्रकाशयतस्तथा ईश्वरः सर्वात्मनो मनः प्रकाशयति ॥

इस प्रकार सूर्य, प्राण और परमेश्वर परक तीन अर्थों का महर्षि भाष्य में निर्देश किया गया है जबकि अन्य भाष्यकारों ने प्रायः केवल सूर्य परक अथवा श्री कपाली शास्त्रीजी जैसे कुछ नवीन भाष्यकारों ने केवल परमेश्वर परक अर्थ किया।

युंजंति ब्रध्नमरुषम् (ऋ० १.६.१) का तुलनात्मक अनुशीलन—ऋ० १.६.१ में निम्न मन्त्र पाया जाता है—

युंजंति ब्रध्नमरुषं चरान्तं परितस्थुषः। रोचंते रोचना दिवि।
(ऋ० १. ६. १)

इस मन्त्र का अर्थ सायणाचार्य ने इस प्रकार किया है—

इन्द्रो हि परमैश्वर्ययुक्तः परमैश्वर्यं च अग्निवाय्वादित्य नक्षत्र रूपेणावस्थानादुपपद्यते। (ब्रध्नम्) आदित्यरूपेणावस्थितम्। (अरुषम्) हिंसकरहिताग्नि-रूपेणावस्थितं (चरन्तम्) वायुरूपेण सर्वतः प्रसरन्तम् इन्द्रं (परितस्थुषः) परितोऽवस्थिताः लोक त्रयवर्तिनः प्राणिनः (युंजति) स्वकीये कर्माणि देवतात्वेन सम्बद्धं कुर्वन्ति तस्यैवेन्द्रस्य मूर्तिविशेषभूतानि (रोचना) रोचनानि नक्षत्राणि (दिवि) द्युलोके (रोचंते) प्रकाशन्ते ॥ इत्यादि स्कंद स्वामी ने अरोचमानम् दीप्तमित्यर्थः शत्रुन् यज्ञान् वा प्रति गन्तारम् परिसर्वतो गच्छन्तम् इन्द्रं स्तातारो यष्टारश्च स्तुतिभिर्हविर्भिश्च सम्बन्धन्ति किंतु दीप्तिस्वाभावकानि नक्षत्राणि इन्द्रस्य प्रभावेन द्युलोके रोचंते दीप्यन्ति (स्कंदस्वामी ऋग्भाष्ये) वेंकट माधव ने ऋगर्थदीपिका में इंद्र परक निम्न व्याख्या की—

युंजंति महांतगम् आरोचमान दिवि चरकम् परितः सर्वतः तस्थिवांसो देवा लोका वा रोचंते चारोचनानि नक्षत्राणि, इंद्र तेजसा संधुक्षितानि।

जहां प्रो० विलसन ने इस मंत्र का अंग्रेजी में अनुवाद सायणाचार्य का अनुसरण करते हुए निम्न शब्दों में किया है—

"The circum stationed (inhabitants of the three worlds) associate with Indra the mighty sun, the indestructive (fire), the moving wind and the lights that shine in the sky.

(Prof. Wilson's Translation)

प्रो० मैक्समूलर ने अरुषम् अरुणम् आदि से घोड़े का ग्रहण किया है जिसका खंडन करते हुए महर्षि दयानंद सरस्वती ने इस मंत्र के तीन अर्थों का निर्देश ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में किया है जो विशेष रूप से द्रष्टव्य और महर्षि की अगाध विद्वत्ता और प्रतिभाशालिता का परिचायक है।

वे लिखते हैं—

(१) ये योगिनो विद्वांसः (परितस्थुषः) परितः सर्वतः सर्वान् जगत् पदार्थान् मनुष्यान् वा (चरन्तं) ज्ञातारं सर्वज्ञम् (अरुषम्) अहिंसक करुणामय रुष-हिंसायाम् ब्रध्नम्) विद्या योगाभ्यास प्रेम भरेण सर्वानन्दवर्षकं महान्तं परमेश्वरम् आत्मना सह युंजन्ति (रोचना):) त आनन्दे

प्रकाशिताः रुचिमयाः भूत्वा (दिवि) द्योतनात्मके सर्व प्रकाशके परमेश्वरे (रोचन्ते) परमानन्दयोगेन प्रकाशन्ते इति प्रथमोऽर्थः ॥

अथ द्वितीयः—

चरन्तम् अरुषम् अग्निमयं ब्रध्नम् आदित्यं सर्वे लोकाः पदार्थाश्च (युंजन्ति) तदाकर्षणेन युक्ताः सन्ति । एते सर्वे तस्यैव (दिवि) प्रकाशे (रोचनाः) रुचिकराः सन्तः (रोचन्ते) प्रकाशन्ते । इति द्वितीयोऽर्थः ।

अथ तृतीयः—

ये उपासकाः (परितस्थुषः) सर्वान् पदार्थान् चरन्तम् (अरुषम्) सर्वमर्मस्थं (ब्रध्नम्) सर्वावयवृद्धिकरं प्राणम् आदित्यं प्राणायामरीत्या दिविद्योतनात्मके परमेश्वरे वर्तमान (रोचनाः) रुचिमन्तः सन्तः (युंजन्ति) युक्तं कुर्वन्ति अतस्ते तस्मिन् मोक्षानन्दे परमेश्वरे रोचन्ते सर्वदैव प्रकाशन्ते ।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द ने मन्त्र की (१) परमेश्वर (२) सूर्य और (३) प्राणपरक अद्भुत व्याख्या की है और इसके लिए ब्रध्नम् इति महन्नामसु पठितम् (निघ० ३.३) असौ वा आदित्यो ब्रध्नोऽरुषः (शत० ३.२) आदित्यो ह वै प्राणः (प्रश्नोप० १.५) इत्यादि प्रमाण दिये हैं। ये अर्थ अत्यन्त सरल संस्कृत में है। अतः विस्तार भय से इनका भाषानुवाद हमें अनावश्यक प्रतीत होता है। जहां सायणाचार्य वेंकट माधव आदि ने केवल इन्द्र देवता परक व्याख्या की है और उसको अग्नि, वायु, आदित्य और नक्षत्र रूप में अवस्थित माना वहां परमेश्वर, आदित्य और प्राण तीनों पक्षों में मन्त्र की इतनी उत्तम संगति लगाई है कि किसी भी निष्पक्ष विद्वान् का उनकी अगाध विद्वत्ता और बुद्धि को देखकर नतमस्तक हो जाना स्वाभाविक है।

"चत्वारि शृंगास्त्रयो अस्य पादाः" (ऋ० ४.५८.३ यजु० ७.९) का अनुशीलन—

इस प्रकरण में महर्षि दयानन्द जी कृत अद्भुत उपर्युक्त मन्त्रार्थ पर तुलनात्मक दृष्टि से प्रकाश डालना चाहता हूं जिसकी अनेकार्थकता को सब भाष्यकारों ने स्वीकार किया है और अग्निः, सूर्यो वा आपो वा गावो वा घृतस्तुतिर्वा ऐसा देवता माना है पर जिसकी महर्षि पतंजलि कृत महाभाष्य में शब्द परक और यास्काचार्यकृत निरुक्त में यज्ञ परक व्याख्या की गई है। सायणाचार्य ने अथ सूर्यपक्षे व्याख्यायते अस्य आदित्यस्य चत्वारि शृंगाणि चतस्रो दिशः एताश्रयणार्थत्वात् शृंगाणीत्युपचर्यन्ते। त्रयो अस्य पादाः त्रयो वेदाः पादस्थानीया भवन्ति गमनस्थानीयत्वात् तथाहि वेदैरशून्यस्त्रिभिरेति सूर्यः (तैत्तिरीय ब्राह्मणे ३. २.९.) इति हि वेदत्रयेण गतिराम्नाता। द्वे शीर्षे अहश्च रात्रिश्चेति द्वे शिरसी। सप्तहस्तासो अस्य। सप्तरश्मयः षड् विलक्षणा ऋतवः एकः साधारण इति वा सप्त हस्ता भवन्ति। त्रिधा बद्धः—त्रिषु स्थानेषु क्षित्यादिष्व ग्नयात्मकत्वेन सम्बद्धः। ग्रीष्मवर्षाहिमन्ताख्यैस्त्रिभिस्त्रेधा बद्धोवा। वृषभो वर्षिता रोरवीति शब्द करोति वृष्ट्यादि द्वारा। स महो महान् देवो मर्त्यान् आविवेश तन्नियन्तृतया। एवं त्ववादिपक्षेऽपि योज्यम् ॥

इस प्रकार निरुक्त की यज्ञ परक व्याख्या को उद्धृत करने के अतिरिक्त सूर्य परक व्याख्या का यत्न किया जिसमें कोई विशेषता नहीं कही जा सकती। अचेतान

सूर्य को सब का नियन्ता मानना तो वैसे ही सामान्य बुद्धि विरुद्ध है। यद्यपि पौराणिक संस्कारवश सायणाचार्य के लिए यह विश्वास साधारण होगा।

महर्षि दयानन्द का अद्भुत पाण्डित्य और बुद्धि चमत्कार इस मन्त्र की व्याख्या में विशेष रूप से प्रकट होता है। अतः महर्षि अतंजलि की शब्द परक और यास्काचार्य कृत यज्ञ परक व्याख्या को उद्धृत करने के अतिरिक्त ऋग्वेद भाष्य में दो अत्यन्त विलक्षण बुद्धि ग्राह्य अर्थ निम्न प्रकार से दिये हैं—

अत्रेश्वर विज्ञानमाह (चत्वारि) चत्वारो वेदाः (शृंगाः) शृंगाणीव (त्रयः) कर्मोपासना ज्ञानानि (अस्य) धर्म व्यवहारस्य (पादाः) पत्तकाः (द्वे) अभ्युदयनिःश्रेयसे (शीर्षे) शिरसी इव (सप्त) पंच ज्ञानेन्द्रियाणि वा कर्मेन्द्रियाणि अन्तःकरणम् आत्मा च (हस्तासः) हस्तवद् वर्तमानाः (अस्य) धर्मयुक्तस्य नित्यनैमित्तिकस्य (त्रिधा) श्रद्धा पुरुषार्थ योगाभ्यासैः (बद्धः) (वृषभः) सुखानां वर्षणात् (रोरवीति) भृशम् उपदिशति (महः) महान् पूजनीयः (देवः) स्वप्रकाशः सर्वसुखप्रदाता (मर्त्यान्) मरणधर्मान् मनुष्यादीन् (आ) समन्तात् (विवेश) व्याप्नोति ॥

अन्वयः—हे मनुष्याः। यो महादेवो मर्त्यान् आविवेश यो वृषभः त्रिधा बद्धो रोरवीति अस्य परमात्मनो बोधस्य द्वे शीर्षे त्रयः पादाः चत्वारि शृंगाः च युष्माभिर्वेदितव्यानि अस्य च हस्तास्त्रिधा बद्धो व्यवहारश्च वेदितव्यः।

भावार्थः—हे मनुष्याः! अस्मिन् परमेश्वर व्याप्ते जगति यज्ञस्य चत्वारो वेद नामाख्यातोपसर्ग निपाताः विश्वतेजसप्राज्ञतुरीय—धर्मार्थं काममोक्षाश्चेत्यादीनि श्टगाणि त्रीणि सवनानि त्रयः कालाः कर्मोपासना ज्ञानानि मनोवाक् शरीराणि चैत्यादीनि पादाः द्वौ व्यवहार परमार्थौनित्यकार्यौ शब्दात्मानौ उदगयनप्रायणीया अध्यापकोपदेशकौ चेत्पादीनि शिरांसि गायत्र्यादीनि सप्तछन्दांसि सप्त विभक्तयः सप्त प्राणाः पंच कर्मेन्द्रियाणि शरीरम् आत्मा चेत्यादयो हस्तास्त्रिषु मन्त्रब्राह्मकल्पेषु उरसि कण्ठे शिरसि श्रवण मनन निदिध्यासनेषु ब्रह्मचर्यसुकर्मसुविचारेषु सिद्धोऽयं व्यवहारो महान् सत्कर्तव्यो मनुष्येषु प्रविष्टोऽस्तीति सर्वे विजानंतु।

यहां निरुक्त और महाभाष्योक्त यज्ञ और शब्द परक दोनों पक्षों के निर्देश के अतिरिक्त ईश्वर ज्ञान और धर्मयुक्त व्यवहार परक मन्त्र की अत्यन्त हृदय ग्राहिणी समन्वयात्मक व्याख्या की गई है जिससे ऋषि दयानन्द की अद्भुत प्रतिभा का भी परिचय मिलता है। यहां ४ शृंगों से ४ वेदों, नाम आख्यात उपसर्ग निपात, विश्व तैजस प्राज्ञ तुरीय, धर्म अर्थ काम मोक्ष इन ४ पुरुषार्थों का (इत्यादि पद के प्रयोग से और भी अर्थों की संभावना ऋषि ने प्रकट कर दी है) त्रयः पादाः से ३ सवनों, ३ भूत भविष्यत् वर्तमान रूप कालों, धर्म उपासना ज्ञान और मन वचन शरीर इत्यादि का २ शीर्षों से व्यवहार, परमार्थ, नित्य और कार्य रूप दो प्रकार के शब्द, उदगयन प्रायणीय, अध्यापक, उपदेशक इत्यादि का, सप्त हस्तासः से गायत्री आदि ७ छन्दों, ७ विभक्तियों, ७ प्राणों, ५ कर्मेन्द्रिय वा ज्ञानेन्द्रिय, शरीर और आत्मा इत्यादि का ग्रहण करके त्रिधा बद्धः से मन्त्र ब्राह्मण कल्प में, छाती कण्ठ और सिर में, श्रवण मनन निदिध्यासन में श्रद्धा पुरुषार्थ, योगाभ्यास और ब्रह्मचर्य शुभ कर्म और सुविचार में सिद्ध यह व्यवहार महान् देव अर्थात सत्कार करने योग्य सर्व सुखदाता है ऐसा बताया गया है।

मन्त्र के इस भाष्य से जहां उनकी प्राचीन आचार्यों और ऋषियों के प्रति भक्ति

प्रतीत होती है वहां उनकी अपनी आर्ष दृष्टि और प्रतिभा का भी (जो प्राचीन ऋषियों से कम नहीं) स्पष्ट परिचय मिलता है।

इडे रन्ते हव्ये काम्ये (यजु० ८.४३) का तुलात्मक अनुशीलन :—

अब मैं यजु० ८.४३ का तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत करता हूँ, जिससे महर्षि दयानन्द जी की अद्भुत प्रतिभा और उनके अर्थ की व्यावहारिक उपयोगिता स्पष्टतया सूचित होती है। यजु० ८.४३ में निम्न मन्त्र पाया जाता है—

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात्॥ (यजु० ८.४३)

इसका सायणाचार्य, उव्वट, महीधर, ग्रिफिथ इत्यादि प्रायः देश विदेश के विद्वानों ने गोपरक अर्थ किया है जिसमें मन्त्र में प्रयुक्त सरस्वति, विश्रुति, ज्योते आदि अनेक विशेषणात्मक सम्बोधन पूर्णतया चरितार्थ नहीं होते और दूर की कल्पना करनी पड़ती है। उदाहरणार्थ सायणाचार्य का इस मन्त्र पर काण्व संहिता अ० ६ में दिया भाष्य इस प्रकार है—

हव्ये काम्य इति दक्षिणेऽस्याः कर्णे यजमानो जपति हव्ये काम्ये इति। सर्वैराहूयत इति हव्या। सर्वैः काम्यत इति काम्या। सर्वैः स्तूयत इति इडा। सर्वैं रमयतीति रन्ता। आह्लादयतीति चन्द्रा। ज्वलति प्रकाशयतीति ज्योता। अदितिरखण्डिता। सरस्वतीति सरः क्षीरं तद्वती सरस्वती। मही महती। विश्रूयत इति विश्रुतिः। अहन्तव्येत्यघ्न्या एवं भूते हे धेनो। त्वदीयान्येतानि नामान्यतिशययुक्तानि। एवं भूतैर्नामभिरभिहित सती देवेषु देवेभ्यः। सुष्ठु कर्म करोतीति सुकृत्। तादृशमाब्रूत (ब्रूहि) (सायणाचार्य कृते काण्व संहिता भाष्ये अ० ६) उव्वट का भाष्य भी लगभग ऐसा ही है। इडा का अर्थ भिन्न और वस्तुतः अशुद्ध रूप में उव्वट और महीधर ने किया है। दोनों ने इडा नाम मनोर्दुहिता तथा गौरुपमीयते। इडेव त्वमसि। ऐसा दोनों ने लिखा है। मनु की पुत्री इडा उसकी तरह तुम बनो। (क्या नित्य अथवा अपौरुषेय वेद में मनु की पुत्री इड़ा का नाम आ सकता है। यह भी इन लोगों ने नहीं सोचा। यह कितने आश्चर्य की बात है। इससे सायणाचार्य का ईड स्तुतौ से सर्वैः– स्तूयत इति इडा यह अर्थ अच्छा है। हव्ये का अर्थ उव्वट ने 'हूयन्ते अस्या विकारा यज्ञेष्विति हव्या।' अर्थात् जिसके दुग्धादि विकारों की यज्ञों में आहुति दी जाती है।

सरस्वती का अर्थ उव्वट ने सरतीति सरः क्षीरं तद्वती। सर इत्युदक नाम सर्तेरिति (निरु० ६.२६) उदक शब्देनात्र क्षीरमुच्यते। विश्रुति का अर्थ विविधं श्रूयत इति विश्रुति। उव्वट।

विविधं श्रूयते स्तूयत इति विश्रुति—महीधरः ग्रिफिथ ने इसका अंग्रेजी अनुवाद इस प्रकार दिया है—

Ida delightful, worshipful, lovable, splen did, shining one, inviolable, full of sap, the mighty one, most glorious. These are thy names O Cow, tell thou the Gods that I act righteously.

(Translation of the Yajurveda by Griffith, P. 79)

अब ऋषि दयानन्द कृत भाष्य को देखिये। उन्होंने इस मन्त्र का पत्नी देवता लिखा और इस प्रकार भाष्य किया है—

पदार्थ—(इडे) स्तोतुमर्हे (रन्ते) रमणीये (हव्ये) स्वीकर्तुमहे (काम्ये) कमनीये (चन्द्रे) आह्लादकारिके (ज्योते) सुशीलेन द्योतमाने (आदिते) आत्मस्वरूपेणाविनाशिनि (सरस्वति) प्रशस्तं सरो विज्ञानं विद्यते यस्यास्तत् सम्बुद्धौ (महि) पूज्यतमे (विश्रुति) विविधाः श्रुतयः श्रवणानि तद्वति (एता) एतानि (ते) तव (अघ्न्ये) हन्तुं तिरस्कर्तुमयोग्ये (नामानि) गौणिक्य आख्याः (देवेभ्यः) दिव्य गुणेभ्यः (मा) माम् (सुकृतम्) सुष्ठु कर्तव्यं कर्म (ब्रूतात्) ब्रूहि।

अन्वयः—हे अघ्न्येऽदिते इडे हव्ये काम्ये रन्ते चन्द्रे विश्रुति महि सरस्वति पत्नि! ते एता नामानि सन्ति त्वं देवेभ्यः मा सुकृत ब्रूतात्॥

भावार्थ—या विद्वद्भ्यः शिक्षां प्राप्तवती विदुषी स्त्री सा यथोक्तया शिक्षया शिक्षते। यतः सर्वा अधर्म मार्गे न प्रवर्तेरन्। परस्परं विद्यावृद्धि, स्वतनयान् कन्याश्च शिक्षिताः कुर्युः (जिज्ञासुसंस्करणे पृ० ७२१) अर्थात् विद्वानों में शिक्षा को प्राप्त विदुषी स्त्री अच्छी तरह सबको शिक्षा दे जिससे अधर्म मार्ग में कोई भी स्त्री प्रवृत्त न हो। सब परस्पर विद्या वृद्धि और पुत्र पुत्रियों को शिक्षित करें।

निष्पक्षपात विचारशील विद्वानों से निवेदन है कि वे ऋषि दयानन्द कृत इस अर्थ की गम्भीरता और व्यावहारिक उपयोगिता का देखें और इस बात पर भी विचार करें कि इस पत्नी परक अर्थ में ज्योते सरस्वति, विश्रुति, महि इत्यादि विशेषण अधिक सगत होते हैं वा गौ के पक्ष में जहां इनको सार्थक करने के लिए बड़ी खेंचातानी करनी पड़ती है। ज्योते का अर्थ सायणाचार्य ज्वलति प्रकाशयतीति ज्योता, (उव्वट) तस्यैव चन्द्रस्य ज्योतिर्ज्योत्स्ना– चांद की चांदनी और महीधर द्युत-दीप्तौ द्योत यति– प्रकाशयतीति ज्योता दकारस्य जः। यह विशेषण वा सम्बोधन गौ पर लगता नहीं। सरस्वती का अर्थ जलवाली सर इति उदक नाम (इस निघण्टु के प्रमाण के आधार पर) करके उदक वा जल का अर्थ क्षीर वा दूध कर देना कैसा विचित्र लगता है जबकि सृगतौ गतेस्त्रयोऽर्था:—ज्ञानं, गमन, प्राप्तिश्च के अनुसार पत्नी के लिये सरस्वति प्रशस्तं सरो विज्ञानं विद्यते यस्यास्तत्सम्बुद्धौ सरस्वति यह सम्बोधन उसकी उत्तम विद्वत्ता का परिचायक है। इस प्रकार पत्नी धर्मों का मन्त्र में कितना उत्तमता से प्रतिपादन किया है, यह विद्वान् स्वयं देख सकते हैं। सरस्वती के पत्नी अर्थ के लिये शतपथ ब्राह्मण २.५.१.११ का योषा वै सरस्वती वृषा पूषा यह अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण है।

शिवा नः शंत मा भव सुमृडीका सरस्वति। माते युयोम संदृशः। (अथर्व ७.६८.३)

यह मन्त्र जो पत्नी को सम्बोधन करते हुए सदासुखदायिनी होने के लिये पढ़ा जाता है और जिस सूक्त के प्रथम मन्त्र में सरस्वती को सम्बोधन करते हुए...

सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः॥

इस रूप में प्रजा वा सन्तान दान का निर्देश है सरस्वती के पत्नी वाचकत्व को स्पष्टतया सूचित करता है।

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे। (यजु० २३.१६) इत्यादि का तुलनात्मक अनुशीलन--

यजुर्वेद के २३वें अध्याय में १६ से ३१ तक के मन्त्र अश्वमेध के प्रकरण हैं जिनकी महीधरादि की अश्लील व्याख्या का ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में खण्डन करते हुए शतपथ ब्राह्मणादि के आधार पर सत्यार्थ का प्रदर्शन किया गया है। महीधरादि की व्याख्या इतनी अश्लील और असंगत है कि उसको उद्धृत करना भी हमें बड़ा अप्रिय प्रतीत होता है।

ग्रिफिथ ने उन कुत्सित अश्लील अर्थों को ही ठीक मानकर अंग्रेजी में उनका अनुवाद ही करना उचित नहीं समझा और महीधर के महिषी स्वयंमेवाश्व शिश्नमाकृष्य स्वयोनौ स्थापयति इन शब्दों को कि पटरानी अश्व के लिंग को अपनी योनि में स्थापित करती है और अंग्रेजी में—

The chief queen then begins the performance of the revolting ceremony.

यह लिखकर टिप्पणी (footnote) दी है। "This and the following nine stanzas are not reproducible even in the semi-obscurity of a learned European language."

(Griffith's translation of the Yajurveda, P. 252)

अर्थात् ये और इसके पश्चात् के नौ मन्त्र इस योग्य नहीं कि इनका एक शिक्षित योरुपीयन भाषा की अर्ध अस्पष्टभाषा में भी अनुवाद किया जा सके।

महर्षि दयानन्द ने गणानां त्वा गणपतिं हवामहे तथा अन्य मन्त्रों के सत्यार्थ को प्रकाशित किया। उसके महत्त्व को समझने के लिये यह जान लेना भी आवश्यक है कि यद्यपि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के भाष्यकरण, शंका समाधानादि विषय प्रकरण में महर्षि दयानन्द जी ने इनमें से कुछ मन्त्रों के महीधर भाष्य को नमूने के तौर पर उद्धृत करके उसकी अश्लीलता को प्रकट किया और शतपथ ब्राह्मणादि के आधार पर ईश्वर वा राष्ट्र परक अर्थों का प्रतिपादन किया है तथापि यही अर्थ न केवल महीधर अपितु सायणाचार्य, और उव्वट ने भी किए हैं। सायणाचार्य का काण्व संहिता भाष्य ८६ अध्याय तक ही उपलब्ध होता है। उसमें ये मन्त्र नहीं हैं किन्तु तैत्तिरीय ब्राह्मण भाष्य में इन मन्त्रों के सायणाचार्य कृत अर्थ पाये जाते हैं जो महीधर के ही समान हैं। उदाहरणार्थ काण्ड ३ प्रपाठक ६ अनुवाक ६ के भाष्य में सायणाचार्य ने लिखा है—

पंचमे ब्रह्मोद्यमुक्तम्। षष्ठ सप्तमयोर्मृताश्वोपचारोऽभिधीयते। तत्रादावश्वसंज्ञपनकालीनानुष्ठेय होमान् विधत्ते। अश्वमेधयाजिनो। श्ववधदोषेणायुःसमाप्तेः पूर्वमेवाकस्मात् प्राणा अपक्रामन्ति। अतस्तत् परिहाराय सप्तम काण्डे चतुर्थ प्रपाठके प्राणाय स्वाहेतियोऽनुवाकस्तत्रत्यैर्मन्त्रैर्जुहुयात्। तेन यजमाने प्राणानवस्थापयति।

(सायणाचार्यस्तैत्तिरीय ब्राह्मणभाष्ये)

अर्थात् पंचम अनुवाक में ब्रह्मोद्य कहा है। षष्ठ और सप्तम अनुवाकों में मृत अश्व की उपचार क्रिया का विधान है। जो अश्वमेध यज्ञ करता है उसके प्राण निश्चित आयु की समाप्ति से पूर्व ही अश्व के वध के दोष के कारण अकस्मात् निकल जाते हैं। इसलिए उसके परिहार के लिए प्राणाय स्वाहा इत्यादि मन्त्रों से हवन करें। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि सायणाचार्य यज्ञों में पशुहिंसा को शास्त्र-

विहित मानते हुए भी स्वीकार करते हैं कि अश्वमेध में घोड़े की हिंसा से जो दोष लगता वा पाप चढ़ता है उससे यजमान के प्राण निश्चित आयु से पूर्व ही अचानक निकल जाते हैं। उसके परिहार के लिये प्राणाय स्वाहा इत्यादि मन्त्रों से हवन किया जाता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने राष्ट्रं वा अश्वमेधः। (शतपथ १३.१.६.३ तैत्तिरीय ३.८.६.४॥ ३.६.४.५) श्रीर्वै राष्ट्रमश्वमेधः (शतपथ १३.२.६.२) इत्यादि प्रमाणों को उद्धृत करते हुए ठीक ही लिखा कि अश्वमेध का अर्थ यज्ञ में अश्व की हिंसा नहीं अपितु राष्ट्र का भलीभांति संचालन हैं, उसकी श्री वा ऐश्वर्य को बढ़ाना है। अतः अश्वमेध में अश्व की हिंसा होती है यह सायणाचार्यादि का विचार ही वस्तुतः अशुद्ध था और उपर्युक्त उद्धरण से सिद्ध है कि वे भी उस पाप के कारण आयुः क्षय मानते थे।

गणानां त्वा गणपतिम्……का भाष्य करते हुए सायणाचार्य लिखते हैं ममेत्येक वचनं पत्नी संघाप्रियम्। अर्थस्तु—अस्माकं पत्नीनां वसो वासयितः तादृश हे अश्व प्रियाणां वस्तूनां मध्ये अत्यन्तं प्रियं त्वां हवामहे वयं पत्न्यः आह्वयामः। निधिपतिम्—शंखपद्मादिनिधि विशेषाणां पालकं त्वाम् आह्वयामः॥

अर्थात् राजपत्नियां मृत अश्व को सम्बोधन करती हुई कहती हैं कि तुम हम रानियों को बसाने वाले प्रियों में प्रिय और निधियों के रक्षक हो। अतः तुम्हें हम पुकारती हैं। मरे हुए अश्व को इस प्रकार पुकारना कितना असंगत है। इस बात को स्वयं अनुभव करते हुए सायणाचार्य लिखते हैं…

"नहि मृतोऽश्वः परमार्थत आह्वातुं शक्यते किं चानेनाह्वानेनाश्वमेनं धुवन्ति चालयन्ति—उत्थापयन्ति। अपि चानेन कालश्वनाश्मेनं निह्नुवत एव उत्थापनमपि मृतस्याश्वस्यापलाप एव। तस्मादश्वस्योपचार इत्यभिप्रायः।'।

—सायणः

अर्थात् वस्तुतः मरे हुए घोड़े को बुलाना सम्भव नहीं। इस प्रकार घोड़े को पुकार कर उसे चलाते व उठाते हैं। मरे हुए घोड़े का उठाना वा चलाना भी संभव नहीं। अतः यह घोड़े का उपचार है—गौण कल्पना मात्र है। इस सारी असंगत प्रक्रिया और व्याख्या पर किसी टीका टिप्पणी की आवश्यकता नहीं।

मृत अश्व के साथ महिषी (पटरानी) के सम्भोग का विधान करते हुए सायणाचार्य इसे बड़ा तप बताते हैं और कहते हैं…

अनेन (सुभगे काम्पीलवासिनी इति) सम्बोधनेन महिषीनेनां तप एव प्रापयति। मृतेनाश्वेन सह भोगार्थमाह्वानं सन्तापहेतुत्वात् तपः स्थानीयम्॥

(सायणाचार्य कृते "तैत्तिरीयब्राह्मणभाष्ये आनन्दाश्रम पूना प्रकाशिते पृ० २२६२)

इस सुभगे इत्यादि सम्बोधन द्वारा पटरानी को ब्रह्मा तप करवाता है। मृत अश्व के साथ संभोग के लिए आह्वान करना सन्ताप का कारण होने से तपः स्थानीय है। इत्यादि।

अत्यन्त जुगुप्सित होने के कारण अनेक उद्धरण देना अप्रिय और अनावश्यक है क्योंकि यह महीधर भाष्य के ही समान हैं जिसे महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में उद्धृत करते हुए उसका खण्डन किया और ईश्वर वा राष्ट्रपरक अर्थ का राष्ट्रमश्वमेधः ज्योतिरेव तद् राष्ट्रे दधाति क्षत्रं वा अश्वः प्रजा वै पशवो गर्भः (शतपथ १३. २. २. ४) इत्यादि शतपथ ब्राह्मण के वचनों के आधार पर सप्रमाण निरूपण किया है।

उव्वट ने भी अपने भाष्य में हे वसो अश्व ममत्वं पतिर्भूयाः । महिषी अश्व-मुपसंवशति । गर्भधारकं रेतः आकृष्य च त्वम् हे अश्व क्षिपसि ॥

(उव्वट कृते यजु० २३. १६ भाष्ये पृ० ४३६ नि० सा०) ऐसा लिखा है ।

इनमें और महीधर के हे वसुरूप अश्व ममपतिस्त्वं भूयाः महिषी अश्वसमीपे शेते ॥ (महीधर कृते यजु० २३. १ भाष्ये) में कुछ भी अन्तर नहीं यद्यपि पूर्ण वाम-मार्गी होने के कारण अधिक बदनाम विचारशील जनता की दृष्टि में महीधर हो गया है । वस्तुतः ये अन्य मध्यकालीन भाष्यकार भी वेदों को इस प्रकार कलंकित करने के कारण महापाप के भागी हैं । वेदों के सत्यार्थ प्रकाश को सप्रमाण प्रस्तुत करने के कारण महर्षि दयानन्द सरस्वती का जितना भी धन्यवाद किया जाय वह थोड़ा ही है । मन्त्रार्थ चन्द्रोदय नामक ग्रन्थ के लेखक गिद्धोर राजकीय श्री व रावणेश्वर संस्कृत विद्यालय के अध्यापक वेद कर्मकाण्डाचार्य पं० दामोदर शर्मा झा ने इन मन्त्रों की राष्ट्रादि परक व्याख्या किस प्रकार की है यह दिखाया जा चुका है । अब सारस्वत सार्व-भौमपण्डित राज परमहंस परिव्राजक स्वामी भगवदाचार्य जी का जो यजुर्वेद पर यजुः संस्कार भाष्य प्रकाशित हुआ है उसकी भूमिका में उन्होंने लिखा है । यजुर्वेद पवित्रे यज्ञ काले त्रयोविंशेऽध्याये के चन मन्त्राः पण्डित श्री महीधरेण उव्वटपण्डितेन च यथा पद्धत्या व्याख्याताः सातीव गर्हिता ॥ वेद ईदृशमर्थं श्रावयितुमुद्यत इति महालज्जास्पदम् । स्वामिदयानन्देन वेदविदुषा सर्व प्रथमं तत्र दृष्टिपातोऽकारि समस्कारि च मन्त्रसमूहार्थः मयाऽप्यत्र यजुः संस्कारभाष्ये तत्तन्मन्त्राणां भाष्यावसरे मद् बुद्धि विभवानुयामिना पथा यावच्छक्यं संस्कारः समाहितः । तत्रौचित्यविवेको विवेकिनां विदुषां सुमेधसां मेधा-धीनः ॥ (स्वा० भगवदाचार्य कृत—यजु : संस्कार भाष्यभूमिकायाम्)

अर्थात् यजुर्वेद में पवित्र यज्ञ काल में २३वें अध्याय के कुछ मन्त्रों की महीधर और उव्वट ने जिस पद्धति से व्याख्या की है वह अत्यन्त गर्हित वा निन्दनीय है । वेद ऐसे अर्थ को सुनाने को उद्यत है यह अत्यन्त लज्जा की बात है । सबसे पहले वेदों के विद्वान् स्वा० दयानन्द जी ने इस पर दृष्टिपात किया और इन मन्त्रों के अर्थ को सुसस्कृत किया – यथार्थ रूप से बताया है । मैंने भी अपनी बुद्धि और शक्ति के अनुसार इन मन्त्रों का सुसंस्कृत अर्थ किया है, वह कहां तक उचित है इसे मेधावी विचारशील विद्वान् ही जान सकते हैं । पण्डितराज स्वा० भगवदाचार्य ने २३वें अध्याय के "गणानां त्वा गणपति हवामहे" इत्यादि मन्त्रों की आध्यात्मिक व्याख्या की है जो पठ-नीय है । उदाहरणार्थ ता उभौ चतुरः पदः सम्प्रसारयाव स्वर्गे लोके (यजु० २३, २०) उव्वट, महीधरादि कृत अश्लील मैथुन परक व्याख्या के स्थान पर उन्होंने निम्न व्याख्या वेद प्रचार विषयक प्रस्तुत की है—

ता (तौ) उभा (उभौ) गुरुशिष्यौ आवाम् (चतुरः पदः) चतुःसंख्याकान् (पदः) पद्यन्ते प्राप्यन्ते धर्माद्या अर्था येस्ते वेदाः । तान् सं प्रसारयाव जगति कल्याणाय प्रचार-याव न (स्वर्गे) स्वः सुखं कल्याणं वा गच्छतति स्वर्गः कल्याणं गते लोके सुखेच्छां वा लोके प्रोर्ण वाथांतान् चतुरः पादान् ज्ञाननिधीन् वेदान् इति भावः । प्रकर्षेणाच्छादयाम प्रचार यावेति भावः । तेन को लाभ इत्याह (वृषा) सर्वेषां तृप्तिप्रदाता (वाजी) ज्ञान-वान् (रेतोधाः) वीर्यधा बलधा शक्तिधा परमेश्वरः (रेतः) ज्ञानं (दधातु) ददातु । रीङ् – संश्लेषणे । ज्ञानं हि सश्लेषयति ब्रह्म सदाचार चेति ॥ (स्वा० भगवदाचार्य कृते यजु : सस्कार भाष्ये २३ अ० पृ० ४३) ।

यह उद्धरण हमने नमून के तौर पर यह दिखाने के लिए दिया है कि स्वा० भगवदाचार्य जी जैसे सनातन धर्माभिमानी सुधारवादी पण्डितराज कैसे उव्वट, मही-धरादि मध्यकालीन पौराणिक वा तान्त्रिक भाष्यकारों के भाष्य को गर्हित वा निन्दनीय मानते हुए महर्षि दयानन्द जी की वेद भाष्य शैली से प्रभावित हुए हैं । उनकी यह आध्यात्मिक व्याख्या महर्षि दयानन्द जी के भाष्य से कुछ भिन्न होते हुए भी उससे विरुद्ध नहीं यह संतोष की बात है ।

महर्षि दयानन्द जी की सूक्ष्मदर्शिता के अन्य उदाहरण उनकी सीरा युंजन्ति कवयो युगा वितन्वते पृथक् । धीरा देवेषु सुम्नया ॥ (यजु० १२. ६७) युनक्त सीरा वि युगातनुध्वं कृते योनौ वपतेहबीजम् । गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत् सृण्यः पक्वमेयात् ।। (यजु० १२. ६८) ।

इन मन्त्रों की उपासना परक व्याख्या में मिलते हैं जो ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के उपासना प्रकरण और यजुर्वेद भाष्य में पाई जाती है । सायणाचार्य, उव्वट महीधरादि अन्य भाष्यकारों ने इन मन्त्रों में केवल कृषि का विधान समझा और वैसा ही भाष्य किया किन्तु सूक्ष्मदर्शी दयानन्द सरस्वती ने उन कृषि परक अर्थों के पीछे उपासना परक अर्थ को समझा और—

(कवयः) विद्वांसः क्रान्तदर्शनाः क्रान्त प्रज्ञाना (धीराः) ध्यानवन्तो योगिनः (पृथक्) विभागेन (सीराः) योगाभ्यासोपासनार्थं नाड़ीः युंजन्ति अर्थात् तासु परमात्मानं ज्ञातुम् अभ्यस्यन्ति तथा (युगा) युगानि योगयुक्तानि कर्माणि (वितन्वते) विस्तारयन्ति य एवं कुर्वन्ति ते (देवेषु) विद्वत्सु योगिषु (सुम्नया) सुखेनैव स्थित्वा परमानन्दं युंजन्ति प्राप्नुवन्तीत्यर्थः ।

इस प्रकार की हृदयंगम आध्यात्मिक व्याख्या की जिससे उनकी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय मिलता है । विस्तार भय से इस प्रकरण को हम यहीं समाप्त करना उचित समझते हैं । यद्यपि सैकड़ों अन्य उदाहरण महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य के महत्व और विशेषताओं के तुलनात्मक दृष्टि से अनुशीलन करते हुए दिए जा सकते हैं ।

१०

ऋषि दयानन्द और कुछ पाश्चात्य भाष्यकार

अनेक पाश्चात्य वेद भाष्यकारों वा अनुवादकों की वेद विषयक मान्यताओं का हम पंचम अध्याय में निर्देश कर चुके हैं जो न केवल परम्परागत आर्य मन्तव्य के विरुद्ध है अपितु पूर्वाग्रह और पक्षपात सूचक और अटकलपच्चू कल्पनाओं पर आश्रित हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने निर्भय होकर इन भ्रान्तिपूर्ण धारणाओं का ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, सत्यार्थ प्रकाश और वेद भाष्य में खण्डन किया। जब उनके ऋग्वेद भाष्य की पं० महेशचन्द्र न्यायरत्न तथा कुछ अन्य महानुभावों ने एकेश्वरवाद आदि केसम्बन्ध में आलोचना की और ग्रिफिथ, हाग, टानी आदि के अनुवादों का प्रमाण दिया तो "भ्रान्ति निवारण" के नाम से उनका उत्तर देते हुए महर्षि ने लिखा कि—

"डा० एम० हाग साहिब की अशुद्ध टीका का हवाला देते हैं, तो यह पण्डित (महेशचन्द्र जी न्यायरत्न) को एक लज्जा की बात है कि प्राचीन सत्य संस्कृत ग्रन्थों को छोडकर इधर उधर कस्तूरिये हिरन के समान भूलते और भटकते हैं। डाक्टर एम० हाग साहिब वा सी. एच. टानी साहिब वा आर. ग्रिफिथ साहब आदि कुछ ईश्वर नहीं कि जो कुछ वे लिख चुके, वह बिना परीक्षा वा विचार के मान लेने योग्य ठहरे ? क्या डा० एम० हाग साहिब हमारे आर्य ऋषि मुनियों से बढ़कर हैं कि जिनको हम सर्वोपरि मान निश्चय करलें, और प्राचीन सत्य ग्रन्थों को छोड देवें, जैसाकि पंडित जी ने किया है। जो उन्होंने ऐसा किया है तो किया करो, मेरी दृष्टि में तो वे जो कुछ हैं सो ही हैं। (भ्रान्ति निवारण पृ० १२)

प्रो० मेक्समूलर अपने समय में प्राच्य विद्या विशारदों के अग्रणी समझे जाते थे किन्तु उनकी अनेक कल्पनाओं और विचारों को महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सप्रमाण अशुद्ध सिद्ध किया। ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के उपासना प्रकरण में युंजन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परितस्थुषः (रोचन्ते रोचना दिवि (ऋ० १.६.१) इस मन्त्र के प्रो० मेक्समूलर कृत अश्व परक अर्थ की कठोर आलोचना करते हुए सायणाचार्य के आदित्यादि परक अर्थ को उसकी अपेक्षा अच्छा बताते हुए महर्षि दयानन्द ने लिखा एवं सति भट्ट मोक्षमूलरेऋग्वेदस्येंगलैण्ड भाषया व्याख्याने यदश्वस्य पशोरेव ग्रहणं कृतं तद् भ्रान्तिमूलमेवासीत्। सायणाचार्येणास्य मन्त्रस्य व्याख्यायामादित्य ग्रहणं। एकस्मिन्नंशे तस्य व्याख्यानं सम्यक् कृतमस्ति परन्तु न जाने भट्ट मोक्षमूलराणामयमर्थ आकाशाद् वा पातालाद् वा गृहीतः। अतो विज्ञायते स्वकल्पना लेसनं कृत मितिज्ञात्वा प्रमाणार्हं नास्तीति।"

(ऋग्वेदादि भाष्य भूमिकाया उपासनाप्रकरणे)

भाषानुवादः—इस मन्त्र के इन अर्थों को नहीं जान के यह मोक्षमूलर साहब ने घोड़े का जो अर्थ किया है सो ठीक नहीं है। यद्यपि सायणाचार्य का अर्थ भी यथावत् नहीं है परन्तु मोक्षमूलर साहब के अर्थ से तो अच्छा ही है क्योंकि प्रो० मेक्समूलर ने इस अर्थ में केवल कपोल कल्पना की है।

प्रो० मेक्समूलर ने Vedic Hymns Vol. I. में अधिकतर मरुद् देवता वाले सूक्तों का अंग्रेजी अनुवाद अपनी टिप्पणियों सहित छपवाया था। जिसमें "मरुतः" का अर्थ Storm Gods वा आंधी के देवता किया था। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के षष्ठ सूक्त के अनेक मन्त्रों के भाष्य में महर्षि दयानन्द ने प्रो० मेक्समूलर अर्थ का निर्देश करके उनकी अशुद्धता का सप्रमाण निरूपण किया। २य मन्त्र के भाष्य में उन्होंने लिखा "शार्मण्य देश निवासिनाऽस्य मन्त्रस्य विपरीतं व्याख्यानं कृतमस्ति।'''तत्कल्पितोऽर्थो व्यर्थवास्तीति। पंचम मन्त्र के भाष्य में प्रो० मेक्समूलर कृत अर्थ का निर्देश करके उन्होंने लिखा है "हे इन्द्र त्वया तीक्ष्ण गतिभिर्वायुभिः सह गूढस्थानस्था गावः प्राप्ता इति मोक्षमूलर व्याख्याऽसंगताऽस्ति कुतः। उस्रेति रश्मि नामसु निघण्टौ १.५ पठितत्वेनात्रैतस्यैवार्थस्य योग्यत्वात्।" अर्थात् प्रो० मोक्षमूलर (मैक्समूलर) की व्याख्या असंगत है क्योंकि निघ० १.५ में उस्रा का अर्थ किरणें दिया है। अतः यहां उसी अर्थ को लेना योग्य है न कि गौ के अर्थ को जैसा कि प्रो० मोक्षमूलर ने लिया है। १.६ १० के भाष्य में उन्होंने मैक्समूलर के किये अर्थ का निर्देश करके लिखा "इयं मोक्षमूलर व्याख्याऽशुद्धास्ति" इत्यादि।

अन्य भी अनेक मरुत् सूक्तों के भाष्य में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने प्रो० मैक्समूलर की (जिसे वे भट्ट मोक्षमूलर के नाम से पुकारते थे) अशुद्धियों का निर्देश किया जिनका उन पर (प्रो० मेक्समूलर पर) अच्छा प्रभाव पड़ा और अपने अन्तिम ग्रन्थ Six Systems of philosophy में उन्होंने स्पष्ट लिखा कि वेदों में इन्द्र मित्र वरुण अग्नि मातरिश्वा प्रजापति नामों से वस्तुतः एक ही परमेश्वर का ग्रहण है। अन्तिम दिनों में उन्होंने स्वामी दयानन्द जी का जीवन चरित लिखने की भी इच्छा परोपकारिणी सभा अजमेर के मन्त्री के नाम लिखे एक पत्र में प्रकट की और लण्डन आर्य समाज मन्त्री के नाम पत्र लिखते हुए आर्य समाज के उद्देश्यादि के साथ अपनी सहानुभूति प्रकट की जैसा कि पहले दिखाया जा चुका है। वे ऋषि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य के अंकों के नियमित ग्राहक थे तथा अपनी "India—what can it teach us". (भारत हमें क्या सिखा सकता है) पुस्तक में उन्होंने ऋषि दयानन्द की ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका का वैदिक साहित्य के उस समय के अन्तिम और मनोरंजक ग्रंथ के रूप में (By no means an uninteresting book—Rigvedadi Bhashya Bhoomika by Swami Dayananda) निर्देश किया था।

प्रो० मैक्समूलर तथा उन जैसे अन्य पाश्चात्य विद्वानों की मौलिक भ्रान्ति मरुतों को Storm Gods वा आंधी तूफान के देवताओं के रूप में समझने की है। मरुतः का निर्वाचन यास्काचार्य ने मरुतो मितराविणो वाऽमितरोचिणो वा महद् द्रवन्तीति (निरुक्त ११.१३) इस रूप में किया है जिससे मितभाषी, अत्यन्त तेजस्वी और बहुत दौड़ने वाले वीर सैनिकों का जो देश रक्षार्थ मरने मारने को सदा उद्यत रहते हैं ग्रहण अत्यन्त स्पष्ट है और मरुतों की शूरवीरता सूचक वर्णनों और उनके लिए नरः मर्याः आदि के प्रयोगों से इस प्रकार के अर्थ का स्पष्ट समर्थन होता है। उदाहरणार्थ निम्न मन्त्रों को उद्धृत करना पर्याप्त होगा।

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् । नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ।

इसका स्वयं मैक्समूलर कृत अनुवाद निम्न है……

Spears are on your two shoulders. in your arms are plac d strength, power and might ! Manly thoughts dwell in your he ds. on your chariots are weapons, and every beauty has been laid on your body."

(Prof. Maxmuller's Translation in the Vedic Hyn ns Vol. 1. P. 340.)

तात्पर्य यह है कि मरुतो ! तुम्हारे दोनों कन्धों पर भाले हैं, तुम्हारी बाहुओं में बल और शक्ति है । तुम्हारे सिर में वीर मानवोचित विचार निवास करते हैं, तुम्हारे रथों में शस्त्र हैं और तुम्हारे शरीर में सब प्रकार की शोभा है ? इस प्रकार के स्पष्ट वर्णनों से जो मरुद् देवता विषयक सैंकड़ों मन्त्रों में पाये जाते हैं किसी भी निष्पक्षपात पाठक को मरुतों की वीर सैनिकता में कोई सन्देह नहीं हो सकता है पर फिर भी प्रो० मैक्समूलर आदि उसका अनुवाद Storm Gods या आंधी तूफान के देवता कर देते हैं । यह कितने आश्चर्य की बात है ?

इसी ५.५७ के दूसरे मन्त्र…

"वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषंगिणः । स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथनाशुभम् ॥ ऋ० ५.५७.२.

का प्रो० मैक्समूलर कृत अर्थ दर्शनीय है…

O you sons of Prishni, you are armed with daggers and spears. you are wise, carrying good bows and arrows and quivers possessed of good horses and chariots. With your good weapons. O Maruts, you go to triumph,

(Prof. Maxmuller's Translation in the Vedic Hymns, Vol. 1, P 340)

अर्थ स्पष्ट है कि हे ! मरुतो तुम कटारियों और भालों से सुसज्जित हो, तुम बुद्धिमान् हो, तुम धनुषबाण और तूणीर वाले हो, तुम्हारे पास अच्छे घोड़े और रथ हैं । तुम अपने शस्त्रों के साथ विजयार्थ प्रस्थान करते हो ।

क्या इस के प्रकार वर्णनों के होते हुए कोई जरा भी सन्देह कर सकता है कि मरुतों से वीर बुद्धिमान् सैनिकों का तात्पर्य है ?

ऋ० १.३९.३ के 'मरुतः' विषयक…

'पराहयत् स्थिरं हथ नरो वर्तं यथा पुरु ।'

इस मन्त्र का प्रो० मैक्समूलर ने अनुवाद किया है…

"When Ye overthrow what is firm, O ye men."

(Vedic Hymns Vol. I, P. 97)

अर्थात् हे मनुष्यो ! तुम जब दृढ़ को भी हिला देते हो । क्या मरुतः का मनुष्य परक अर्थ स्वयं करते हुए उन्हें Storm Gods कहना पूर्वाग्रह का सूचक नहीं ? ऋ० १.८५.८ में मन्त्र आता है—

शूरा इवेद् युयुधो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे । भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसन्दृशो नरः ।

इसका अनुवाद करते हुए प्रो० मैक्समूलर ने लिखा है—

"All beings are afraid of the Maruts. They are men terrible to behold like kings."

(Vedic Hymns Vol. I, P. 127)

अर्थात् सब प्राणी मरुतों से डरते हैं । वे राजाओं की तरह देखने में भयंकर तेजस्वी मनुष्य हैं । यहां मरुतों का मनुष्यपरक अर्थ स्पष्ट है । मूल में 'नरः' का मरुतों के लिये प्रयोग है जिसका प्रो० मैक्समूलर का "Men" यह अर्थ करना सर्वथा उचित ही है । ऋ० १.८६.८ में जिसका देवता मरुतः है उनके लिए 'सत्यशवसः नरः' का प्रयोग किया गया है जिस 'शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ।' का अर्थ प्रो० मैक्समूलर ने —

"You take notice either of the sweat of him who praises you, ye men of true strength or of the desire of the suppliant"

(Vedic Hymns Vol. P. 154)

यहां मरुतों को सत्यशवसः या Ye men of true strength सच्ची शक्तियुक्त मनुष्यो ! यह सम्बोधन किया गया है जो उनके मनुष्य वाचक होने में जरा भी सन्देह नहीं रहने देता तो भी प्रो० मैक्समूलर 'मरुतः' को Storm Gods आंधी तूफान का देवता मानते हुए संकोच नहीं करते और इसी की वे तथा अन्य प्रायः सभी पाश्चात्य विद्वान् रट लगाते हैं । यह आश्चर्य और दुःख की बात है । इनका इस प्रकार का अर्थ अशुद्ध और केवल पक्षपात वा पूर्वाग्रह सूचक तथा महर्षि दयानन्द का

सेनाध्यक्षादयः ॥ ऋ० १.३७.१२
वायुवत् शीघ्रगामिनो जनाः ॥ ऋ० १.३८.३
वायुवद् बलिष्ठाः ॥ ऋ० १.१७२.२
वायव इव शीघ्रं गन्तारो मनुष्याः ॥ ऋ० १.८५.६

इत्यादि वीर मनुष्य सेनाध्यक्ष, सैनिकादिपरक अर्थ सर्वथा उचित है । यहस्पष्ट है । अतः इस संक्षिप्त विवेचन को विस्तारभय से यहीं समाप्त किया जाता है । दुर्भाग्यवश महर्षि दयानन्द का विष के कारण लगभग ५९ वर्ष की आयु में देहावसान हो जाने से वह अथर्ववेद का भाष्य न कर सके तथापि अथर्व ३.३० पर उनके किये अर्थ संस्कारविधि के गृहाश्रम प्रकरण में पाये जाते हैं जिनके साथ ब्लूमफील्ड और ह्विटनी के किये अर्थों को तुलनात्मक रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है । ब्लूमफील्ड और ह्विटनी आदि ने इस सूक्त को पारिवारिक साम्मनस्य वा प्रेम को रखने के लिये Charm वा जादू समझ और वैसा ही शीर्षक देकर भयंकर भूल की यह हम पहले दिखा चुके हैं । उनके सिर पर अथर्ववेद के जादू टोने का वेद होने का भूत सवार था किन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस प्रकार की कोई अशुद्ध भ्रान्तिपूर्ण कल्पना न करते हुए मन्त्रों का सीधा अर्थ जो पारिवारिक साम्मनस्य वा एकता का अत्युत्तम रीति से प्रतिपादक है इन सरल शब्दों में दिया—

सहृदयं साम्मनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥ अ० ३.३०.१

हे गृहस्थो ! मैं ईश्वर तुमको जैसी आज्ञा देता हूं वैसे ही वर्तमान करो जिससे

तुमको अक्षय सुख हो अर्थात् (वः) तुम्हारा (सहृदयम्) जैसी अपने लिये सुख की इच्छा करते और दुःख नहीं चाहते हो वैसे माता पिता संतान स्त्री पुरुष, भृत्य, मित्र, पड़ोसी और अन्य सबसे समान हृदय रहो। मन से सम्यक् प्रसन्नता और वैद विरोधादि रहित व्यवहार को तुम्हारे लिये स्थिर करता हूं। तुम हनन न करने योग्य गाय उत्पन्न हुए बछड़े पर वात्सल्य भाव से जैसे वर्तती है वैसे एक दूसरे से प्रेम पूर्वक कामना से वर्ता करो।

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु सम्मनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्॥

हे गृहस्थो! जैसे तुम्हारा पुत्र माता के साथ प्रीति युक्त मन वाला अनुकूल आचरण युक्त और पिता के सम्बन्ध में भी इसी प्रकार का प्रेम वाला होवे वैसे तुम भी पुत्रों के साथ सदा वर्ता करो। जैसे स्त्री पति की प्रसन्नता के लिये माधुर्य गुणयुक्त वाणी को कहे वैसे पति भी शान्त होकर अपनी पत्नी से सदा मधुर भाषण किया करे।

येन देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः॥४॥

हे गृहस्थो! मैं ईश्वर जिस प्रकार के व्यवहार से विद्वान् लोग परस्पर पृथक् भाव वाले नहीं होते और परस्पर में द्वेष कभी नहीं करते, वही कर्म तुम्हारे घर में निश्चित करता हूँ। पुरुषों को अच्छे प्रकार चिताता हूं कि तुम लोग परस्पर प्रीति से वर्ता कर बड़े धनैश्वर्य को प्राप्त होओ। इत्यादि इस प्रकार कितने सर्वोपयोगी उपदेश पारिवारिक तथा सामाजिक शान्ति और प्रेम विषयक इस सूक्त में पाये जाते हैं जिनकी उत्तमता को इनको Charm incantation वा जादू मानकर ह्विटनी, ब्लूमफील्ड आदि पाश्चात्य विद्वानों ने सर्वथा नष्ट कर दिया है।

वेदों के पाश्चात्य अनुवादकों की अन्य यज्ञादि विषयक भ्रान्त कल्पनाओं का भी महर्षिदयानन्द सरस्वती ने जो सप्रमाण खण्डन अपने सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिकादि में किया उसका निर्देश इस निबन्ध में स्थान-स्थान पर किया जा चुका है अतः विस्तार भय से इस प्रकरण को यहीं समाप्त करना उचित प्रतीत होता है।

११

ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य पर कुछ मुख्य आक्षेप और उनका विवेचन

अब मैं संक्षेप से यह दिखाना चाहता हूं कि स्वामी दयानन्दजी के वेदभाष्य पर कौन कौन से आक्षेप प्रायः किये जाते हैं और उनके अन्दर कितना सार है।

(१) सबसे मुख्य आक्षेप ऋषि के वेदभाष्य पर यह किया जाता है कि उन्होंने देव, इन्द्र, अग्नि, अश्विनौ, रुद्र, मरुतः, सरस्वती आदि शब्दों के, जो देवता वाचक थे, अर्थ अपनी कल्पना से ईश्वर मनुष्यादिपरक लगा दिए हैं।

(२) दूसरा मुख्य आक्षेप यह होता है कि एक ही देवता-विषयक मन्त्रों का स्वामी जी उसी सूक्त में भिन्न भिन्न रीति से व्याख्यान करते हैं, इन्द्र का अर्थ एक ही सूक्त में कहीं ईश्वर, कहीं सूर्य, कहीं वायु, कहीं सभापति, कहीं सेनापति आदि किया है। इसी प्रकार "अश्विनौ" का अर्थ एक ही सूक्त में (उदाहरणार्थ ऋ० ३।३३७ में) कहीं सभासेनेशौ, कहीं कृषि कर्मविद्याव्यापिनौ शिल्पिनौ, कहीं कृतविद्यौ स्त्रीपुंसौ और कहीं अध्यापकोपदेशकौ इत्यादि किया है। इस प्रकार की व्याख्या बड़ी असंगत प्रतीत होती है।

(३) स्वामी दयानन्द जी ने वेदों में विज्ञान का मूल दिखाने का व्यर्थ श्रम किया है। वेदों को धर्म का मूल कथचित् माना जा सकता है, किन्तु उनमें विज्ञान सिद्ध करने की चेष्टा स्वामी दयानन्द की अपनी कपोल कल्पित है। वेद का सम्बन्ध तो केवल पारलौकिक या आध्यात्मिक विषयों के साथ ही है।

(४) स्वामी दयानन्द ने यज्ञ शब्द का प्रयोग जो शिल्प कर्म अध्ययनाध्यापनादि तथा सभा सम्मेलनादि और कहीं कहीं जगत् वा उसके व्यवहार के लिए किया है वह ठीक नहीं है।

(५) स्वामी जी के अर्थों में खींचातानी बहुत है। कई जगह तो बिल्कुल अस्पष्ट हैं तथा उनमें परस्पर संगति नहीं। उनमें पुनरुक्ति दोष भी बहुत पाया जाता है। इसी प्रकार के अन्य अनेक दोष ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य पर लगाये जाते हैं, जिन पर मैं अति संक्षेप से कुछ विचार प्रकट करना पर्याप्त समझता हूं।

सबसे प्रथम खींचातानी विषयक आक्षेप के सम्बन्ध में हमें इस बात को याद रखना चाहिए कि वैदिक संस्कृत का लौकिक संस्कृत से बहुत अधिक भेद है। कुछ उदाहरणों से जो वैदिक कोश निघण्टु से यहां उद्धृत किये जाते हैं यह बात स्पष्ट हो जायेगी। (१) लौकिक संस्कृत में पृथिवी शब्द भूमि वाचक है, किन्तु निघण्टु में उसे हम अन्तरिक्ष के नामों में भी पाते हैं। (२) समुद्र शब्द लौकिक संस्कृत में सागर-वाचक ही है निघण्टु में वह भी अन्तरिक्ष नामों में पठित है। (३) लौकिक संस्कृत में अद्रि,

पर्वत, गिरि आदि शब्द पर्वत वाचक हैं किन्तु निघण्टु में उनका मेघ के नामों में पाठ है। वराह, चमस, ओदन, अश्मा और असुर शब्द का भी जो लौकिक संस्कृत में केवल सूअर, चमचा, चावल, पत्थर और राक्षस के वाचक हैं निघण्टु में मेघ के नामों में पाठ है (४) पुरीष, विष, नमः, हेम, इन्दुः, सत्यम् आयुधानि इन शब्दों का निघण्टु में जल के नामों में पाठ है यद्यपि सब जानते है कि लौकिक संस्कृत में इनके अर्थ सर्वथा पृथक् हैं। लौकिक में अश्व का केवल घोड़ा अर्थ है पर वैदिक साहित्य में उसके "वीर्यं वा अश्वः" (श० २।३। ४।२३) "यजमानो वा अश्वः' (तै० ३।६।२७।४) इन्द्रो वा अश्वः (कौ० ३५।४) "असौ वा आदित्योऽश्वः" (तै० ३।६।२३।२) अग्निरेष यदश्वः (शतः ६।३।३।३२) इत्यादि ब्राह्मण वचनों के अनुसार वीर्य, यजमान' विद्युत, सूर्य अग्नि इत्यादि अनेक अर्थ हैं।

अन्य शब्द का लौकिक संस्कृत में केवल घृत ही अर्थ है किन्तु वैदिक साहित्य में सत्यमाज्यम् (शत० ३३।३ ४।४) रेत आज्यम् (तै० ३।८।२।३।) प्राण आज्यम् (तै० ३। ८।४५।२) (श० ४।३। । ८) छन्दांसि वा आज्यम् (तै० ३।३।५।३) पशव आज्यम् (तै० ।६।३।४) "आत्मा वै यजमानस्याज्यम्" (कौ० ४।४) इत्यादि ब्राह्मण वचनों के अनुसार सत्य, वीर्य, प्राण, छन्द, पशु, आत्मा इत्यादि अनेक उसके अर्थ हैं। इसलिए लौकिक संस्कृत की दृष्टि से वैदिक शब्दों के अर्थ का निर्णय करना और भिन्न अर्थ करने वालों पर खींच तानी का दोष लगाना सर्वथा अनुचित है। हां यदि स्वामी दयानन्द जी केवल अपनी कल्पना के बल पर देव अग्नि इन्द्र अश्विनौ आदि के अर्थ कर डालते, उन अर्थों की पुष्टि में ब्राह्मण ग्रन्थादि के प्रमाण न पाये जाते तो आक्षेप की बात होती किन्तु वस्तुतः ऐसा नहीं है।

अग्नि इन्द्र मित्र वरुणादि शब्द प्रधानतया परमेश्वर वाचक हैं। इस बात को कुछ प्रमाणों द्वारा पहले बताया जा चुका है। "यो देवानां नामधा एक एव तं संप्रश्नं भुवनायन्त्यन्या।"

इत्यादि और भी अनेक स्पष्ट प्रमाण इस विषय में प्रस्तुत किए जा सकते हैं। "इन्द्र", 'देव" शब्द का प्रयोग वेदों में सदाचारी सत्यनिष्ठ विद्वानों के लिए हुआ । यह स्वामी दयानन्द जी की कपोल कल्पना नहीं है अपितु विद्वांसो ह वै देवाः (शत० ३।७।३। ०) सत्यसंहिता वै देवाः (ऐ० ।६) सत्यमया उ देवाः (कौ० २।८) अपहत-पाप्मानो देवाः (श० २। ।३।४) धर्म इन्द्रो राजेत्याह तस्य देवा विशस्त इम आसत इति श्रोत्रिया अप्रतिग्राहका उपसमेता भवन्ति यदस्मिन् विश्वे देवा असीदंस्तस्मात् सदो नाम त उ एवास्मिन्नेते ब्राह्मणा विश्वगोत्रा सीदन्ति" (शत० ३।५।३।५) (शत० ३। ४।३। ४) इत्यादि वचनों से स्पष्ट उसकी पुष्टि होती है। देवो दानाद् व दीपनाद् वा द्योतनाद् वा द्युस्थानो भवतीति वा इस निरुक्ति को भी यहां ध्यान में रखना चाहिए। अब इन्द्रादि शब्द मनुष्य वाचक होते हैं वा नहीं इस विषय की थोड़ी सी विवेचना की जाती है। सायणाचार्यादि पौराणिक भाष्यकार इन्द्र को देवाधिपति और स्वर्गलोक वासी मानते हैं किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने उसके अर्थ परमात्मा आत्मा सभापति (राजा) सेनापति सूर्य विद्युत् इत्यादि किये हैं। परमात्म वाचक इन्द्र शब्द है इसके प्रमाण दिए ही जा चुके हैं इन्द्रिया शब्दों को देखते हुए जिनकी व्युत्पत्ति पाणिनि मुनि के अनुसार इन्द्रियमिन्द्र लिंगमिन्द्र दृष्टमिन्द्र सृष्टमिन्द्र जुष्टमिन्द्र दत्त-मिति वा इस प्रकार है। इन्द्र के आत्मवाचक होने में किसी को भी सन्देह नहीं हो सकता और इसलिए काशिका में भी "इन्द्र आत्मा" यह साफ लिख ही दिया है। एष वा इन्द्रो य एष सूर्यः तपति ॥ शत० २।३।४। २॥ अयं वा इन्द्रो योऽयं वातः पवते। शत ४। २।२।६॥ क्षत्रं वा इन्द्रः॥ कौ० २।८॥ तैत्ति० ३।६। ६।३ इन्द्रो वै यजमानः॥

शत० २। ।२। ॥ इन्द्रोऽग्रं देवतानां पर्यैत्। आगच्छत् स्वाराज्यम्॥ तै० ।३।२।२ ॥ इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठो बलिष्ठः सहिष्ठः सत्तमः पारयिष्णुतमः॥ ए० ७। ६॥ अशनिरिन्द्रः॥ कौ० ६।६ इत्यादि से ऋषि दयानन्द-कृत सब अर्थों का स्पष्ट समर्थन होता है। सेनापति इस अर्थ के लिए "सेनेन्द्रस्य पत्नी" गोपथ उ० २।६ इत्यादि वाक्य देखने योग्य हैं। जहां सेना को इन्द्र की पत्नी बताया है अर्थात् उसे इन्द्र की आज्ञा पर चलने वाला कहा है जिससे इन्द्र का सेनापतित्व स्पष्ट सिद्ध होता है। अब "अश्विनौ" शब्द को लीजिए। पौराणिक भाष्यकार इसका अर्थ वैद्य अश्विनी कुमार करते हैं जिन्हें यमज (जोड़ा) माना जाता है। स्वामी दयानन्द जी ने इसका अर्थ समासेनौ, दम्पती, शिल्पनौ, अध्यापकोपदेशकौ इत्यादि किया है। इसे प्रायः स्वामी जी की मनघड़न्त कल्पना माना जाता है। किन्तु निरुक्त ब्राह्मणग्रन्थ आदि देखने से स्वामी जी के अर्थों की समीचीनता स्पष्ट ज्ञात होती है उदाहरणार्थ निरुक्त में "अश्विनौ" की "यद्व्यश्नुवाते सर्वम्" यह व्युत्पत्ति बताते हुए द्यावापृथिव्यो, सूर्याचन्द्रमसो अहोरात्रौ इत्यादि अर्थ बताये गये हैं। आधिदैविक में जो "द्यावापृथिव्यौ" है आदिभौतिक में वही "द्यौरहं पृथिवी त्वम्" इत्यादि विवाह-प्रकरणोक्त मन्त्र के अनुसार स्त्री पुरुष हैं इस-लिए ऋषि दयानन्द का यह अर्थ निराधार नहीं। "अश्विनौ वै देवानां भिषजौ" (ऐत-रेय । ८) के अनुसार अध्यापकोपदेशकों के मानसिक रोग के वैद्य के समान होने के कारण वह अर्थ करना अनुचित और कल्पित नहीं कहा जा सकता। इस विषय में निम्न वाक्य भी द्रष्टव्य हैं।

"अश्विनावध्वर्यू" (एत० १।१८); (शत० १।१।२।१७); गोपथ उ० २।६ (तै० ३।२।२।१) यहां अश्विनौ का अर्थ अध्वर्यु बताया है जिसकी निरुक्ति यास्काचार्य ने "अध्वर्युः अध्वरं युनक्ति अध्वरस्य नेताऽध्वरं कामयत इति वा॥ (नैगम का० १।३) इन शब्दों द्वारा की है (निघ० २।७) अध्वर का अर्थ अध्वर इति यज्ञ नाम ध्वरतिर्हिंसा कर्मा तत् प्रतिषेधः" कहकर हिंसारहित श्रेष्ठ कर्म के लिये किया है। इसलिए ब्रह्म यज्ञ (अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः, स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः। शत० ११।५।६।२) इत्यादि के संयोजक और नेता अध्यापकोपदेशकों के सिवाय कौन हो सकते हैं? क्या अब भी इस अर्थ को ऋषि दयानन्द जी की मन घड़न्त कहा जायगा?

ऋ० १।१२० के २ य और ३ य १५ मन्त्र इसी अर्थ को स्पष्ट करते हैं। "विद्वांसा हवामहे ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य" अध्यापकोपदेशकौ इस अर्थ का स्पष्ट निर्देश करते है। "अश्विनौ" देवतावाले मन्त्रों में मनसोजवीयान् मन से भी अधिक वेगवान् रथ) अनश्व विद्युद्रथ इत्यादि का वर्णन बार-बार पाये न जाने से अश्विनौ का "शिल्पनौ" अर्थ स्पष्ट तथा ज्ञात होता है। "अश्विनौ" यह शब्द अश्व से भी बनता है जिसके अर्थ "वीर्यं वा अश्वः।" (शत० २।१।४।२३) "वज्रोऽश्वः" (शत १३।१।२।६) इत्यादि हैं अतः सभासैनापति आदि के लिये इसका प्रयोग हो सकता है। "अग्निरेष यदश्वः" (शत० ६।५।३।२२) के अनुसार अश्व का अग्नि अर्थ भी है अतः अग्नि विद्या जानने वाले शिल्पियों के लिये उसका प्रयोग करने में कुछ भी दोष नहीं है। विशेषतः जब कि वेद मन्त्रों में उस विषय का स्पष्ट प्रतिपादन हो। अब मैं "सरस्वती" शब्द को लेता हूं जिसे पौराणिक भाष्यकार एक विशेष देवी का नाम मानते हैं किन्तु ऋषि दयानन्द जी ने उसका अर्थ वेदवाणी और उत्तम विदुषी स्त्री यह किया है। निघण्टु में वाणी नामों में "सरस्वती" शब्द का पाठ है। "वागेव सरस्वती' । (ऐ० २।२४) इत्यादि ब्राह्मण ग्रन्थों के वचनों में भी उस अर्थ का निर्देश स्पष्ट पाया जाता है। "योषा वै सरस्वती वृषा पूषा॥" शत० २।५।१।११ इत्यादि वचनों में उसके स्त्री

अर्थ का स्पष्ट प्रतिपादन है। इसी प्रकार अन्य शब्दों पर विचार करने से हम इसी परिणाम पर पहुंचते हैं कि ऋषिदयानन्द ने अग्नि, इन्द्र, अश्विनौ सरस्वती आदि शब्दों के जो अर्थ किये हैं उनकी पुष्टि न केवल वेद मन्त्रों में दिये हुए निर्देशों से होती है बल्कि ब्राह्मण ग्रन्थादि वैदिक साहित्य से भी उनकी पुष्टि होती है। यहां यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि निघण्टु में "अग्नि इन्द्र अश्विनौ" आदि का "पद नामसु" पाठ है जिसका अर्थ यौगिक और ज्ञान गमन प्राप्ति है। विस्तार के भय से इस विषय में इतना ही पर्याप्त है। (२) दूसरे आक्षेप के विषय में कि "इन्द्र" आदि शब्दों के एक सूक्त में अनेक अर्थों का करना कैसे ठीक हो सकता है! वक्तव्य यह है कि जब इन्द्र अग्नि, अश्विनौ आदि शब्दों के वैदिक साहित्य में बीसों अर्थ हैं जैसे कि ऊपर दिखाया जा चुका है तो एक सूक्त में उन अर्थों का होना कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है। भिन्न-भिन्न अर्थ वाचक होते हुए भी अग्नित्व, इन्द्रत्व आदि उनमें सर्व सामान्य (Common) होने के कारण एक देवता का निर्देश सम्भव है। यह बात लौकिक साहित्य के लिये कुछ नवीन होने के कारण विचित्र मालूम होती है किन्तु वैदिक साहित्य की यह एक विशेषता ही समझनी चाहिए। इस पर यह कहा जा सकता है कि प्रकरण के आधार पर अर्थ करना भी सम्भव नहीं होना। "परमेश्वर आत्मा, सभापति राजा, विद्युत्" इत्यादि भिन्न-भिन्न पदार्थों का एक सूक्त में वर्णन होने पर भी इन्द्रत्व (परमेश्वर्य सम्पन्नत्व आदि) उदाहरणार्थ ऋ० १।५ को लीजिये जिसका देवता इन्द्र है। इस सूक्त में १० मन्त्र हैं जिनमें से प्रथम तीन की व्याख्या स्वामी जी ने ईश्वर और वायु परक, चतुर्थ और पंचम की ईश्वर और सूर्य परक, षष्ठ और सप्तम की विद्वान जीव परक और ८ से १० तक की ईश्वर परक की है। ऐसा करना उपर्युक्त दृष्टि से असंगत नहीं कहा जा सकता क्योंकि इन्द्रत्व सामान्य इन सबके अन्दर है जैसे कि स्वामी जी ने इन्द्र के पद-नामों में पाठ के आधार पर ज्ञान गमन प्राप्ति उसके अर्थ लिये हैं और उसे इन सब अर्थों में घटाया है। (३) वेदों में विज्ञानादि के सम्बन्ध में स्वामी जी का विचार कोई नवीन नहीं है। यह विचार कि वेद केवल आध्यात्मिक और पारलौकिक विषयों से सम्बन्ध रखते हैं सर्वथा अशुद्ध है। वेदों में राज्य सत्ता, प्रजातन्त्र शासन, मातृ भूमि के प्रति कर्त्तव्य इत्यादि विषय पाये जाते हैं यह बात सर्व सम्मत है—यहां तक कि सायणाचार्य ने अथर्वभाष्य भूमिका में अथर्ववेद के विषयों का कौशिक सूत्रादि के आधार पर निर्देश करते हुए उनमें "सेनापत्यादि प्रधान पुरुष जय कर्माणि, शत्रूत्सादितस्य राज्ञः पुनः स्वराष्ट्र प्रवेशकानि, राज्याभिषेकः, कृषिपुष्टिकरादि, शस्त्राद्यभिघातज रुधिर प्रवाहनिरोधकानि, वातपित्त श्लेष्म भैषज्यानि शिरोऽक्षिनासिका कर्णजिह्वा ग्रीवादि-रोग भैषज्यानि, सुख प्रसवकर्माणि जनानामैकमत्य सम्पादकानि सामनस्यानि" इत्यादि का उल्लेख किया है। ये विषय आध्यात्मिक अथवा लौकिक नहीं यह बात स्पष्ट ही है। वेद ज्ञान मनुष्यमात्र के कल्याण के लिये सृष्टि के आरम्भ में करुणामय परमेश्वर की ओर से दिया गया इस सिद्धान्त को स्वीकार करने पर (जैसे कि प्रायः सभी आर्य वा हिन्दू स्वीकार करते हैं) वेद में विज्ञान का भी मूल मानना उचित ही प्रतीत होता है क्योंकि मनुष्य की व्यावहारिक उन्नति के लिये विज्ञान अत्यावश्यक है। वेदों के अन्दर सब विद्याओं का बीज पाया जाता है यह मनुस्मृति के "चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाश्चत्वार श्चाश्रमाः पृथक्। भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिद्धयति ॥ (१२।९७) शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पंचमः। वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूति गुणकर्मतः ॥" (१२।९८) इत्यादि श्लोकों से भी स्पष्ट ज्ञात होता है। आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थवेद का उपवेद होना तथा ज्योतिष आदि का वेदांग होना भी इसी सिद्धान्त का समर्थक है। वस्तुतः निष्पक्षपात दृष्टि से वेदों का अनुशीलन करने पर उनमें पृथिवी के गोल होने,

उसके सूर्य की प्रदक्षिणा करने, चन्द्र के सूर्य रश्मि द्वारा प्रकाशित होने, जल के मित्र और वरुण (Hydrogen ond Oxygen) नामक दो वायुओं से मिलकर बनने, विमान, नौका, यानादि द्वारा तीनों लोकों की यात्रा करने इत्यादि का वहां स्पष्ट वर्णन प्रतीत होता है, जिसके लिये "आयं गौः पृश्निरक्रमीत्, (ऋ० १०।१८९।१) दिवि सोमो अधिश्रितः" (१०।८५।१) "मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिषादसम्। धियं घृताचीं साधन्ता ॥" (ऋ० १।२।७) "अवाङरथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृडीकः स्ववां यात्यर्वाङ् यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिबन्धुरो वातरंहाः ॥ (ऋ० १।११८।१) "अनश्वो जातो अनभीशुरुक्थ्यो रथस्त्रिचक्रः परिवर्तते रजः महत् तद्वो दैव्यस्य प्रवाचनं द्यामृभवः पृथिवी यच्च पुष्यथ ॥" (ऋ० ४।३६।१) इत्यादि सैकड़ों मन्त्रों को उद्धृत किया जा सकता है। यहाँ यह भी स्मरण रखना चाहिए कि वेदों में विज्ञान का मूल पाया जाता है इस बात को और भी अनेक सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वानों (जो आर्यसमाजी न थे) पं० सत्यव्रत सामश्रमी, श्री परमेश्वर अय्यर, श्रीनारायण गौड़, श्री नारायण भवानी राव पावगी, डा० रैले इत्यादि ने अपने त्रयी परिचय, Riks, Message of the 20th Century, Vedic Fathers of Geology इत्यादि ग्रन्थों में स्वतन्त्र रीति से सिद्ध किया है। इनमें से स्वर्गीय पं० सत्यव्रत सामश्रमी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जिन्होंने पदार्थ विज्ञान का मूल वेदों में अनेक मन्त्रों द्वारा सिद्ध करते हुए सायणादि भाष्यकारों के इस विषयक अज्ञान पर शोक प्रकट किया है। 'वस्तुतो ध्वान्ताच्छन्न विज्ञान कालिकानां तेषां सायण महीधरादीनामधिदैवतार्थतोऽपि मन्त्राभिप्रेतं प्रकृत विज्ञानं नैव स्फुरितं सम्यगिति तच्छोच्यमेवाभवत् (ऐतरेयालोचने ॥) ऋषि दयानन्द ने जिन मन्त्रों से वैज्ञानिक तत्त्व निकाले हैं उनके अर्थों में मतभेद सम्भव है किन्तु इसके आधार पर उनकी भाष्य शैली पर आक्षेप अनुचित प्रतीत होता है।

(४) चतुर्थ आक्षेप ऋषि दयानन्द के वेद भाष्य में यज्ञादि शब्दों के विस्तृत अर्थों में प्रयोग पर है। इसे भी ऋषि दयानन्द की कल्पना शक्ति का परिणाम माना जाता है। इसमें संदेह नहीं कि इस विषय में सायणाचार्य आदि भाष्यकारों और ऋषि दयानन्द का बड़ा भारी भेद है। सायण भाष्य में वेद मन्त्रों के केवल कर्म काण्ड परक अर्थ लगाने के लिये शब्दों को संकुचित अर्थों में लिया है यहां तक कि कई बार इतने संकुचित अर्थ को देखकर सचमुच आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता। उदाहरणार्थ नर शब्द का अर्थ ऋग्वेद १। ३१। १५, १। ६९। ४ २। १। ६, ५। ७ इत्यादि सैंकड़ों स्थानों पर सायण केवल यजमान करते हैं। जन शब्द का अर्थ भी ऋ० १। १४०। १२, ५। १६। २, ६। १। ५ आदि में यजमान वा ऋत्विक् किया है, मनुष्य और मानुष शब्दों का भी ऋ० १। ६०। ४, १। १२८। ७, १। १८९। ७, २। २। ७ में यजमान यह अर्थ किया है। सूरि कविभातरिश्वा धीर, पितर गर्भ इत्यादि शब्दों के भी सायणभाष्य में प्रायः सर्वत्र ऋत्विक् वा यजमान ये अर्थ किये गये हैं। इसके विपरीत ऋषि दयानन्द जी के भाष्य में यज्ञ शब्द का अत्यन्त व्यापक अर्थ पाया जाता है और अध्यनयाध्यापन शिल्प सभा सम्मेलन, जगत् इत्यादि अर्थों में उसका प्रयोग किया गया है, जिस पर प्रायः आक्षेप किया जाता है। "हविः" का अर्थ ऋ० १। ११४। ३। में "ग्रहीतुं योग्यं करम्" १। ११४। ८ में "हवींषि" का अर्थ "प्रशस्तानि जगदुपकारकानि कर्माणि" ऐसा किया गया है। कई जगह भक्ति अर्थ लिया है। यज्ञ शब्द का अर्थ करते हुए यजुर्वेद अ० १ के भाष्य में ऋषि दयानन्द ने लिखा है "विद्या ज्ञान धर्मानुष्ठानवृद्धानां देवानां विदुषामैहिकपारमार्थिक सुख सम्पादनाय सत्करणं, सम्यक् पदार्थसम्मेलनविरोधज्ञानसंगत्या

शिल्प विद्या प्रत्यक्षीकरणं नित्य विद्वत्समागमानुष्ठान, शुभविद्या-सुख धर्मादि गुणानां निलयं दानकरणमितियज्ञार्थस्त्रिधा भवति।'' यह अर्थ ''यज्ञ-देवपूजा संगति करण दानषु', इस धात्वर्थ के आधार पर किया गया है और इसे स्वामी जी की मनघड़न्त कल्पना कहना केवल अपना अज्ञान प्रकट करना है। वैदिक और प्राचीन साहित्य में यज्ञ शब्द का ऐसा ही व्यापक अर्थ में प्रयोग है और प्रत्येक श्रेष्ठ कर्म का उसमें अन्तर्भाव हो सकता है ''यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म'' (शत० १।७। १।५) ''यज्ञो हि श्रेष्ठतमं कर्म (तै० ३।२।१।४ ''यज्ञो वै महिमा (शत० ६।३।१।१८) ''पुरुषो वै यज्ञः'' (कौ० १७।७) ''यज्ञो वै भुवनम्'' (तै० ३। ३।७ ५) ''यज्ञो हि सर्वाणि भूतानि भुनक्ति'' (शत० ६।४।१ ११) यज्ञो वा ऋषिः ऋतस्य योनि (शत० १।३।४ १ १६) इत्यादि वचनों से ऋषि के अर्थों की पुष्टि होती है। इन वाक्यों में लोकोपारक सर्वश्रेष्ठ कर्मों को यज्ञ के नाम से पुकारा गया है। अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः'' इत्यादि मनु स्मृति ३। ७० के श्लोक में जिसकी व्याख्या में कुल्लूक भट्ट ने ''अध्यापन शब्देनाध्ययनमपि गृह्यते। जपोऽहुत इति वक्ष्यमाणत्वात्। अतोऽध्यापनमध्ययनं च ब्रह्मयज्ञः। इत्यादि लिखा है इससे ऋषि कृत ''अध्यापनाध्यायन'' रूप अर्थ का स्पष्ट समर्थन होता है। भगवद् गीता के ''द्रव्य-यज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे। स्वाध्याय ज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः॥'' (४।२८) इत्यादि श्लोकों में भी यज्ञ का अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयोग किया गया है, और वर्णाश्रम धर्म पालन के लिए यज्ञ शब्द का उपयोग है। ''दक्षिणा'' शब्द का भी ऋषि दयानन्द ने ऐसे ही व्यापक अर्थ में प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ ''दक्षिणावन्तोऽमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः॥'' (ऋ० १।१२५।६) इस मन्त्र की व्याख्या में ऋषि दयानन्द ने लिखा है ''ये ब्राह्मणा सार्वजनिक सुखाय विद्यासुशिक्षादानं ये क्षत्रिया न्याय्येन व्यवहारेण भय प्रदानं, ये वैश्या धर्मोपार्जितधनस्य दानं ये च शूद्राः सेवादानं कुर्वन्ति ते पूर्णायुषो भूत्वेहा-मुत्रानन्दं सततं भुंजते॥'' ऐसे अर्थों से ऋषि की विशाल-हृदयता का परिचय होता है जो ऋषि के भाष्य की एक विशेषता है।

(५) पंचम ''खींचातानी'' विषयक आक्षेप का बहुत कुछ उत्तर ऊपर आ चुका है। यह आशंका अधिकतर इसीलिये होती है कि हम लोग लौकिक साहित्य की दृष्टि से वैदिक शब्दों के अर्थ समझने का यत्न करते हैं और उनसे विपरीत अर्थ दृष्टिगोचर होने पर उन्हें खींचातानी के नाम से पुकारने लगते हैं। स्वामी जी के भाष्य में विभक्ति व्यत्यय लिंग व्यत्यय वचन व्यत्यय आदि देखकर भी समालोचक ऐसा आक्षेप करते हैं किन्तु ''व्यत्ययो बहुतम्'' इस पाणिनि मुनि के सूत्र और महा-भाष्य में उद्धृत ''सुप्तिङुपग्रहलिंग नराणां काल हलच् स्वर कर्तृ यङा च। व्यत्यय-मिच्छति शास्त्रकृदेषां सोऽपि चसिद्धयति बाहुलकेन''। इस कारिका के अनुसार इसमें आक्षेप की कोई बात नहीं। सायणभाष्यादि में भी ऐसे व्यत्ययों का बहुत स्थानों पर आश्रय लिया गया है। उदाहरणार्थ ''अस्य देवाः प्रदिशि ज्योतिरस्तु······उत्तमं नाकमधिरोहयेमम्।'' इस अथर्व (१।६।२) के भाष्य में सायण अधिरोहय का अर्थ अधिरोहय प्रापयत करते हुए लिखते हैं ''व्यत्ययेन एकवचनम्। ''सपत्ना भवन्तु'' में अस्मत् अर्थ करते हुए छान्दसं हृस्वत्वम् ऐसा लिखा है। वषट् ते पूषन्नस्मिन् सूतौ'' अथर्व २।११।१ के भाष्य में अस्मिन् का अर्थ अस्याम् करते हुए सायण लिखते हैं अस्मिन्निति लिंग व्यत्ययः ''अवैतु पृश्निः शेवलं शुने जरावत्तवे॥ अथर्व २।११।४ के भाष्य में शुने का अर्थ शुनः करते हुए लिखा है षष्ठ्यर्थे चतुर्थी ऐसे

ही सैकड़ों व्यत्यय के उदाहरण सायणाचार्य उव्वटादि के भाष्यों से उद्धृत किये जा सकते हैं। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऋषि दयानन्द ने अर्थ स्पष्टीकरण के लिये कई स्थानों पर लिंग व्यत्यय करके दूसरा अर्थ दिया है जहां उसका उल्लेख किये बिना भी ''अचेतन्यापि चेतन्वत् स्तूयन्ते'' इस निरुक्तोक्त नियम से काम चल सकता था। उदाहरणार्थ ऋ० १। २। के वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधीहवम्।'' इत्यादि मन्त्रों के ईश्वर और वायु दोनों अर्थ बताते हुए वायु पक्ष में ऋषि ने आयाहि का अर्थ ''आयाति'' पाहि का पाति-रक्षयति श्रुधि का श्रावयति अर्थ करके पक्षे व्यत्ययः ऐसा लिख दिया है। यह व्यत्यय केवल वैदिक शैली से अनभिज्ञ पाठकों के स्पष्टीकरणार्थ ही है। इसमें संदेह नहीं। ऐसे व्यत्ययों की संख्या ही ऋषि भाष्य में बहुत अधिक है जो नाम मात्र ही कहे जा सकते हैं। उनकी अधिकता देखकर खींचातानी का आक्षेप न्यायसंगत नहीं। कई जगह भाष्य में अर्थ स्पष्ट नहीं, इस आक्षेप में कुछ सत्य अवश्य है। उदाहरणार्थ ऋ० १। ११६ के ''सद्योजंघामायसी' विश्पलायै धनेहिते सर्तवे प्रत्यधतम्। (मं० १५) ''शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्रा श्वंत पितान्धं चकार (म० १६) इत्यादि के अर्थ स्वामी जी के भाष्य में सर्वथा अस्पष्ट हैं। मेषान् का अर्थ स्पर्धकान् किया है। जिसकी वाक्य में ठीक संगति नहीं बैठती। ''दध्यङयद्‌ह मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णं प्रदयीमुवाच'' (१।११६।१२) इत्यादि के अर्थों में भी कई जगह ऐसी अस्पष्टता है, जिसका कारण अधिकतर यही प्रतीत होता है कि स्वामी जी को अन्य कार्य व्यग्रता के कारण अपने भाष्य को दोहराने का समय नहीं मिल सका। कई स्थानों पर अपने अर्थों के लिए प्रमाण उन्होंने देने आवश्यक नहीं समझे, यद्यपि ब्राह्मण ग्रन्थादि के आधार पर स्वाध्याय करने पर उनके अर्थों की मुझे पुष्टि मिली है।

१०

ऋषि दयानन्द कृत वेद भाष्य पर कुछ मुख्य आक्षेप और उनका विवेचन

श्री सायणाचार्य कृत भाष्यों में अनेक विचित्र यौगिक अर्थ—

महर्षि दयानन्द को दोष देना अन्याय।

अनेक विद्वान् महर्षि दयानन्द कृत वेद भाष्य पर आक्षेप करते हुए कह देते हैं कि उन्होंने वैदिक शब्दों को यौगिक मानकर उनके मनमाने अर्थ कर दिये हैं, अत: उनका भाष्य कल्पित होने के कारण प्रामाणिक नहीं। पहली बात जिसका मैं इस लेख में निर्देश करना चाहता हूँ वह यह है कि वेदों के सब शब्द यौगिक होते हैं, यह महर्षि दयानन्द की अपनी कल्पना नहीं है, अपितु सभी प्राचीन ग्रन्थों में इसका प्रतिपादन है। ब्राह्मण ग्रन्थों में वैदिक शब्दों को यौगिक मान कर ही अक्षरम्, अक्षित, अग्नि, इन्द्र, उदाहरणार्थ अक्षरम् का अर्थ करते हुए शतपथ ६। १। ३। ६ में लिखा है—

तद् यदक्षरत् तस्मादक्षरम् ॥

जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण १। ४। ३। ८ में कहा है—

कतमत् तदक्षरमिति। यत् क्षरन्नाक्षीयतेति इन्द्र इति।

(जै० उ० १। ४। ८)

अक्षिति का अर्थ श्रद्धा करते हुए कौषीतकी ब्राह्मण में कहा है—

श्रद्धं व सकृदिष्टस्याक्षितिः। स यः श्रद्दधानो यजते तस्येष्टं न क्षीयते।

(कौ० ७। ४)

अग्नि का यौगिक अर्थ करते हुए शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

स यदस्य सर्वास्याग्रमसृज्यत तस्मादग्रिरग्रिर्ह वै तमग्निरित्याचक्षते परोक्षम्।

(शत० ७। ११। ११)।

अनुमति का अर्थ पृथिवी करते हुए तैत्तिरीय ब्रा० में कहा है—

इयं पृथ्वी वा अनुमतिः। इयमेवास्मै राज्यमनुमन्यते।

(तैत्ति० १। ६। १। ३)

अनुमति का पृथिवी अर्थ करते हुए शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

इयं पृथिवी वा अनुमतिः स यस्तत्कर्म शक्नोति कर्तुं यच्चिकीर्षतीयं हास्मैतदनुमन्यते ॥

(शत० ५। २। ३। ४)

अश्विनी का अर्थ द्यावापृथिवी करते हुए शतपथ में कहा है—

इमे ह वै द्यावापृथिवी प्रत्यक्षमश्विनाविमे हीदं सर्वमश्नुवाताम्।

(शत० ४। १। ४। १६)

इन्द्र का अर्थ करते हुए तैत्तिरीय में कहा है—

अस्मिन् वा इदमिन्द्रियं प्रत्यस्थादिति। तदिन्द्रस्येन्द्रत्वम् ॥

(तै० २। २। १०। ४)

इन्द्र का अर्थ करते हुए शतपथ में लिखा है—

इन्धो वै नामैष योऽयं दक्षिणेऽक्षान् पुरुषः तं वा एतमिन्धं सन्तमिन्द्र इत्याचक्षते परोक्षेणेव।

(शत० १४। ६। ११। २)

पूषा का पृथिवी और वायु अर्थ करते हुए शतपथ में कहा है।

इयं पृथिवी वै पूषा इयं हीदं सर्वं पुष्यति यदिदं किंच।

(शत० १४। ४। २। २५)

अयं वै पूषा योयं वातः पवते एष हीदं सर्वं पुष्यति ॥

(शत० १४। २। १। ६)

रुद्र का अर्थ करते हुए शतपथ में कहा है—

यदरोदीत् तस्माद् रुद्रः। (शत० ६। १। ३। १०)

आज्य का अर्थ करते हुए ऐतरेय ब्रा० में कहा है—

ते वै प्रातराज्यैरेवाजयन्त आयन् यदाज्यैरेवाजयन्त आयंस्तदाज्यानामाज्यत्वम् ॥

(एत० २। ३। ६)

"आदित्याः" का अर्थ प्राणाः करते हुए जैमिनीय उपनिषत् में कहा है—

प्राणा वा आदित्याः। प्राणा हीदं सर्वमाददते ॥

(जै० उ० ४। २। ६)

ऐसे ही सैंकड़ों अन्य प्रमाणों को उद्धृत किया जा सकता है, किन्तु लेखविस्तार भय से अभी इतने ही यह दिखाने के लिए पर्याप्त हैं कि ब्राह्मण ग्रन्थों में वैदिक शब्दों को यौगिक मानकर ही उनके अनेकार्थ किये गये हैं।

निरुक्त १। १२ में यास्काचार्य ने स्पष्ट कहा है—

तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्त समयश्च ॥

अर्थात् सब नाम धातुज-यौगिक हैं यह शाकटायन आचार्य नामक वैयाकरण का सिद्धान्त है और यही नैरुक्त सिद्धान्त है। पतञ्जलि मुनि ने भी महाभाष्य ३। ३। १ में इसी बात को इन शब्दों में कहा है—

नाम च धातुजमाह निरुक्ते, व्याकरणे शकटस्य च तोकम्। नैगमरूढिभवं हि सुसाधु ॥

अर्थात् निरुक्त में संज्ञाओं को धातुज वा यौगिक कहा है और यही वैयाकरण शाकटायन का सिद्धान्त है।

इसी प्रकार वैदिक शब्द का यौगिक और लौकिक योगरूढ़ि होते हैं। इसी यौगिकवाद का आश्रय लेकर महाभाष्यकार ने "भोगैः" का अर्थ अ० ५। १। ९ में शरीरैः "सप्त सिन्धवः" का अर्थ सप्तत्रिभक्त्या, सखायः का अर्थ वैयाकरण इत्यादि किया है। भर्तृहरि ने वाक्यपदीय २। १७। ५ में गौः का अर्थ करते हुए कहा है—

कैश्चिन्निर्वचनं भिन्नं गिरतेर्गर्जतेर्गमेः।
गवतेर्गदतेर्वापि गौरित्यत्रानुदर्शितम्॥

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि वैदिक सब शब्द यौगिक हैं। यह प्राचीन सर्व-शास्त्र सम्मतसिद्धान्त है जिसका महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आश्रय लेकर आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक दृष्टि से शब्दों के अनेक अर्थ किये। यह उनका स्वय कपोल-कल्पित वा मनघड़ंत मन्तव्य नहीं है।

अब मैं यह दिखाना चाहता हूँ कि स्वयं श्री सायणाचार्य ने (जिनके भाष्य को हमारे बहुत से पौराणिक विद्वान् भाई सर्वथा प्रामाणिक मानते हैं) वैदिक शब्दों को यौगिक मानकर उनके अनेक स्थानों पर कैसे विचित्र अर्थ कर दिये हैं।

(१) अश्वान्=लोकान्—ऋग्वेद २। ३४। ३ "उक्षन्ते अश्वां अत्यां इवाजिषु। इस मन्त्र में "अश्वान्" यह शब्द आया है जिसका अर्थ सायणाचार्य जी ने अशूङ्—व्याप्तौ को लेकर "व्याप्तान् लोकान्" यह किया है।

(२) धेनुम्=मेघम्—ऋ० २। ३४। ६ में "धेनुम्" शब्द आया है जिसका अर्थ सायणाचार्य जी ने उदकपानेन प्रीणयितारं मेघम्" इस निरुक्ति के द्वारा "मेघम्" किया है। धेट-पाने से धेनु शब्द बनाकर उसका अर्थ यहां मेघ किया गया है।

(३) वृक्षः=मेघः—ऋ० ५। ५४। ६ में वृक्ष शब्द आया है जिसका अर्थ सायणाचार्य जी ने "वृश्च्यते विदार्यते इति वृक्षो मेघः" ऐसा लिखा है ओव्रश्चू-छेदने।

(४) अश्वान्=उदकसंघातान्—ऋ० ५। ५९। १ में "अश्वान्" यह शब्द आया है जिसका अर्थ श्री सायणाचार्य ने "व्यापकान् उदकसंघातान्" जल समूह यह किया है अशूङ् व्याप्तौ।

(५) वयः=अश्वाः—ऋ० ५। ५३। ३ में वयः शब्द आया है जिसका लौकिक संस्कृत में अर्थ पक्षी होता है किन्तु श्री सायणाचार्य ने उसका अर्थ गन्तारो अश्वाः" जाने वाले घोड़े किया है क्योंकि वह "वी गतिव्याप्तिप्रजन कान्त्यसनखादनेषु" से बनता है।

(६) नृभिः=अश्वैः—ऋ० ४। ८७। ४ में "नृभिः" यह शब्द आया है जिसका श्री सायणाचार्य ने "नृभिः' स्वनेतृभिरश्वैः" यह विचित्र अश्वपरक अर्थ णीन्-प्रापणे से मानकर किया है। यदि महर्षि दयानन्द के भाष्य में कहीं नृभिः का अर्थ अश्वैः होता तो हमारे पौराणिक विद्वान् कितना उसका उपहास करते और इसे कपोल कल्पित बताते, यह लिखने की आवश्यकता नहीं।

(७) द्यौः=शत्रुः—सब जानते हैं कि साधारणतया संस्कृत में द्यौः शब्द का अर्थ द्युलोक वा आकाश होता है किन्तु ऋ० ६। ६६। ८ में आये "द्यौः" शब्द का

अर्थ श्री सायणाचार्य ने द्यौः—दीप्तस्य विजिगीषोर्वा शत्रोः" इस प्रकार विजिगीषु शत्रु का किया है। दिवु क्रीडाविजिगीषा व्यवहार द्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्न कान्तिगतिषु इस धात्वर्थ को लेकर।

(८) वस्त्राणि=तेजांसि सब जानते हैं कि लौकिक संस्कृत में वस्त्र का अर्थ कपड़ा होता है किन्तु ऋ० १०। १। ६ में वस्त्राणि का अर्थ श्री सायणाचार्य ने "वस्त्राणि आच्छादकानि तेजांसि" इस प्रकार तेज किया है "वस आच्छादने" से वस्त्र शब्द बनता है।

(९) रयीणाम्=यजमानानाम् रयि का अर्थ लौकिक संस्कृत में धन प्रसिद्ध है किन्तु ऋग्वेद ९। १०१। ६ में आये "रयीणाम्" का अर्थ श्री सायणाचार्य ने "रयीणाम् हविषो दातॄणाम् यजमानानाम्" इस प्रकार हवि को देने वाले यजमानों का यह किया है। रयि को रा-दाने से बनाया गया है।

(१०) जन्तुः जनयिता उत्पादकः जन्तु का लौकिक संस्कृत में जानवर यह अर्थ होता है किन्तु ऋ० ९। ६७। १३ में आये "जन्तु" का अर्थ श्री सायणाचार्य ने जन्तुः जनयिता वा उत्पादक" किया है।

(११) देवेषु=स्तोतृषु ऋ० ९। ६७। १३ में "देवेषु" यह पद आता है जिसका अर्थ सायणाचार्य ने "देवेशु" स्तोत्रकारिषु कर्म कुर्वाणेषु वा अस्मासु" इस प्रकार "स्तुति करने वाले अथवा कर्म करने वाले हम में" यह किया है। महर्षि दयानन्द के "विद्वांसो हि देवाः" शत० ३। ७। ३। १०) सत्य संहता वै देवाः (ऐत० १६) सत्यमया उ देवाः (कौषीतकी ब्रा० २।८) अपहतपाप्मानो देवाः (शत० २। १। इत्यादि प्रबल और स्पष्ट प्रमाणों के आधार पर 'देवाः" का सत्यनिष्ठ विद्वान् यह अर्थ करने पर शोर मचाने वाले सनातनधर्माभिमानी विद्वानों को अपने परम प्रामाणिक वेदभाष्यकार श्री सायणाचार्य के 'देवेषु" के "स्तोत्रकारिषु कर्म कुर्वाणेषु वा ऽस्मासु" स्तुति करने वाले या कर्म करने वाले हम मनुष्यों में इस अर्थ पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

(१२) विष्णुः=अग्निः ऋ० १०। १। ३ में विष्णु शब्द आया है जिसका अर्थ श्री सायणाचार्य ने "व्यापनशीलो ज्ञानादिगुणयुक्तोऽग्निः" व्यापक ज्ञानादिगुणयुक्त अग्नि किया है। विष्लृ व्याप्तौ से विष्णु शब्द को यौगिक मानकर ही यह अर्थ संभव है। अग्नि और विष्णु को पृथक् २ देवता मानने पर यह कैसे संभव है, विद्वान् विचार करें।

(१३) देवासः=ऋत्विग् यजमानाः ऋग्वेद १०।७।७ में 'देवासः' शब्द आया है जिसका अर्थ श्री सायणाचार्य ने इन्द्रादि द्युलोकवासी देव न करते हुए "हविषां दातार ऋत्विग् यजमानाः" अर्थात् हवियों को देन वाले ऋत्विक् और यजमान यह किया है। "देवो दानाद् व दीपनाद् वा" इत्यादि निरुक्तानुसार यहां देव शब्द को दा दाने से मानकर ऋत्विक् यजमान मनुष्यपरक अर्थ किया गया है। (इस पर भी हमारे सनातन धर्माभिमानी विद्वानों को विशेष ध्यान देना चाहिए जो महर्षि दयानन्द सरस्वती के देव के विद्वान् मनुष्य परक अर्थ का खण्डन करने में तत्पर रहते हैं और देवों की पृथक् योनि मानते हैं।

(१४) सविता=सोमः ऋ० ।९।६७।२५ में सविता शब्द आया है जिसका अर्थ श्री सायणाचार्य ने "सर्वस्य प्रेरक हे देव द्योतमान सोम" इस प्रकार सोमपरक

किया है। सबके प्रेरक सोम। षू—प्रेरणे (तुदा०) से सविता शब्द को मानकर यह यौगिक अर्थ किया गया है।

(१५) ब्रह्म=सोमः—ऋ० ९।६७।२४ में 'ब्रह्मसवैः" यह शब्द आया है जिसका अर्थ श्री सायणाचार्य ने ब्रह्म सोमः तस्याभिषवैः ऐसा किया है।

(१६) रामम्=शार्वरं तमः—रात्रि का अन्धकार— ऋग्वेद १०।३।३ में "रामम्" शब्द आता है जिससे पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र आदि पौराणिक विद्वानों ने श्री रामावतार सिद्ध करने का दुस्साहस किया है, किन्तु इनके परम प्रामाणिक वेद-भाष्यकार श्री सायणाचार्य ने रामम् का अर्थ "कृष्णं शार्वरं तमः" काला रात्रि का अन्धकार यह किया है। निघंटु १।७ में राम्या-रात्रिनाम यह स्पष्ट लिखा है। अब श्री सायणाचार्य जी के रामम् के अर्थ को ठीक माना जाए अथवा आधुनिक अवतारवाद को सिद्ध करने वाले पौराणिक विद्वानों के? श्री सायणाचार्य के भक्त विद्वान् स्वयं निर्णय करें।

(१) जारः=अग्निः—ऋग्वेद १०।३।३ में ही "जारः" यह शब्द भी आया है जिसका अर्थ लौकिक संस्कृत में व्यभिचारी होता है। अतः श्री अम्बिकादत्त जी व्यास, पं० ज्वालाप्रसाद जी मिश्र इत्यादि अवतारवादी पौराणिक विद्वानों ने अपने ग्रन्थों में···

"भद्रो भद्रया सचमान आगात्
स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्
सुप्रकेतैः द्युभिरग्निर्वितिष्ठन्
उशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात् ॥"

(ऋ० १०।३।३)

व्यभिचारी रावण यह अर्थ किया है किन्तु श्री सायणाचार्य ने राम के 'शार्वरं तमः" रात्रि के अन्धकार इस अर्थ की तरह जारः का भी यौगिक "जरयिता शत्रूणाम् अग्निः" अर्थात् शत्रुओं का नाशक अग्नि यह अर्थ किया है। अब किसके अर्थ को हमारे पौराणिक भाई अधिक प्रामाणिक मानेंगे? वही निर्णय करें।

(१८) यतयः=मेघाः—ऋ० १०।२७।७ में ' यद् देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ये शब्द आये हैं जिसमें "यतयः" का सुप्रसिद्ध "सन्यासी" यह अर्थ महर्षि दयानन्द जी ने संस्कार विधि के संन्यासाश्रम प्रकरण में करते हुए लिखा है कि 'हे संन्यासियो! तुम सब भुवनस्थ गृहस्थादि मनुष्यों को विद्या और प्रकाश से संयुक्त किया करो, यही तुम्हारा परम धर्म है" किन्तु यह देखकर परम आश्चर्य होता है कि श्री सायणाचार्य ने यततः के संन्यासिपरक इस सुप्रसिद्ध अर्थ का ग्रहण न करके उसका अर्थ वृष्ट्या नियमयंतीति वा वर्षणेन यातयन्तीति वा यतयो मेघाः" इस प्रकार विचित्र रूप में कर दिया है।

(१९) युवतिम्=आहुतिम् ऋ० १०।५।४ में "युवतिम्" शब्द आया है जिसका अर्थ लौकिक संस्कृत में युवति वा जवान स्त्री प्रसिद्ध है किन्तु श्री सायणाचार्य ने उसका "आत्मनो मिश्रयन्तीमाहुतिम्" इस प्रकार की व्युत्पत्ति से लेकर आहुतिपरक विचित्र अर्थ कर दिया है। इसे युमश्रणे इस धातु से बनाया गया है।

(२०) गौः=अग्निः—यजु० ३।६ के भाष्य में गौः का अर्थ तत्तद् यजमानगृहेषु गन्ता अग्निः" इस प्रकार अग्नि किया है।

(२१) वायवः=वत्साः—यजु० १।१ के भाष्य में सायणाचार्य ने वायवः का अर्थ वान्ति गच्छन्तीति वायवः मातृभ्यः सकाशादन्यत्र गन्तारो वत्सा उच्यन्ते। इस तरह बछड़े किया है।

(२२) ऋषिः=गौः—यजु० ३।१६ में "ऋषिम्" आया है जिसका अर्थ श्री सायणाचार्य ने "ऋ गतौ दोहनस्थानं गच्छतीति ऋषिः" इस प्रकार गौ किया है।

(२३) वसुभिः=तेजोभिः—ऋग्वेद १०।३।२ में वसुभिः यह शब्द दिवो वसुभिररतिर्विभाति इस मन्त्र के अन्दर आया है जिसका अर्थ पौराणिक विद्वान् ८ वसु-परक करते हैं, किन्तु श्री सायणाचार्य ने इसका अर्थ "वासयितृभिराच्छादकैः स-धुक्षणसमर्थैरात्मीयैस्तेजोभिः" इस प्रकार "आच्छादक तेजों से" यह किया है। वस आच्छादने को लेकर यह अप्रसिद्ध यौगिक तेज परक अर्थ किया है।

(२४) वर्णैः=तेजोभिः—वर्ण शब्द का प्रयोग संस्कृत में ब्राह्मणादि ४ वर्णों अथवा रंगों के लिए प्रसिद्ध है, किन्तु सायणाचार्य ने ऋग्वेद १०।३।३। के भाष्य में वर्णैः का अर्थ "वारकैरात्मीयैस्तेजोभिः" इस प्रकार वृञ्-आवरणे (चुरा०) से वर्ण शब्द को मानकर यौगिक तेज अर्थ किया है।

(२५) देवजनाः=यजमानाः— ऋग्वेद ९।६७।२ में "पुनन्तु मा देवजना" इस मन्त्र में देवजनाः शब्द आया है जिसका अर्थ श्री सायणाचार्य ने देवानां जनः प्रादुर्भावो येषां यज्ञेष्विति देवजना यजमानाः" इस प्रकार किया है।

(२६) वरुणः=अग्निः—ऋ० १०।१२।८ में "वरुणाय" शब्द आया है जिसका अर्थ श्री सायणाचार्य ने "सर्वेषां पापानां निवारयित्रे अग्नये" इस प्रकार अग्निपरक किया है।

(२७) अक्तून्=कृष्णान् शत्रून्—ऋग्वेद १०।१।२ अक्तून् शब्द आया है जिसका अर्थ निघण्टु में "अक्तुरिति रात्रिनाम" लिखा है। श्री सायणाचार्य ने अक्तून् का अर्थ "रात्रिवत् कृष्णान् शत्रून्" रात की तरह काले शत्रु यह किया है।

(२८) नदस्य=मेघस्य ऋ० १।१७९।४ में "नदस्य" का अर्थ श्री सायणाचार्य ने "शब्दवतो मेघस्य" इस प्रकार मेघ परक किया है। नद-अव्यक्ते शब्दे।

इस प्रकार हमने २८ उदाहरण श्री सायणाचार्य कृत अनेक विचित्र यौगिक अर्थों के दिए हैं। यदि इन अर्थों को प्रमाणिक माना जा सकता है तो महर्षि दयानन्द जी कृत ब्राह्मणादि आर्ष ग्रन्थों के आधार पर किये प्रकरणादि संगत यौगिक अर्थों पर आक्षेप करने का हमारे पौराणिक विद्वान् भाईयों को क्या अधिकार है?

१३

उपसंहार

महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य की विशेषताएं

उपसंहार के रूप में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य की निम्न विशेषताएं अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं जो सम्पूर्णतया अन्य किसी के भाष्य में नहीं पाई जातीं।

(१) वेदों के इस सर्व शास्त्र सम्मत सिद्धांत का कि वे नित्य ईश्वरीय ज्ञान रूप तथा सार्वभौम, सर्वजनोपयोगी शिक्षाओं का भण्डार हैं महर्षि के भाष्य से ही पूर्णतया समर्थन होता है।

(२) बुद्धिपूर्वा वाक्य कृतिर्वेदे। इस वैशेषिक शास्त्र के कथनानुसार महर्षि के भाष्य में जितनी बुद्धि सगत व्याख्या दिखाई देती है तथा अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण आदि शब्दों की विशेषणादि को ध्यान में रखते हुए आध्यात्मिक, आधिभौतिक वा आधिदैविक दृष्टि से अनेकार्थ परक व्याख्या पाई जाती है वह अन्य भाष्यों में दृष्टि-गोचर नहीं होती।

(३) प्रत्येक मन्त्र भाष्य के प्रारम्भ में विषय का संक्षेप से निर्देश और आध्यात्मिक, आधिभौतिक, और आधिदैविक अनेकार्थ सूचक पदार्थ देकर सर्व साधारण के लाभार्थ भावार्थ का निर्देश यह क्रम महर्षि दयानन्द के भाष्य में ही पाया जाता है। जिससे अपनी-अपनी योग्यता के अनुसार सब लाभ उठा सकें।

(४) अनेक मन्त्रों की पारमार्थिक और व्यावहारिक अथवा आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक व्याख्या महर्षि के भाष्य में श्लेषालंकार का आश्रय लेकर पाई जाती है जिसको "त्रयोऽर्थाः सर्व वेदेषु" आदि के द्वारा श्री आनन्द तीर्थादि आचार्यों ने भी स्वीकार किया था।

(५) वेद में विविध विद्याओं का मूल पाया जाता है। इस बात की पुष्टि महर्षि दयानन्द के भाष्य में जितनी उत्तमता से पाई जाती है उतनी अन्य भाष्यों से नहीं जिनमें अधिकतर यज्ञ परक ही व्याख्या की गई है अथवा कुछ थोड़े से भाष्यों में केवल आध्यात्मिक। इन ५ विशेषताओं का निर्देश प्रसंग वश पहले भी किया जा चुका है। उपसंहार के रूप में उनका पुनः निर्देश करना स्मरण कराने के लिए उचित समझा है। इनके अतिरिक्त निम्नलिखित अन्य विशेषताओं का भी निर्देश किया जा सकता है।

(६) इस भाष्य में लौकिक और वैदिक शब्दों के भेद को ध्यान में रखकर यास्काचार्य, पाणिनि, पतंजलि आदि ऋषि मुनियों के आधार पर वेद के शब्दों के लिए समस्त वैदिक नियमों का आश्रय लिया गया है। निघण्टु, ब्राह्मण ग्रन्थों आदि के आधार पर इसमें वैदिक शब्दों की व्याख्या की गई है न कि सायणाचार्यादि अनेक

भाष्यकारों की तरह अधिकतर लौकिक व्याकरण वा कोषों के आधार पर।

(७) वेद में आये नाम शब्दों को धातुज मानकर (जैसे कि निरुक्तकार यास्काचार्य और महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि आदि का सिद्धान्त है) प्रकरणादि के आधार पर उनके सभी संभव अर्थों का निरूपण पदार्थ में किया गया है। निर्वचन भेद से भिन्न २ अर्थों का निरूपण भी इस भाष्य में मिलता है। इस विषय में महाविद्वान् और सुप्रसिद्ध दाक्षिणात्य योगी श्री कपाली शास्त्री जी ने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक के सिद्धांजनभाष्य की भूमिका में ठीक ही लिखा है कि—

"यास्क प्रतिपादितं वेदपदानां यौगिकत्वं नैरुक्तमतं गूढार्थं चिन्तकानाममूल्यं रहस्योद्घाटन द्वारं भवति। वेद पद यौगिकत्व प्रतिपादकं नैरुक्तपक्षमवलम्ब्य वैदिक धर्मस्य पुनरुद्धाराय दयानन्द स्वामिभिः प्रवृत्तमिति स्मार्यम्। वेद गुप्तार्थ विचारे वैदिक पदानां यौगिकत्वं मुख्य आधार स्तम्भ इत्यवं प्रथमोंऽशोऽवधेयः।"

(श्री कपालि शास्त्रिकृता ऋग्भाष्यभूमिका पृ० ६१)

अपने भाष्य की अंग्रेजी भूमिका में भी महाविद्वान् योगी श्री कपाली शास्त्री ने इस विषय में लिखा है कि—

"The derivative significance of Vedic words expounded by Yaskacharya as the view of the Nairukta School is invaluable for investigators into the esoteric meaning and is the door that opens on the secret of the Veda. That the Vedic words have derivative singnificance is a creed with the Nairuktakaras and Swami Dayananda took his stand upon their position in his endeavour to revive the Vedic Dharma. The derivative singnificance of words in the Veda is the chief ground on which our enquiry into the esoteric interpretation proceeds. This is the first point to be noted".

(Introduction to Siddhanjana Commentary on the Rigveda by Shri T. V. Kapali Shastri P. 85).

दाक्षिणात्य महाविद्वान् श्री कपाली शास्त्री जी इन दोनों संस्कृत और अंग्रेजी के महत्त्वपूर्ण लेखों का भाव यह है कि यास्काचार्य द्वारा प्रतिपादित वैदिक शब्दों का यौगिकत्व जो नैरुक्त सिद्धान्त है वेदों के गूढार्थ चिंतकों के लिए रहस्योद्घाटन का अमूल्य द्वार है। वैदिक शब्दों की यौगिकता का प्रतिपादन करने वाले नैरुक्त पक्ष को ही लेकर वैदिक धर्म के पुनरुद्धार के लिए स्वामी दयानन्द जी प्रवृत्त हुए यह याद रखना चाहिए। वेदों के गुप्तार्थ विचार में वैदिक शब्दों की यौगिकता मुख्य आधार है। यह पहला अंश है जिस पर ध्यान देना चाहिए।

इस लेख से ऋषि दयानन्द जी का भाष्य कपोल कल्पित नहीं अपितु निरुक्तादि प्राचीन ग्रन्थों के यौगिक वाद को मानकर किया गया है और उसके द्वारा वैदिक धर्म का पुनरुद्धार हुआ है यह बात स्पष्टतया ज्ञात होती है जो बड़े महत्व की है।

(८) आध्यात्मिक, आधिदैविक और अधियज्ञादि तीनों प्रक्रियाओं के आधार पर वेद मन्त्रों के अर्थ होते हैं इस सिद्धांत के अनुसार महर्षि दयानन्द के संस्कृत पदार्थ में प्रायः सभी प्रक्रियाओं में अर्थ दर्शाया गया है। अन्वयानुसार अर्थ तो उसका एक अंश ही समझना चाहिए।

(९) अग्नि शब्द से केवल भौतिक अग्नि का ग्रहण नहीं होता, अपितु अग्नि शब्द के "अग्निः कस्मादग्रणी भवति" इत्यादि निर्वचन के आधार पर आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक प्रक्रिया में परमेश्वर, विद्वान्, राजा, सभाध्यक्ष, नेता आदि तथा विद्युत् प्रकाश जठराग्नि आदि का भी ग्रहण होता है। इसी प्रकार वायु, आदित्य, इन्द्र. यम, रुद्र आदि शब्दों के विषय में भी समझना चाहिए। ये इन्द्र, वरुण, अग्नि, वायु, मित्रादि शब्द जहां भौतिक पदार्थों के नाम हैं वहां मुख्यवृत्ति से ईश्वर के वाची हैं। यह प्रक्रिया महर्षि दयानन्द सरस्वती के सारे भाष्य में बराबर मिलेगी। इस भाष्य का अन्य भाष्यों से सबसे बड़ा और मौलिक भेद यही है। यही इसका मूल आधारभूत सिद्धांत है जिसको लक्ष्य में रखकर इस भाष्य की रचना हुई है।

(१०) यास्क, पाणिनि, पतंजलि आदि के दिखाये नियमानुसार अनेक स्थानों में प्राचीन कहे जाने वाले पद पाठों से भिन्न पद विभाग भी इस वेद भाष्य में दिखाये गए हैं। "यथाभिमतदृष्टयो व्याख्यातृणाम्" अर्थात् व्याख्या करनेवालों की भिन्न-भिन्न दृष्टियां होती हैं। न लक्षणेन पदकारा अनुवर्त्याः, पदकारैर्नाम लक्षण-मनुवर्त्यम् (महाभाष्य ३।१।१०९) अर्थात् पदकारों के पीछे सूत्रकार नहीं चलेंगे अपितु पदकारों को व्याकरण के पीछे चलना होगा। अतः महर्षि दयानन्द के भाष्य में व्याकरणानुसार पदकारों से भिन्न पद विभाग भी माना गया है। वेद में अर्थ के पीछे स्वर है, न कि स्वर के पीछे अर्थ। स्वर के अनुसार ही अर्थ हो इसमें वेद बंधा हुआ नहीं, अपितु अर्थ के अनुसार भी स्वर वेद में हो सकता है यह नियम है। इसको न समझने से प्राचीन आर्य परम्परा से अनभिज्ञ कई विद्वानों को भी भ्रम हो जाता है।

(११) काव्य के अंगभूत श्लेष, उपमा, लुप्तोपमा रूपक आदि अलंकारों का प्रायः उपयोग इस वेद काव्य में (जैसे कि स्वयं वेदों में "पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति" इत्यादि मन्त्रों द्वारा बताया गया है) सबसे पहले महर्षि दयानन्द ने ही अपने भाष्य में किया है और इन अलंकारों के द्वारा अर्थों में अनेक प्रकार के वैचित्र्य का प्रदर्शन किया है।

(१२) वेदों में अनित्य अर्थात् व्यक्ति जाति देश विशेषों का इतिहास नहीं ऐसा इस महर्षि भाष्य में सर्वत्र निरूपण किया गया है और निरुक्त समुच्चयकार आचार्य वररुचि, स्कन्द स्वामी, दुर्गाचार्यः स्वयं सायणाचार्यादि द्वारा ऋग्भाष्य भूमिका में स्वीकृत सर्वशास्त्र सम्मत सिद्धान्त को पूर्णतया निभाया गया है यद्यपि अन्य भाष्यकार अपने अभिमत इस सिद्धान्त को वेदभाष्य में निभा नहीं सके और अनित्य इतिहास परक अर्थ कर बैठे यह खेद और आश्चर्य की बात है।

(१३) महर्षि दयानन्द के भाष्य में देवता को मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय माना गया है और इन्द्र, मित्र, अग्नि, वरुणादि सब देवता वाची शब्द उसी एक महान् आत्मा पर ब्रह्म जगदीश्वर की विभूतियों का उसके गुणों के वाचक हैं (जैसे कि निरुक्त ७।४ में बतलाया गया है) ऐसा मानकर यौगिक वाद के आधार पर उनके अर्थ दिखाये गए हैं। सर्वानुक्रमणी से भिन्न भी कहीं-कहीं वाक्यार्थ को देवता मान-कर मन्त्रों की व्याख्या की गई है।

(१४) व्यत्यय के सिद्धान्त को मानकर ही वेद के विषय में "सर्वं ज्ञान-मयो हि सः" यह बात ठीक-ठीक प्रमाणित हो सकती है अन्यथा नहीं। इस सिद्धान्त का बहुत ही सुन्दर सप्रमाण उपयोग इस महर्षि दयानन्द कृत भाष्य में मिलता है।

स्कन्द स्वामी, सायणाचार्य, उव्वट, महीधर, भरत स्वामी, वेंकटमाधव आदि अन्य वेद भाष्यकारों ने भी अपने भाष्यों में व्यत्यय सिद्धान्त का अवलम्बन किया है। अतः इसके आधार पर महर्षि दयानन्द को दोष देना अन्यायपूर्ण है यह हम अनेक उदाहरणों द्वारा (जिनकी संख्या बहुत अधिक बढ़ाई जा सकती है) इस निबन्ध में दिखा चुके हैं।

(१५) यज्ञ आदि शब्दों से त्रिविध आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक यज्ञों का अर्थ लिया गया है। केवल भौतिक यज्ञों को लेकर तो महर्षि दयानन्द का भाष्य समझ में ही नहीं आ सकता। इसके अनुसार समस्त शुभ कर्मों का जो अपने कल्याण और परोपकारार्थ किये जाते हैं नाम यज्ञ है न कि हवन कुण्ड में आहुति डालने मात्र का यह बात समझ कर इस भाष्य को पढ़ना चाहिए।

(१६) पिंगल छन्दः सूत्रानुसार प्रत्येक मन्त्र के षड्ज, ऋषभ, गान्धर्व, पंचम आदि स्वर भी इस भाष्य में दिखाये गये हैं जिनका सायणाचार्यादि के भाष्यों में नितान्त अभाव है।

(१७) वेद सर्व तन्त्र सिद्धान्त अर्थात् सार्वभौम नियमों का प्रतिपादक है। यह बात महर्षि दयानन्द के भाष्य से ही स्पष्टतया ज्ञात हो सकती है। सायणाचार्यादि के भाष्यों में तो वेदों को अधिकतर कर्मकाण्ड परक मानकर ही व्याख्या की गई है जिसका अति भयंकर परिणाम हुआ और विचारशील सुशिक्षित लोगों की वेदों में ही अनास्था हो गई जैसे कि पहले दिखाया जा चुका है।

(१८) महर्षि दयानन्द के भाष्य की सबसे बड़ी और अन्तिम विशेषता यह है कि उसमें नैरुक्त शैली के अनुसार संस्कृत पदार्थ मंत्रगत पदों के क्रम से रखा गया है और उसमें जहां-तहां मन्त्रों के आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों प्रकार के अर्थों को लक्ष्य में रखकर निर्वचन तथा अर्थ दर्शाया गया है जो अन्वय में सम्भव न था। अन्वय को संस्कृत पदार्थ का एक अंश ही समझना चाहिए। संस्कृत अन्वय का ही भावार्थ किया गया है जो भाषा करने वालों से ठीक-ठीक पूरा हो ही नहीं सका।

इसी प्रकार इस भाष्य की अन्य अनेक विशेषताएं हैं। इतनी ही विशेषताओं का निर्देश अभी पर्याप्त है।

महर्षि दयानन्द भाष्य लोक प्रिय न होने के कुछ कारणः—

इस तथा अन्य विशेषताओं के होते हुए भी महर्षि दयानन्द का भाष्य जो अधिक लोकप्रिय नहीं हुआ और विद्वानों में उसका यथोचित आदर नहीं हुआ इसके कुछ कारण मेरे विचार में निम्नलिखित हैं।

(१) इस भाष्य का प्रकाशन उस योग्यता और निष्ठा के साथ उत्तमता से नहीं हुआ जितनी उत्तमता से होना उचित था। अजमेर में प्रकाशित महर्षि दयानन्द के भाष्य के संस्करणों में सैकड़ों अपमुद्रण स्थान-स्थान पर उपलब्ध होते हैं और उनको स्वामी दयानन्द जी की अपनी अशुद्धियां समझकर कई संस्कृत के अच्छे विद्वान् उस भाष्य के प्रति आकृष्ट नहीं होते। इस बात की अति विशेष आवश्यकता है कि महर्षि दयानन्द जी के वेद भाष्यों का प्रकाशन अत्यन्त सावधानता तथा तत्परता के साथ किया जाए। आशा है कि परोपकारिणी सभा के अधिकारी इसकी ओर विशेष ध्यान देने की कृपा करेंगे।

(२) महर्षि दयानन्द जी के भाष्य के कई स्थल स्पष्ट नहीं प्रतीत होते । कई जगह अनावश्यक समझकर नए अर्थों के लिए प्रमाण नहीं दिये गए यद्यपि खोज करने पर वे ब्राह्मण ग्रन्थ, निघण्टु, निरुक्तादि प्राचीन ग्रन्थों में मिल जाते हैं। अत: मेरे विचार में महर्षि दयानन्द के भाष्य को लोकप्रिय बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उनके शुद्ध संस्करण आवश्यक पाद टिप्पणियों के साथ प्रकाशित किये जायें जिनमें जो भाग शीघ्रता के कारण कुछ अस्पष्ट रह गए हैं उनको स्पष्ट किया जाए, जहां प्रमाण मूल भाग में नहीं पाये जाते हैं खोज करके वहां प्रमाणों का उल्लेख किया जाए। जैसे श्री मध्वाचार्य वा स्वामी आनन्द तीर्थ जी के ऋग्वेद के प्रथम ४० सूक्तों के छोटे से संक्षिप्त भाग को भी जयतीर्थादि अनेक उनके विद्वान् अनुयायियों ने स्पष्ट करने का प्रशंसनीय प्रयत्न किया वैसे महर्षि दयानन्द के भाष्य पर भी विशेष परिश्रम करने की आवश्यकता है किन्तु पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु तथा उनके शिष्य पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक को छोड़कर इस दिशा में आर्य विद्वानों ने विशेष ध्यान नहीं दिया ।

(३) साम्प्रदायिक तथा कुछ मध्यकाल की अनार्य परम्परा के कारण भी अनेक विद्वानों ने महर्षि दयानन्द के भाष्य को पूर्णतया नहीं अपनाया । यद्यपि उसकी विचार धारा से देश विदेश के अनेक उत्तम विद्वान् प्रभावित हुए हैं, इसके स्पष्ट प्रमाण उपलब्ध होते हैं। मुझे दुःख इस बात का है कि अनेक आर्य विद्वान् भी महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य के विषय में वह निष्ठा नहीं रखते जिसका यह पात्र है। आर्य विद्वान् स्वयं जब तक पूर्ण निष्ठा के साथ महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य का अनुशीलन न करें और परस्पर विमर्श द्वारा उसके कठिन स्थलों का विवेचन न किया जाये तब तक दूसरों को कैसे उसका महत्त्व बताया जा सकता है ?

(४) अंग्रेजी और अन्य विदेशी भाषाओं में महर्षि दयानन्द के भाष्य का अनुवाद न होने से भी वह अधिक लोकप्रिय न हो सका। इन कारणों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए ताकि महर्षि का वेद भाष्य लोकप्रिय हो सके।

महर्षि दयानन्द और स्वामी आनन्द तीर्थ

श्री मध्वाचार्य

अन्य अनेक विषयों की तरह वेद भाष्य शैली में भी द्वैतवादी प्रसिद्ध आचार्य श्री मध्वाचार्य और स्वामी दयानन्द में बहुत सी समानताएं हैं जिन्हें देखकर आश्चर्य होता है । दोनों आचार्य वेदों को ईश्वरीय ज्ञान रूप मानते हैं । इस विषय में ऋग्भाष्य में श्री मध्वाचार्य ने लिखा है ।—

मुनिस्तु सर्वं विद्यानां भगवान् पुरुषोत्तमः ।
विशेषतश्च वेदानां यो ब्रह्माणमिति श्रुतिः ॥
ऋग्वेदादिकमस्यैव श्वसितं प्राह चापरः ॥

(२) दोनों आचार्य यौगिकवादी हैं तथा अग्नि वायु इन्द्र सोम आदि को प्रधानतया ईश्वरवाचक मानते हैं । "अग्निमीले पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्" (ऋ० १ । १ । १) की व्याख्या में श्री मध्वाचार्य ने लिखा है ।

यथैवाग्न्यादयः शब्दाः, प्रवर्तन्ते जनार्दने ।
तथा निरुक्तिंवक्ष्यामो ज्ञानिनां ज्ञानसिद्धये ॥
इति तेनाग्निशब्दोऽयमग्र एवाभि पूज्यताम् ॥
अग्रप्रस्त्वभप्रनेतृत्वमत्तिमंगांगनेतृताम् ॥

इस प्रकार की निरुक्ति देकर इसे प्रधानतया ईश्वर वाचक तथा गौणतया भौतिकाग्नि वाचक बताया है। वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः । तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ ऋ० १ । २ । १ की व्याख्या करते हुए श्री मध्वाचार्य "वायु" का निर्वचन यों करते हैं ।

बलत्वादयनाच्चैव वायुरत्यभिधीयते ।
वात्यायुरति वा ज्ञानाद् वा रवादाश्रयत्वतः ॥
वय बन्धन इत्यस्मात् संसारादेर्व्ययादपि ।
व्येत्यस्मिन्मिति वा वायुर्वय श्रेष्ठत्व इत्यपि ॥
मुख्यतो वासुदेवे ते गुणाः सन्त्येव सर्वतः ।
अनिषिद्धास्तदन्येषुयथा योग्यतया मताः ॥

यहां यह बात भी स्मरण रखने योग्य है कि श्री मध्वाचार्य जी ने ये निर्वचन अपनी कपोल कल्पना से नहीं किये, इनमें कइयों का आधार श्री यास्काचार्य के निरुक्त पर भी नहीं है, किन्तु व्यास मुनि निर्मित निरुक्त के आधार पर किये हैं जो दुर्भाग्यवश लुप्त हो चुका है । उनके अपने शब्द ये हैं—

अप्रणीत्वं यदग्नित्वमित्यग्रे नाम तद भवेत् ।
एवमेवाह भगवान् निरुक्तिं बादरायणः ॥

इस श्लोक में व्यास मुनि के ग्रन्थ का स्पष्ट नाम तो नहीं बताया गया किन्तु निर्देश किसी निरुक्त की तरफ ही प्रतीत होता है । इसी भाष्य में ऋक् संहिताओं

स्वाध्याये निरुक्ते व्यास निर्मिते इत्यादि श्लोक में यह निस्संदिग्ध है।" इन्द्र वायु इमे सुता उप प्रयोमिरागतम्। इन्दवो वामुशन्ति हि। १। २। ३ की व्याख्या में "इन्द्रः स परमैश्वर्यत्वादिमुद्दिश्य चाहुतेः। ददर्शेदं दीप्तिमत्वादिदं रातीति वा भवेत्॥ इत्यादि निरुक्ति द्वारा प्रधानतया ईश्वर परक की है। इसी प्रकार "मित्रं हुवं पूत-दक्षं वरुणं च रिषादसम्॥" में वरुण की "आवृणोतीति वरुणस्तमसाऽज्ञानतो पि वा। वरमुन्नयतीत्यस्मात्, वरानन्दत्वतोऽपि वा॥" इत्यादि निरुक्ति करते हुये ईश्वर परक अर्थ किया है। स्वामी दयानन्द जी ने लगभग ऐसी ही व्युत्पत्ति देकर प्रधानतया ईश्वर-परक अर्थ बताये हैं। अब ईश्वरातिरिक्त कुछ अन्य शब्दों के आध्यात्मिक अर्थ श्री मध्वाचार्य जी ने किस प्रकार किये हैं और उनके द्वारा ऋषि दयानन्द के अर्थ की कैसी पुष्टि होती है इसके दो चार उदाहरण देखिये—

"वायवायाहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः तेषां पाहि श्रुधी हवम्।

इसमें सोम पर श्री मध्वाचार्य लिखते हैं—

भक्त्याद्यलंकृताः सोमाः मनांस्यन्ये हिरण्यतः।

मनोऽपि भोग्यमीशस्य, प्रीतिमात्रेण केवलम्।

इत्यादि अनेक स्थलों में सोम का अर्थ मन किया है। "अस्य पीत्वा शतक्रतो घनोवृत्राणाममतः। प्रावो वाजेषु वाजिनम्॥ इसकी व्याख्या में वे वृत्र का अज्ञान अर्थ करते हैं "आवृतेरेव वृत्राणि ह्यज्ञानाद्यन्नदं नरम्। प्रायो युद्धेषु योद्धारं, भक्तं ज्ञानि नमेव च।" ऐसे ही धन रयि आदि शब्दों के वे प्रायः ज्ञानादि धन अर्थ करते हैं। यस्यसंस्थे न वृण्वते हरी समत्यु शत्रवः। तस्मा इन्द्रायण्गायत॥" इस मंत्र में हरी का अर्थ वे मन और बुद्धि तथा शत्रवः का अर्थ तम आदि करते हैं। यथा मनः पुरे वा विषय हरणान्मन एव च। बुद्धिश्चहरि शब्दक्ते तम आदीनि शत्रवः" ऐसे ही न हित्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः। जैषः स्ववंतीरपः संगा अस्मभ्यं धूनुहि॥ इसकी व्याख्या में अपः का अर्थ प्रजा और गाः का अर्थ ज्ञान व्युत्पत्ति लेकर किया है यथा—

अपः प्रजा सुखवतीरजय स्त्वद् वशत्वतः।

ज्ञानानि संघूनुहि च प्रापयोच्चा अपि स्वयम्॥

य ईखयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम्। मरुद्भिरग्न आगहि की व्याख्या में पर्वत का अर्थ पुरुष और समुद्र का अर्थ प्रकृति किया है और उसके लिए पर्ववन्तो हि जन्मनी। पुरुषः सुसमुद्रे कात्समुद्रः प्रकृतिर्मता॥ इत्यादि निर्वचन दिया है। ऋषि दयानन्द ने "ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्न्द्रे—मुद्रो अर्णवः। में लगभग ऐसीही व्याख्या की है। और तो और उलूखल चमस द्रोणादि शब्दों की उन्होंने सुन्दर आध्यात्मिक व्याख्या की है यथा "उलूखल सुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः॥" (ऋ० १।२५।२) की टिप्पणी में वे कहते हैं "खलश्चहस्तथा देहः सोमो मन इतीरितः। ज्ञानोत्पत्तौ च फलकस्थानओष्ठ उदीरिते॥ शिरो भेदो तु चमसौ द्रोणं चोदरमीरितम्। मुख चर्मैव गोचर्म" इत्यादि इत्यादि उदाहरणों से यह ज्ञात हो सकता है कि दोनों आचार्यों की शैली में बहुत कुछ समानता थी। दोनों ही आचार्य वेदों के प्रायः प्रत्येक मन्त्र के आध्यात्मिक और आधिदैविक (Individual or Spiritual, Social and Cosmic) ये तीन अर्थ

मानते थे। श्री मध्वाचार्य ने "त्रयोऽर्थः सर्ववेदेषु इत्यादि में इसकी स्थापना की है: यद्यपि भाष्य में उतनी अच्छी तरह वे इस स्थापना को पुष्ट नहीं कर सके। वेदार्थ कौनसा और किसका अधिक मान्य है इस विषय में निरुक्तकार यास्काचार्य ने नह्येषु प्रत्यक्षमस्त्यनृषीरतमसो वा पारोवर्यवित्सु तु खलु वेदितृषु भूयो विद्यः प्रशस्यो भवति॥ "(अ० १३) ऐसा लिखा है। स्वामी दयानन्द जी ने भी इसका उल्लेख और समर्थन किया है। श्री माध्वाचार्य ने "गुणाधिक्यं भवेद् येन वेदस्यार्थः स एव हि। प्रयोजकत्वान्नान्यस्य कलाभावात्तदर्थता॥ अर्थात् वेंद का असली अर्थ वही समझना चाहिये जिसमें अधिक गुण अथवा निष्प्रयोजन वेंद का वाक्य नहीं हो सकता। इस दृष्टि से भी स्वामी दयानन्द जी की भाष्य शैली की ही सर्वोत्तमता ज्ञात होती है।

✣✣✣

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥

अथर्व० १९-७१-१

स्तुति करते हम वेद ज्ञान की,
जो माता है प्रेरक - पालक,
पावन करती मनुज मात्र को।
आयु, बल, सन्तति, पशु कीर्ति,
धन, मेधा, विद्या का दान।
सब कुछ देकर हमें दिया है,
मोक्ष मार्ग का पावन ज्ञान।